क्योंकि—सम्यक्त्व किसी—मत में—भेष में—क्रिया में या ढोंग में नहीं है परन्तु—एक यथार्थ श्रद्धानमें है. जो जीवादि पदार्थोंका निश्चयिक व्यवहारिक द्रव्यादि सामग्रीके प्रति जो यथार्थ—यथार्थ (जैसाहै वैसाही) श्रद्धान (जान पने युक्त प्रतीत) करतेहैं वेही सच्चे सम्यक्त्वी कहलातेहैं. कि जिनोंकी आत्मा राग द्वेष विषय कषाय मत मतान्तरके झगडेसे विरक्त हो कृष्ण नरेन्द्रवत् एकांत गुण संग्रह मेंही तत्पर रहते हैं.

और "धनीपर धाडे पडतेहैं." इस कहावत मुजबही ऐसेजो सम्यक्त्व रत्नरूप महाधनके धारक होतेहैं, उनके माल का हरण करने नाश करने विना कारणही मिथ्यात्वीयों प्रयत्न करतेहैं. उनका सर्वस्व हरण कर मरण तक पहोंचा देतेहैं, परन्तु जिनोंने ऐहिक सुख सामग्रीको क्षीण भंगूर विनश्वर जानलीहै, वो ऐसे परम सुखदाई सम्यक्त्वका नाश करना तो दूर रहा, परन्तु किंचित मात्र खूंभी नहीं लगने देतेहैं. इन गुणोंका हूबहु स्वरूप इस "सम्यक्त्वोत्सव" रसमें जयसेन विजयसेनके कथनका दर्शाया गया है. इसके दो विभागोंमें से प्रथम भागमें तो गुणप्रतापके दर्शाने वाली धर्म निश्चित कौतकरूप कथकी कथनीहै. और दुसरे भागमें—सम्यक्त्वी के लक्षण आचरण और उनको सम्यक्त्व धर्मसे चलित करने मिथ्यात्वीयों कैसी योजना प्रयत्न करतेहैं, उससे सम्यक्त्वीयों अपने प्राण—

तक कैसी युक्ति से रत्न करते हैं. और विस्तार पूर्वक विचित्र रागों में कथ कर सम झाया गया है. पाठक गणों, श्रोता गणों, दूर चित्त से निरन्तर इसका मनन पूर्वक पठन श्रवण कर, जिनको. सम्यक्त्वकी प्राप्ति न हुई है वो प्राप्त करेंगे. जो सम्यक्त्वी हैं वो प्राप्त रत्न का यत्न करेंगे-विशुद्ध निर्मल सम्यक्त्व पदार्थ को रखकर परम नन्दी पद सुखी हो वेंगे ऐसा परम उपकार करी इस ग्रंथको जानकर इसकी १०००प्रत यहांके ज्ञान वृद्धिवाले में-निम्न दर्शित महाशयोंका द्रव्य जान-कर उसके सद्व्ययसे अजमेर-कान्फरन्स आफिसके सुखदेव सहाय जैन प्रि.प्रे. में छपाया. और वहां का विलम्ब होता देख यहां इसका उत्तम प्रत वन, शुद्धि पत्र लगा कर छपवा कर बाइडिंग करवा कर-सम्यक्त्वी भाइयोंको अमूल्य लाभ देता हुआ कृतार्थ समझता हूं:—

प्रत.	सद्गृहस्थोंके नाम.	गाम.	जिला.
+ ५०)—	भाइजी श्री टेकचंदजी मथुरलालजी—	नलछा	(धार-मालवा) वाले.
३०)—	भाइजी श्री टेकचंदजी ज्ञानचंदजी—	दिगठाण	(धार-मालवा) वाले.
५०)—	भाइजी श्री कुवरमलजी नत्थुमलजी जैनकी मारफत-	रोपड	(पंजाब) वाली पांच बाइयों.
२५)—	भाइजी श्री नवलमलजी सूरजमलजी धोका	यादागिरी	(हैद्राबाद)
२५)—	भाइजी श्री रूपचंदजी छगनीरामजी सचेती	वेजापुर	(हैद्राबाद)

२५)—भाइजी श्री मूलतानमलजी जसराजजी खींवसर (बेंगलोर छावनी
२०)—भाइजी श्री बख्तावरमलजी धाडीवाल बगडीवाले (हैद्राबाद)
१०)—भाइजी श्री चौथमलजी मुलतानमलजी, नन्दर-सेरपूर (हैद्राबाद)
६)—भाइजी श्री सिरदारमलजी तांतेड कुचेरा-मारवाड वाले (हैद्राबाद)
५)—भाइजी श्री पूनमचंदजी खींवसरा-बिंगलोरकी छावणी.
५)—भाइजी श्री मगनीरामजी रामचंदजी,-पाडेली, (हैद्राबाद)
२)—भाइजी श्री दोलतरामजी मोतीलालजी मूंडे (हैद्राबाद)
२)—भाइजी श्री मोहनलालजी चन्दूलालजी,-पाडेली, (हैद्राबाद)
२)—भाइजी श्री दोलतरामजी केशरीमलजी तडवड,-यादगिरि-(हैद्राबाद)
२)—भाइजी श्री झंझुरमलजी शिवसहायमलजी, भेरोडवाले (हैद्राबाद)

इन सद्गृहस्थोंकी तरफ से यह ग्रन्थ अमूल्य भेट कर करताहुवा सन्तुष्ट हूं.

ज्ञान प्रचारण का इच्छुक
राजाबहादुर लाला सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसाद जौहरी.
(दक्षिण) हैद्राबाद चारकमान न. वीरसंवत् २४४१ दीपमाली.

श्री जयरत्न विजयसेन चरित्र का शुद्धिपत्र.

पाठक गणो ! प्रथम निम्न लिखित अशुद्धियों को शुद्ध कर फिर यत्न से पढ़िएगे

पृष्ठ.	ओली.	अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	ओली.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१	४	वक्ष	वक्षे	३४	१	वीच	नीच
३	१२	स्ष्वप्न	स्वप्न	,,	५	मन	मान
९	११	तोय	श्रेयकार	३५	५	कमरे	कुमरे
१५	१२	कथें	कथे	३६	५	पउड	पडह
२२	,,	लाज्यो	लेजे	,,	८	,,	,,
२५	५	आले	ओले	,,	९	कमरे	कुमरो
,,	११	सुझ	मुझ	३९	६	माघिक्क	म धिक्क
२६	,,	अत लिख	अन्तालिख	,,	१२	खेउ	खेड
२९	६	खा ती	कहांथी	४०	१	पउ	पड
३१	४	मांउ	मांड	,,	,,	जनउ	जनड
,,	१०	कोउ	कोड	४१	,,	सहि	सहि १०
,,	११	होउ	होड	४३	५	बडती	ढली
३२	४	से	०	,,	१२	भर	भइ

४४	४	मम	०	७७	२	मेमांश्रुत	नयनां श्रुत
४५	२	पेढूं प्यारे	पेढूं मैं थरे	७८	४	मर्षं स्यन्द	हर्षनन्द
४६	१	तण	तणे	७९	९	पाछे	धावे पाछे
,,	३	षामुस्यु	पमस्यु	८०	१	अव	आया
४७	७	लण	लण	,,	८	आदि से	आरीसे
४८	१२	वहै	कहे	,,	,,	नम	नम
५२	९	तनुनां	तनुज	,,	८	दीये	दीपे
५५	५	मय	सम	,,	१२	युक्ति	पुक्ति
६१	९	पूछ	पूछे	८३	९	वहां	यहां
६२	८	भणे	भणी	८४	८	अज जे	अजने
६५	९	नगद	नणद	८८	११	मेहल	०
६६	९	विदर	विद्य	८९	९	संकीर्प	संकीर्ण
६७	५	अखणु	अपणे	९०	९	थपे	थवे
,,	७	देह	कहे	९२	८	कये	क्यां
६८	५	तज	तजे	९३	,,	महेरे	मांहेरे
६९	१	मगन	गगन	,,	१०	४	०
७२	८	युगन्द्रिय	युगन्त्रिय	९४	५	मन	मने

९४	८	कर राय	फरराय	११५	१०	स्यात	स्थान
,,	१२	मध्यरथी	मध्यबजारथी	१२१	६	आशा	अज्ञ
९५	२	आय	आया	१२८	६	द्रढडाइ	द्रढाइ
,,	७	खेचपत	खेचरपत	१३१	२	ये जते	अजते
९६	३	तेपीया	तेपीया	,,	५	।ठेर	आंकडी
,,	९	मणोद्र	मध्यस्त	,,	६	नेठा	नेडा
९८	८	जय	०	१३२	१	कहो	कहां
९९	३	जयधीर	नयधीर	,,	९	करसो	फरसो
१०५	६	तंघ हुवा	संग हुवा	१३३	१	आये	अपे
१०६	५	नक्र	नाक	,,	६	यह	०
१०९	९	परमानन्दो	परमानन्दी	१३४	१	१ १.	१
,,	१०	शेशे	रोशे	,,	२	पाय	पप
११०	१	ताक	ताको	,,	६	णाश्चर्य	अश्चर्य
१११	,,	लाय	लाया	,,	७	द्रढ	०
११२	११	साचीं	साचे	,,	८	के	०
११३	,,	भराइ	भरमाइ	१३५	,,	मिती	मिर्ली
११५	२	इहायो	इहापो	,,	,,	रेख्या	देख्य

१३६	१०	टोते	टोली	,,	११	हंभी	हंभे
१३८	३	वक	वक्त	,,	१२	मुझसे	मुझने
,,	६	घणा	घणी	१४५	८	यर	यह
,,	९	राणि	राणी	१४८	११	यतावुं	बनवुं
१३९	९	मठ गावु	मेंठगवूं	१४९	१०	रहनी	एहनी
,,	११	क्रा	का	१६२	१२	रेष	देष
१४०	२	खेदाश्चर्य	खेद श्चर्य	१६३	१०	रक	करुं
,,	७	व्रढ	द्रढ	१६५	८	तू	०
,,	७	रह	रहै	१६८	६	शख	शक्ति
,,	८	मुगे	मनुष्य	,,	८	भगवे	भोगवे
१४१	२	चेतवर्ती	चेतवत	१६९	८	परीती	परिणति
,,	१२	हार	हम	१७०	६	प्य	प्य
१४२	३	विमोय	विगोय	१७१	८	दुक्कर	दुक्कर
१४३	५	देख	देखे	,,	१०	और	०
,,	९	स्थनक	स्थनके	१७२	६	अरोहित	रोहित
१४४	५	नश	नश	१७६	९	होइ	होद
१४५	१०	राजक	रतक	१७७	२	गय	गम
,,	,,	रयन	रयके				

उ—ल ऋद्धि.

ॐ श्री परमात्मने नमः "श्री सम्यक्त्वोत्सव" जयसेण विजयसेण चरित्र प्रारंभ

दोहा प्रणमुं जिनेश्वर जग गुरु दाता सुद्धि बुद्धि श्रेय ध्याता पाप निर्-
मळ मन शाता चित्त निरंतर थाय १ तीर्थेश्वर तुल्लेश्वरु मुनिश्वर सुरी साध
प्रणमुं सिरांजली करी वंदु हृदय समाध २ पद्म पंकज गुरु राज पद सुभ-
मन भ्रमर लीन ज्ञान सिंधु बिंदु बुद्धि दे कीजे सुभ प्रवीन ३ संघेश्वर सु-
त प्रगटी वागेश्वरी कही माय तनुजा पर सुनजर करी दो श्रुति सुखदाय ४
सर्व जेष्ठ श्रावक गृहि धरी मन हुल्लास सम्यक्त्वोत्सव कहुं शुभ मनोहर
रास ५ समकित रे बहु कहे सम्यक्त्व अति दुर्लभ जो पामी शुद्ध पाल-
ही तास शिव सुख सुलभ ६ धर्म मूल सम्यक्त्व है नहीं लाभ दातार सम्यक्त्व
बिन क्रिया निष्फल भींगणी पर खंड सार ७ विमल सम्यक्त्वी विजय नृप
जैनागमे तत्त्व लीन संकटे सुमेरु ज्यों स्थिर रहे शुद्ध तत्त्वार्थ चीन ८
तास तणी सुकथा यह श्रोता सुणो स्थिर चित्त गुणग्राही वर्ते तदा पावे

इच्छित हित ॥ ढाल १ ली ॥ जदूरीति जीयाजी रे देशी ॥ सकल सु-
ख पालेजी सब दोष दूर निवार सम० जो वंछित सुख दातार सम टेर
लख जोयण गोळकार में यह जंबु नामे लघु द्वीप शोभे क्षेत्र गिरि नदी से
आदि देवमहीप सम १ भरत क्षेत्र कर्मभूमि को है पांचसे जोयण मांय
छब्बीस ऊपर छे कला में षट खंड से दीपाय सम २ साढे पचीस देश आर्य
में हैं सोवीर देश सुखकार मन्दपुर नगर शिरोमणि है धनधन्य दातार
सम ३ गढ मेहल मन्दिर घरों से शोभे स्वर्ग समान धन धान्य ऋद्धि पूर्ण
भरी सदा वरते कल्याण सम ४ स्वचक्री परचक्री को जो डर नहीं
तहां लगार चोर जार अन्यायी जोतां मिले न नगर मझार सम ५ दुर्भिक्ष
दुकाल उस शेहर से जो दूर रहे सदा काल धर्म पुण्य विह वली जो वसे है
नर खुशहाल सम ६ धर्मसिंह नाम नृपति जो क्या तेज इन्द्र समान
न्याय नीति धर्मी गुणी अरि तक्त को भन सम ७ पुत्र परे पाले प्रजा

भए तेसे देवि हर्निते देन चोर अन्तरी दुट को रे हरण करी ले प्रेम सम
८ स्तूका प्रसर के तेसे अनथ अंग ने बल संदित सब प्रेम को
कीये निज शुभ गुण नृपाल सम ९ श्री कान्त श्री दत्त श्री नित । यह ती-
नों है पटनर ला कल शील विनयदत्त से वश हुव नृप रविर सम १०
श्री कान्त श्री दत्त एकद जी सूती सुख सेज मांय शर्दूल सिंह सपने लख्यो
शीघ्र जागृत होइ हर्षाय सम ११ उभय २ राणी एकी समयजी भूप को आइ
जणाय हर्षनंदे वदे राजवी अब जाणे पूर्ण थाय सम १२ पुत्र प्रसव तो
सिंह सम कुल केतू दिन कर आधार अंजली जुत राई कहे येही इच्छ पडे
तव पार सम १३ ले आइ निज स्थाने राइ जी धर्म जागरण कीन
प्रते शुभ राजय के नृप पीडित बोलके प्रवीन सम १४ पूछ अर्थ स्वप्न
तरण ते शकुन जे कारे उचार तेस ३० उत्तम बेतली ४२ अधम बहोतर स्वप्न श्रु
तसार सम १५ अरहुरन चउदह स्वप्न देखे तीर्थंकर की मात सात मा-

रयण रतन चर एक मंडलिक नत पत सन १६ चतुष्पद नृप सिंह
शार्दूल तैसे नरेन्द्र नन्दन होय शुभ श्री रंजन सज्जन धर्मी नन नेय
सन १७ हर्षित्त कहे महीपति विद्वानी वयण प्रमाण पंडितों ला
इन खुटे दी अजीवका राजन सन १८ खुशी हुई पंडित राय नृप
रानी को अर्थ जणाय नभीपले दोष टलती रह नित्य आनन्द हृदय सन
१९ गर्भ पुण्यतन पत्तर से राजलक्ष्मी वृद्धि पाय तीन मास यों बीतिया
पुराये शुभ डोहला प्रगटाय सन २० पुरुष वेश शस्त्र सजी करी सेना संग
परिवार क्रीड़ा करूं वने विषे शत्रु अरति धरे ते वर सन २१ अंत
दक दान थकी नृप जाण डोहला का भेद दी आइ शीघ्र पूरिये जो जानी
नन उम्मेद सन २२ डोहले पूरे हर्ष सहु जणाय उदर से पुण्य हाल
भाले अनेक सन्किते लखे रे प्रभाणी पहिली ढाल सन २३ दुह सु-
पात्र नित्य पोषती दे चउदह (१४) प्रकार दान धर्मेश्वरी करती सदा धर्मीन को

सन्मान १ सब नव मसरी तीरथ शुभ लग्न प्रसंग जन्मया दोनों राणी
तव कुंवरजी वरतर रंग २ जन्मोत्सव उनके किये छोड़ा दंदीवान दुःखी
दारिद्री तेरिया देइ वांछित दान ३ सज्जन परजन लोक के गुण निधान
दीये नाम जयसेण विजयसेण नाम सम परिणाम ४ उज्वल पख ज्यों
चन्द ज्यों बढे बुद्धि बल रूप दृढ धर्मी वय बल से दोनों अचंभे भूप ५
नानो मन दूर्वे ही थकी लघु समकत लार सुगुरु देव धर्म इन के राखे अति
ही प्यार ६ न्याय नीति रे प्रीति अति पाखंड से रहे दूर पढ़े कला सर्व
शीघ्र ही हुवे शुभ गुण भरपूर ७ जोड़ हरी हलधर तणी देखन देवे
लगार मोहनगारा सर्व को करत सदा चैन चार ८ होनहार होवे रहे
कर्म गति है विचित्र सो सुणिये भव्य दर चित्त वसुं आगे चरित्र ९
ढाल २ री नीरजी कहाणे हो मुनिश्वर काणी आपणी यह देशी
ईर्षा छोड़ो हे जोड़ो प्रीति सभा से ईर्षा से हानी अनेक सभा वहां जमाज है

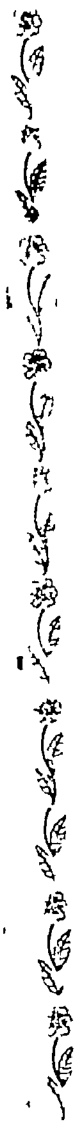
सदा है सुख नीके सोचो जन जन देख इ० १ श्रीनीति नाते है गणी
तीसरी दुर्नीति रति सदय इ० को सेहनी है गुण अलखनी बाट
बाट में मनय इ० २ निज २ संचित है पुराय प्रमाण से सुख, यश, धन
जन पर इ० मुई सिदके है देवी सुखपालके पुराय विन कैसे सोधर इ०
३ एकदिन सूती है सुखे निज सेज में सपन लिये सुखदय शुभ भाणी
है सणी ताणी तेरी कैसे किसन नीवेकजेजी न्यय इ० ४ यों देख हवी
है जाती तत्दिण नीतन पर जो अय मधुर वचन से है नृप को जगाविय
सब वितंत जाणय इ० ५ सुणी आनन्दि है राजजी यों कहे पुत्र होवे-
गा गुणवन्त न्याय वेशाद है नजलस तिजयौं प्रजा तत महन्त इ० ६
श्रीनीते हवी है आई निजस्थन के को गर्भ मतिपल सुखे २ वीत्य है नाम
सब नौ तद जन्मयें पुरायवन्त बल इ० ७ जैसे पंक से है कमलज
नीपजे मुतिक से जैसे हेम दर समुद्र में है सुफल हुवे ए पुराय ता

हुए तेम   छंद ८   परिजन जनित हो सुधो नावने गुण निधान 'नयन-
सेन' चंचलता हो सुख शशी परे दृष्टि होवे हर्ष सेन छंद ९ दिशावरों
हो पढ़इ सबी कला धर्म इन सत्संग प्रवीन भय से हो नवल ही कालमें
को खेड उछांग । छंद । १० जय विजयने हो साथ रमे सदा लघु जाणी ते
धरे प्रेम परन्तु पुण्याई हो जुदी २ वर्तणी पवे उतने ही खेन ॥ छंद ॥११
जय विजय का हो पुण्य प्रबल अति ते लगे दश सन्न देखी भ्रान्ति हो
चित्त में प्रजले अति निद्र धरे ध्यान छंद १२ राजा हीरती हो होत
दोनों बन्धुवर शुभ पुत्र जन्म दुःख पर कोई जाने हो हाए हुं दोनों भाग
ते शुभ पुत्र सुखी थाय छंद १३ छल छिद्र बहु चि हो देखे दोइका को
केई नाए जाय पुण्य बली जेह छेहो जय विजय धाए लागे नहीं कोई
दाव छंद १४ चिन्तातुरी हो हुई भ्रान्ति धाणी अफसोस नहीं भय
निद्र रीशाए हो विशाए सदा रहे नयने नीर वहाय छंद १५ एकदा

आइ हो एक जोगणी तिहां जाणे विद्या अनेक । श्रीमति पेखी हो लखी
चित्त दिये बोले सु धरी विवेक ॥ १६ ॥ विद्या बल से हो जाणी
मैं आपके चित्त में चिन्ता है पूर सो प्रकाशो हो म्हारे सन्मुखे करूं दिये-
में दुःख दूर ॥ १७ ॥ इन्द्रदत्त आणू हो दीक्षा रवी करूं हरख दिये शत्रु
का प्राण सत्य सबी मानो हो कहनी म्हारी करूं तुम कह्या प्रमाण ॥
१८ ॥ निशंक होइ हो कहो मुझ मन तणी तुम हम बीच भावना । तुम
दुःख देखी हो मुझ मन दुःख धरे दी है तेणथी जवाब ॥ १९ ॥ गुणी-
जन तुम्ह हो मिलिया हम भणी तबही कही मन वात । मुझ मन सुख हो
हम जाणे कोइ की इम राणी ने प्रभात ॥ २० ॥ इच्छित मिलियो हो
राणी ने आयने ढल दूरी मेर ऋद्धि अनेक कहे पुण्य प्रतापसे वि-
घन सबी विलय ॥ २१ ॥ दोहा ॥ श्रीमति हर्ष अति सुणी जोगण
ना वेण पुष्टित भोजन लइ हुवे त्यों पूछ्या राणी नेण ॥ १ ॥ कहन्तए

जोगण भणी जाणी अति होशियार मनये अड महेरे हिवे चिंतित करं
पार २ सजनी हणी जोगणी आसन ऊंच बैठाय अरु वसन इच्छित
देइ सत तस भोजय ३ नरनी कहे थें इनी हो जमाये म्हारो दुःख
जिम बोल्य तिन्ही की आर्यो तुम्हने सुख ४ दुःख सब दाख्ये नन ताए
सुणी जोगणी हर्षाय किंचित फिकर न कीजिये रहत है सहज उपाय ५
ढल३री नीर नृपति अन्यद समय ये देशी श्रीनि हर्षित हुई
जणी जोगण करमत हो मइ जोगण पण हर्षित हुइ जन्म को
आश्रय चहत हो मइ श्री १ कहे राणीजी देखिये थोड़ा ही दिन
को मांय हो बइ मरुं दोनों बन्धन करूं मैं गुन उपाय हो मइ
श्री २ एकन्त जाय रेख भणी दीनी तस सुखकार हो मइ
और सन्त्री सब देवी विद्या साधन तेय हो मई श्री ३ जोगणी आ-
राधन जोगण क्यों देवी प्रत्यक्ष होय हो मई क्यों चिंतामि सुम्ह भणी कहे

सरै तुम सेय हो भई श्री ४ मनन करी कर जोड़ के जोगण करे प्र-
दस हो भई सुम नेत्राए श्रीमते तणी पूरो शीघ्र तुम ब्रज हो भई
श्री ५ राजेश्वर मन पैरी करी जय विजय की हर कार हो भई सज
मिले मरपसेण ने ऐसे करे उपर हो भई श्री ६ जनल भगे इण
सरै से श्रीमते दुःख पर हो भई उनर दोनों नह दुरायन्त हैं नरी कि-
नीन जय हो भई श्री ७ दुख सुख मप तर होवसी तोगण राजण
तुम मन हो भई उपर रहूं ऐसे हिये हेय श्रीमते चिन्तन हो भई श्री
८ इन परमाणी सुणी नई जोगण तणी पस ब्रज हो भई कहे चिन्तत
होसी तुम ताणे सिद्ध हुवे किये उपर हो भई श्री ९ दोनों हरी सुखे
रहे गते सुणी मन मंय हो भई कहे नृप को सच हुवे घणे हरे उम
गय हो भई श्री १० ॥ कुलदेवी तुम तणी महं कुल को हेम हो
भई ब्रज रो॰ होतब जाणुं कोइ ते चेतहुं धन मेन हो भई श्री ११



जय विजय तुम तनुज दो होती उनको दुःख अपार हो भाई तिण कारण दोनों
भाई शीघ्र न्हावतो नाथ हो भाई श्री १२ वैरी और व्याधि अंकूर से
जानी तत्क्षिण नाश हो भाई तो आगल वधे नहीं यह नीति वचन विलास
हो भाई श्री १३ सत्य वचन ये नृपने कहे जो हित चाहत हो भाई
नहीं वश फिर है म्हारो यों कही देवी जय हो भाई श्री । १४ । जय
तब ही भावती चिन्ता व्यापी अपार हो भाई असंभव बात कैसे बणे देव मि-
थ्या न करे उचार हो भाई श्री १५ कहे श्रीमतीने जगपने साम सगो
निरतंत हो भाई श्रीमति कहे सुभ नैपद ये ही रक्ष अवंत हो राजा । श्री
१६ नृप कहे असंभव बात ये दोनों कुंवर विनयवंत हो राणी । कुल भूषण
दूषण विन केम सुभ दुःख करंत हो राणी श्री । १७ राणी कहे अहो
नाथ जी लोभ पाप को बाप हो राज होती आई अनादि से जाणो छो
शास्त्र ने आप हो राज श्री १८ स्नेह सगपण लोभी न गिणे राज



लछमी के काज हे राज कोई नारी नारी कोई जो निफलत में रह
हो राज श्री १९ सन्देह नहीं अम्बा वचन में चेत गई हेत कान
हो राज कलिज सुभ धूजी रहो कुशल रहो अहो रान हो राज
श्री २० सत्य रहजो नथजी करो योग शीघ्र जाय हो राज तृतिय
ढाल असेलक भाई रानी का चिन्तित थाय हो भाई श्री २१ दौहा
रानी सुनी का वचन सुन तृपति अति चिन्तार कूल भूषण सुभ नन्दन
कीए विध नारी जाय १ विष वृद्ध हथे लगा चिय ते लिए नहीं कटाय
कल वृद्ध सन तनुज दो बिन पुन्हे किन मराय २ जनम से आज दिवस
लगे कयौं न कोई अन्तराय आगे न उल्लंघी नहेरी ते किन होवे दुःख दाय
३ कद रानी सेवक वार से बोले मिथ्या वेन पा देवी कयों मिथ्या लवें
अश्रई अधिक एको ४ यों चिन्त सागर विषे राय गोता रहा खाय
वड कूप के नध रहा सुझे न कोई उपाय ५ ढाल ४ श्री वैदरवी से

नन व्यो यह देशी उत्तर आनन रहे नहीं नीच न लाज न आय हो
लाल छेशरी जाते एक वचन से श्याम हुकमें बहु आय हो लाल उत्तर १
निश्चय मन नहीं रीति कीरो नगर में नहीं सार हो लाल दरयूरी नहो
सबूं ज्यों न होवे कोई विगड हो लाल उ० २ फिजा कैरी का के सबूं
नहीं न जाने पाय हो लाल बिन चेतर्यां बिन हुकम से नहो पास न आय
हो लाल उ० ३ फिर किम दुःख देशी मुझ भणी जचीयो एही उपाय
हो लाल बोलयो दरवान ने शक हुकम यों फरमाय हो लाल उ०
उमरों ने मेरे हुकम बिन जाने न देना बाहर हो लाल तैसे न आवे मेरे कने
नर मत आन जाहर हो लाल उ ५ यों पुछो वन्देवान को निश्चिन्त
रहे राजन हो लाल प्रेते तर चरण वन्दन कुंवर आया दौडी स्थान हो
लाल उ ६ दरवान रोक्या तिहांए कहे पूछ आऊं हाल वर हो लाल
फिर आय अन्दर पाधरजो हुकम कियो दरवार हो लाल उ ७ खेद धरी

अति पाइय दोनों कुंवर तत्काल हो लाल फिर अजहीं रोष्य जवाब हुव
कांइ हवाल हो लाल उ० ८ आप जाए अजाए में कीने नहीं को
कसूर हो लाल फिर तुम्हें आज आपने नृपति राज्य दूर हो लाल उ०
९ आसमान स्थान दीए एकहीं रहाए जुगते नर हो लाल पुरें अय
राजकुल तिसे आगे भी पुगाय सैन आय हो लाल उ० १० अटन किय
अन्य देश में भ्रमण परिद होय हो लाल चातुरी बल बुद्धि वढे सौं चितव
ते दोय हो लाल उ० ११ परवश पाए इहां रहवे रहत ते मोटे दुःख हो
लाल परदेशे फिर आपए हित भोग स्वेच्छ को सुख हो लाल उ० १२
निशान आमन नहीं करी पड्या रहे तेहीं ठाम हो लाल नीति वचन ए है
खरे सुइ हजी लहे आराम हो लाल उ० १३ ❀ श्लोक स्वस्थान
न मुच्यते काका कापुरुषा मृगाः अपमाने प्रयांति सिंह सत्पुरुषा गजाः
१ ❀ ढाल इन रीती रहत रही अब मेहल को ठार हो लाल

सबह कारण रीत भणी श्लोक रचे तेही ता हो लाल उ० १४ ❀
श्लोक तुलसकल्लेर सहसे वृषैवं सत्तं प्रमाणं निखिलन येहि गुरुत्व मत्त द
गुरुत्व दुस्तर कोषशेषेण कुट्टहर्षस्मात् १ रत्नानि रत्न करणं वस्य
महोर्मि भरितही ते बहुनि हतिरत्ने वेह गुणै तिरस्वानी मनिन मूलक्ष माली
मंजी २ न चैव दोषस्य किन्तु कस्य पर्यस्य यः दोष करत्तवानी गु-
णैश्वर्यं कथनस्य शक्ति तेषां गुणैः नैहि प्रवृत्ति ३ ❀ अस्यार्थ
ढल अहो रतनाकर तुं मैं कहं सब का तोल हो लाल ऊंच नीच
नी खबर नहीं तिणथी तुम होती मोल हो लाल उ० १५ रत्नाकर रत्न
करंड को सर कर न अभिमान हो लाल वे रत्न रूठ जो तुम थकी ते
तुंही सहसे अपमान हो लाल उ० १६ पण दोष नहीं यह तुम तणे
वह डिरे कीने दोष हो लाल गुणी गुण सर्व स्थान पामी बढे रत्न की
शोभ हो लाल उ० १७ ए कथी तीनों श्लोक को पत्र चैंटरो द्वार हो



लाल सुरत धारसिंह साथ चले दोनों कुमार हो लाल उ० १८
शकुन श्रेयकार तब भये ऋद्धि सिद्धी दातार हो लाल सम्भ हर्ष
धारा सीख्या काल के नम्मर हो लाल उ० १९ निश्चयवदी दवे
कुली उर सोच नहीं को लगार हो लाल विश्वास सुशकुन से
चलिया उत्साह अपार हो लाल उ० २० पुराण पाले पाले पवे सुख
विशाल हो लाल ऋषि अनल ने यह कही सांली चौथी ढाल हो लाल
उ० २१ ❀ दुहा जन्मान्तर नाति तद संभर्यो कुमार बोलिया
निलिय नहीं तब भय पाये अपार १ पावे कहिं हि गुरु रही करे अ-
चिन्ती धात ढूंढवे अति हंस से द्याल तब अात २ दूर पत्र जे
लाविये कहु सहु सनचर नृप संत सबै लही ततिश्रण अपार द्वार
३ पढ़िया श्लोक तिहूं प्रकट तहां अर्थ सम्भ सब भूप पासंस्ये कुल्हे
मुवे हह बुद्धि अनूप ४ चिन्ते नृपति श्रेय भयो सहजे टलियो पाप

मैं भी यहां निश्चिन्त रहूं तेभी न पाप करूं ५ दोनों कुंवर की मात सुत
दुःख ते पाइ अपार श्रीमति हर्ष घणी करणा पुत्र सिरदार ६ चिन्तित
न हुवे कोइ को होवे जो होण हार ओतजन अमल सुणां जय विजय
अधिकार ७ ❀ ढाल ५ मी बलुड तूं संग न जजे पाछो घर
वेगो आजे । यह चाल । दुगय पल भव्य जन जोजो जी दुगय काद उ-
लुक होजो जी टेर जिन २ कुमर अमल बडे तिन २ शकुन और थाय
चिन्ते इण वन ने वेगे नहां लग मिले किरये आय पु० १ अमल
विमल यह वन में शीघ्र जावे देखत विनोद नयन ने हुवे भय लिये
विश्राम घणी प्रमोद दुगय २ मिष्ट निरोग फल भोगव्य पीवे शीतल
भरणा को नीर बन बनवे प्रेम की बैठ तरु तल दोनों वीर दुगय ३
दुपट्टे बीछाइने भुज उसीसे तल देय शकुन मन्द निरखे तहां भूमी पे
बैठ तेय दुगय ४ जैसे वृक्ष आइ पडे सुइ होवे उसी प्रमाण छेद न

देदे चित्र में फल रेही पर विइन दुगार ५ लहु वन्दन निद्रित भय
जी जेहु छांय निश्चिन्त जय जी पड़े चित्र में पूर्व पश्चात केइ चिन्तित
दुगार ६ तेहि ज वटन दूद टे जी रद दुरल मुडे रेय दोऊ दोनों
दुगरान को रदणी का जोड़ी केर दु० ७ प्रणेश अज आपने हरे
हुव प्रहूए रज कुंवर इनी गुणी दर्शन रोरय को रांचे लालन
दु० ८ रद कहे सुगुणी प्रिय जो भली घेरइ नेय हर अरय न
जय राखि हूं तेषु हिवए देय दु० ९ त्रिजने मिलए दोहली
तीनों वस्तु है मुख पन ते इनके अरणि की हूं ते पूजं नहीं अस दु०
१० हर्षि दम्पति नमन करे मन्दे जयजी ने पर नमन कियो नेपुर
नरसी ने करे आदर दु० ११ भले पधार्य प्रहुण अज पवित्र आंगन
कीध हम जोली भक्ति की तुम मुक हो रज रिध दु० १२ अन-
ल्प वस्तु त्रिहूं मुख को इया की करो अंगीकार आप जैसा दुगरान के

जोगी है जी कारनें उपकार ॥ दु० ॥ १३ ॥ प्रथम मंत्र यह लो उरे ॥ कीजे
सत दिन जाप अटनें दिये निश्चय पावे ॥ यह राज्य ऋद्धि अपार ॥ दु०
॥ १४ ॥ दूसरी मणि यह अमूल्य छे इसे रखे जब मुख मझार ॥ रूप होवे दो
जैसे ॥ उड जावे गगन मझार ॥ दु० ॥ १५ ॥ पहली पाणी पवतां स्थावर
जंगम विष करे दूर ॥ सगरी युत भोजन दे सहू ॥ वली इच्छित ऋद्धि पूर ॥ दु०
॥ १६ ॥ तीसरी जडी यह औषधी यह ॥ जो होवे शस्त्र अग्नि दव पदुदंश
व्यन्तर दुःख ने ॥ हरे लगायां अटल उपाव ॥ दु० ॥ १७ ॥ यह थोडी सेव न
हेरी बहु जाणी करो अंगीकार ॥ सुंदर अचिन्त नहलभ जो हियडे हर्षे
अपार ॥ दु० ॥ १८ ॥ अग्रह सत्कारे ते नही सन्तन्ये कुंवर ने आप
पर संसे भक्ति घणी ॥ वली नमन्ये प्रेम उपकार ॥ दु० ॥ १९ ॥ हर्षित हुए
दोनों घणा जो सुणी कुंवर ना वचन ॥ नमी गया निज स्थानके ॥ आणी ने
हिये रतन ॥ दु० ॥ २० ॥ यों पुण्य के प्रभाव से अल दुःखे पावे नहीं सुख

ढाल पंचम अमोलक भली ॥ अति रसीली कथा सुख ॥ पृ० २१ ❀

दुहा ॥ जय जी मन आणंदिया । पामे अपरंपार ॥ सुत लघु बंधव को रही न चिन्त लगार ॥ १ ॥ नह अवैधी प्रभव से । उपसर्ग न जरा होय ॥ निशी सर्व तहां ही रहा । सुखथी कुमर दोय ॥ २ ॥ प्रात जय जी जागिया । विजय भणी जगाय ॥ नित्य नियम स्थिर चित किये । तेतले रवि नाटय ॥ ३ ॥ प्रेम तुर जयजी हुई । लघु बन्धव को जगाय ॥ पूर्व सुकृत यहां फले । अनुकूल निस्तु पाय ॥ ४ ॥ यह गुनल की भक्ति को । कहे सर्व विरतन्त ॥ देवई तीनों वस्तु ते । विजय भी अति हर्षंत ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ढाल छट्ठी ॥ रियजी शरीर चिर नहि कोइ नहीं ॥ यह चाल ॥ दोनोंजी भाइ भइराणी प्रीते ॥ कहां देखिये जग में रीति ॥ देखो० ॥ टेर ॥ राजनन्द विहि रहित बताय ॥ अग्र के प्रेम अति ॥ अति अग्रह कर रस लिया । देने राज दीते ॥ देखो० ॥ १ ॥ कपट रहित रो नन्द । यदकर करत विचार चिते राजधानी जेष्ट बन्धव

होवे यह शत्रु की नीति दोहा० २ अति नम्र हो मिष्टवचन से यौं
करत विनंति तिस सम जेठ राज योग्य तुम अन्य दिय यह वृति दोहा०
३ मैं तुम सन्मुख सेवक सो रहूं ज्यौं लक्ष्मण रघुपति इसीलिये विद यह
अप सिद्धका होवे भू इन्द्रपति दोहा० ४ जय कुमर लघु बन्धव
तांइ वांछे करण भूपति बोले तूं किम नहीं राज जोग्य न बोले जे अघटति
दोहा० ५ आप दोनों राज योग्य हों लक्षण गुण आकृति दोनों मिल
सिद्धकरें यह सिद्धी रहका पुत्र यति दोहा० ६ विजय वचन प्रमाण
करि ये बैठ जाते ठीति लघु बन्धव के शिर ऊपर जयकार ढौं रीति
दोहा० ७ नव्य जन ताज न करि किंचित मुख होलवे नीति दोहा० प्रेम
जेठ बन्धव का निर्लोभी ज्यौं जति दोहा० ८ तात ज्यौं भ्रात की आज्ञा
पालन विजय सदा स्थिरचित्त यश वृद्धि रहे सर्वदा दोहा लघुत्व की
नीति दोहा० ९ पापिणा ज्यौं परिश्रम कीजिये जो है नम्रछति

नारि प्रथमहि उडिके गगन में चलिय शीघ्र गति दोहा० १० विद्याधर
गन विविध प्रकारे क्रीड करत दीति संत सतेरौं के दर्शन करते सुने
व्याख्यान रीति दोहा० ११ पुष्पित हुते तेहि नारि पारे नीर भोजन
इच्छति शल दल पक्वान व्यंजन तेय सार सुखद बहुभांति दोहा०
१२ उत्तम भूषण वस्त्र सजे सद दान पुराय करते वीति देवस्थान सों सुख
भोगवते जय आनन्दे रीति दोहा० १३ यों वितत ते दिवस
रहते कानपुर ने आंकति उतरे आइ वन नहीं हवे जो नगर छति
दोहा० १४ सदा जन स्वर्गपुरी से दिव्य ज्योति भलकति चित्ते चित
में जय जीते करे आज भइ ले रजपति दोहा० १५ पण यह ते गहाए
न करत नाहरी लज्जवति इस कारण भेजूं इसने ही दूर में . मैं यहां ही
लेहुं विश्रांति दोहा० १६ कहे भइ मैं विश्राम यहां लेहुं तुम जाओ नगर
मे ते आनेहि वस्तु लेले से लज्जे न कह जो है मति दोहा० १७

थोड़ी वार है मैं भी आवूं । विजय सरल प्रकृति मनी वराण चले कनपुर
में विसरे बात चित्ति देखो० १८ आये पुर में ताते छवराये बैठे एकांत
रीति मार्ग भेद करे बड़े भाइ की । भेदे नार प्रति देखो० १९ पुण्य
फले ये इस नगर के होवे आवी ही रति कह आनेल सुणे आहो भेत
छूठी ढल इति देखो० २० दुह ते अवसर ते पुराति आपुत्रो नाए
तय अन्यने नदी दिय दिन दहन क्रिय नथर १ सनमत नेल
समति करी पंच द्रव्य संग लेय फिरे तद राजपुर विषे पुण्यपाल कोइ छेय
२ राज लालस बहुत घर द्रव्य सन्मुख बैठे आय संचित दिन किम
पामीये द्रव्य अपूठ जाय । ३ फिरत २ आविया जहां बैठ विजय कुमार
दैव जोग तस जाणे वूठ द्रव्य श्रेयकार ४ गज गरज्यो हयवर हिंस्यो
कलश ढुल सिर आय छत्र छायो चामर ढुले सब सनन्द देख राय ५
ढाल ७ वी आज आनन्द घन जोगीश्वर आया यह चाल पुण्यपाल को

सुख सागर गज विजय पुराय पर सवाये ले सूंडे से ... कुंभ स्थले
बैठा उंचे उंचो पद पाये ले पुराय० १। कुसुम वृष्टि सुर करी उपर
... रज भूषाये सजाये रे ले प्रत्यक्ष देव प्रभाव यह देव के सज्जन सहु
हर्षाये रे ले पु० २ पुराय देखो जाणी विजय के जय २ शब्दे बधाये
ले पंच शब्द वाजित्र बाजे विरुद वली बोलाये रे ले पु० ३ तप
तेज बल प्रकृति निहाली नम्या सर्वे भूपाली रे ले । हर्षी प्रजा मुखे
चडीलले भांगी चिन्ता कंकाली रे ले पु० ४ प्रकाश थें बोले
देव वाणी यह छे उत्तम प्राणी रे ले सहूजन पाले जो रहणी प्रकार जो
चले सुख माणे रे ले । पु० ५ ये सुण प्ररिजन तरस जो पाया नहीं
तस्दीग पाये रे ले पुरेन्द्र सन प्रताप जाये तस नेहले चलाया राज श्याये
ले पु० ६ तब कहे विजये सब वैरी हरीये ... नहीं कहीं करीये
ले सुख जेष्ट बन्धु गुण गाया दरीये तास हुकम प्रजा लोले पु०

७ सो इहां छे बाग के मांही तावो सरकारी बोलाइरेलो । तस देवो रुन
तखत बैठाइ होसी सहुने सुखदाइरे लो पु० ८ यों सुनकर सब आश्चर्य
पाये अहो निर्लोभ विनीत सवायारे लो प्रधानादिक बाग में आया एए जाय
जी तस नहीं पायारे लो पु० ९ तब सचीवादिक कर जोड बोले अहो
रत्न अमोलेरे लो देव हमने महाराज आप खोले । पालो ऐसे राज अलेरे लो
पु० १० आप पुण्य आप संपत पाया सो तो बीज थी नहीं बिलसायारे
लो बड भाग कोइ स्थान न पाया अन्य स्थान सीधायारे लो पु० ११
तब विजयजी चमत्कार चित मांइ दिन सातम जायाइरे लो इणही काज भाइ
दीयो तुम पठाइ आप तो दूर गयाइरे लो पु० १२ होणहार सो
निश्चय थावे अब भाइ किए विध पावेरे लो ते तो गगन भमें नाणी प्रभावे
सुभ दृष्टिए कैसे आवेरे लो पु० ॥ १३ यों फिकर करता राज में आया सब
जन मिल गादी बैठायारे लो पहिला नृप की दहन क्रिया करी । जग व्यवहार

करावे रे लो पु० । १४ । जय भांइने जरा विसरे नहीं दीए २ चित्ते आइरे लो । राज रहेवी शुन्य लखाइ पण रह्या फसे फसइरे लो । पु० । १५ पुत्र तणी परे प्रजा ने पाले । नीति प्रमाणे चालेरे लो सज्जन जन न दाणही सुहवे दुश्मण ने नमसलेरे लो । पु० । १६ निज राज में हिंसा बन्ध कराइ कु-रिवाज दीया मिटाइरे लो । न्याय वाले ने सहुने बताइ ए सुखी करी प्रजा ठाइरे लो पु० । १७ दान शाळा विद्या शाळा स्थापइ अनाथालय की धाइरे लो औषध शाला धर्म शाला थी । कीर्ति विश्व फेलाइरे लो । पु० । १८ । पुण्य प्रताप जे संपति पाइ पुनः ते पुण्य में लगाइरे लो पुण्य से पुण्य की वृद्धि थइ पुण्य सदाइ सुख दाइरेलो । पु० । १९ एवा हे इहां सदा सुख नांही बीजयजी राज पद पाइरेलो स्वर्गलक्ष उत्सवे ठाल रहह सरनी आपी अनेलक्ष नाइरे लो पु० । २१ दोहा जयजी रही अन्त लिख दिये देख्य रहूं विरतंत बंधव भूप हुवो लखी हुवा खुशी ते अत्यन्त १ पण इच्छे

नहीं मिलए को रहे महके फंद मांय विदेश कौतक देखन की
इच्छा निष्फल थाय ॥ २ ॥ इम चिन्ती मिल्या दिन चाल्या नगन मझार
कौतक निरख जोवंदा आलस न को लगार ॥ ३ ॥ उत्तम पुरे उतंग गीरे मह
न वने सर पाज उदधि आदि स्थान के विचरे इच्छा त्याज ॥ ४ ॥ नर ए प्र-
भ्रमे पूरवे मनोरथ मन का सर्व पुण्य तमने पायके वरते सदा ही पर्व ॥ ५ ॥
❀ ढाल दूजी ❀ श्रेणिकराय हूं रे अनाथी निर्ग्रंथ यह ❀ श्रोताजन सुणियें
पुण्य विरतंत जयसेण कुमर पुण्यवन्त श्रोता टेर तिए अवसर नहीं
मंडाणे जी जयपुर नगर प्रधान गढ मढ मन्दिर मालीया जी अलकापुरी
ने समान श्रोता ॥ १ ॥ जेत्रमल नाम शोभतो जी न्यायी तहां को नरेश
दाता भुक्ता गुणनिलो जी सुखद सहु ने हमेश श्रो० ॥ २ ॥ जेत्री आदि
तीनसो जी अंगना रूप शीलवान पुत्र पांचसो जाणो जी एक पुत्री गुण
खान श्रो० ॥ ३ ॥ जेतश्री जीती लक्ष्मी जी रूप कला बुद्धि तेज शरी-

वदनी ज्यों सुरंगन जी रोवत उपजावे हेज श्लो० ४ तिणही पुर माहें
रहे जी कनलत वैश्य अनूप रूपे लजाइ अपसरा जी तेजे दीपे जैसे धूप
श्लो० ५ चन्द्रवदनी कुरंग लोचनी जी शुक चण अरुणोष्ठ कम्बु ग्रीव
उर उरजनी जी सुवर्ण वरण अंगोष्ठ श्लो० ६ गजगमनी दंत दामनी जी
कामनी मोहन वेल पांचसे दीनार देवे रोही जी भोगवे तास छेल श्लो०
७ जयकुमर आया पुर विषे जी ऊभा तस घर द्वार नयन वयन लटका
करीजी मोहित कीया कुमार श्लो० ८ कंची पट नहीं गया जी द्रव्य
अपार तस देय विलसे सुख पांच इन्द्रिया जी सदा तहां सुखे रेय श्लो०
९ मणि तणे प्रशाद से जी नित्य प्रत बहू मेलनल वस्त्र भूषण भोजन
देवे जी द्रव्य इच्छित तत्काल श्लो० १० नर कामलत तणो जी
कपट कला की मन्दर अक्का वृद्ध वसे हुइ जी जाण्यो लोभ अपार श्लो०
११ खेद न चित चिन्तवे जी मूर्ख पुत्री मुझ लुब्धि एक ही नर सं

जी जाणे न कुल की गुम श्लो० १३ बोलइ कहे पुत्री ने जी अनिष्ट
चरण करू तैं एक नर हरण कीयो री फूली सेवन के नूर श्लो० १३.
कुल चार किम थें तजयो री भंग कीयो तेरो नेम पांचसो नेर नित्य तुम
देवी रहुं ही कीजीये प्रेम श्लो० १४ कामलत देवडीये जी
नारी भूप बहु मोल अब खुसी हुइ दासी जी लोभित हो करे तोल श्लो०
१४ लटी हथे आवियो जी कि हथी लटे यह माल किसी पूछे
पुत्री को जी कहे तूं देखया जे हाल श्लो० १५ स कहे छोटा बटवा थको
कोटडी मांही जाय तहां भूषण भोजन देवे जी दीए नांहि ते लाय श्लो०
१६ पुनः कहै अब पूछजे तूं तास मोह उपजाय यह करनार हथे लगे
ते दरिद्र आपणो निवार श्लो० १७ तनुजा कहे कांई अछो जी
पूछे निज वात अनिष्ट लगे जाते तजी ते सुभसे विरह न जात
श्लो० १८ नित्य से अधिको देवे जी द्रव्य आपण नित्य तेर

अति लोभ दुःखदायी है जी । न लीजे कोइ को छेर ॥ श्रो० ॥ १९ ॥ इम कही ने भगवइजी । आइ कुमरजी पास । अन्तर नहीं जाए वतीजी नित्य नव अवसर विलास ॥ श्रो० २० ॥ सुसंयोग्य पुराये लहेजी । लोभे मूलही जाय । अरघी दल अमोलकेजी । जो वो अका का उपाय ॥ श्रो० ॥ २१ ॥

❀ ॥ दोहा ॥ अकाने लागे मूलडो । लोभ तणो विकराल । बारम्बार कहे पुत्री को । पूछ कहां से दे माल ॥ १ ॥ आग्रह अति जाणी मत को । एकदा अवसर जोय । ललचाइ पूछे जय भणी । फरमावो गुप्त भेद ॥ २ ॥ इच्छित वस्तु नित्य प्रते । जो आवे हम तांय । कहां से लावो स्वामीजी । सच्ची दो फरमाय ॥ ३ ॥ विजय सुणी चित चिन्तवे । जो राखूं में छिपाय । तो तो भंग पडे प्रेम में । रखे यह दुःखदाय ॥ ४ ॥ गुप्त कहवो नहीं कोइने । नारी ने तो विशेष । उत्पात कोइ उपजे यह नीति निदेश ॥ ४ ॥ ❀ ॥ श्लोक ॥ न कस्य प्रकाशितः । गुह्य स्त्रीणां विशेषत । तत्रौ तथापि स्नेहे । स्त्रीवश्यं किम कुर्वते ॥ १ ॥ ❀

दोहा पाए यह बचन ने तीसरी मोहमद छबी कुमार तिलक नत दवी
सहू आनन्द निमित प्यार ५ ❀ ढाल ६ मी नेह पद पवै हो
जिनन्द गुण गावतं यह० . कपट कल देखो रे चतुर वैरन ताणी . टेर
कमल निज मनने मरे कही समली बात नांउ अक्ष सुणी हर्ष घणी
सरे ज्यों दुखित चीर खंड . क० १ तेह मणीने हरण करण को उत्सुक
थये तस मन कपट कल केलवन कारण करवा लगी यतन क० २
छल छिद्र नित देखें विजय का सूचक मंजरी जेम पानु नाणी हथ नहीं
आवे घरे चित्त अहेम क० ३ तब समझी हों शर घाये नाणी त्यावे
निज पास कीरती मुझ हार ए लगे करूं कैसे प्रयास क० ४
अवसरे नित कुमर पास आइ भक्ति करे बहु कोउ कल केलवी वन्द किय
तस कुण को कपटी हेत क० ५ चन्द्रहांस मन्दिर तस पइ डली
मरम के मांय दिए में प्रसन्न हुआ कुमरजी तब हर्ष ठीक अपार . क० :

६. कुंडलीकी नारी गुन स्वान से तब पाइ फिर खेन छिन, गुनी तन गुन
स्वान के हाथ न लागे जैन । क० । ७ । कलन्दर ते नर्थे उतरीये । कुनर
हुवा सवहन । संभलत ढिग मणी न पाइ खेद पाय असमान । क० । ८ ।
सनमन मन अक्क सुमन छलीये । डाली ने नेह पास । मणी हरी कंकर धर्यो से
रहो । कीयो सुमन निरास । क० । ९ । ऐसी नदिर वस्य में डाली । कांपिले
अरी सीस । इण ते मणी लेइ सुमन छोड्यो । करी अति वकसीस । क०
१० । अरत अति उपजी चित नाही । चिन्ता से प्रजवले अंग स्नेह बंध पड्यो
कलन्दर को । तज्यो न जावे संग । क० । ११ । निर्द्रव्य नर कुनर ने जाणी
अक्क सुजा बोलाय । कहे दरिद्री कहड घर बाहिर रहे कुल कलव्य नांय
। क० । १२ ॥ निर्धनिय से नेह करण को नहीं आपणे आचार । नन दि-
ठस ते वाणी नहरी दे निकल घर बाहर । क० । १३ । कलन्दर ना वचन
सुणीने सुरभाणी मन मांय । उत्तम कुनर के गुण में लोभाणी बोले यों नर

मर . क० १४ इन पुण्यवन्त कों नहीं छोडूं जबलग जीव तन माय
धन इच्छा किंचित नहीं तुम्हारे गुणवन्त की है चाहय . क० १५ पूर्वो
पार्जित कोइ पुण्य जोगे यह आय आपने द्वार आप द्रव्य दियो आपने
ताइ किम कहडी जो वार . क० १६ कुलवन्त को पातक नेटो निर्दय
काम न कीजे तुम दानी श्याणी सहू समझो मुझ ऐसी शिक्षा न दीजे
क० १७ ते पण बुद्धि वात न माने तणे आपनी रुद्ध वार २ कहे
निकल जल्दी लोभ वश हुइ मुद्ध क० १८ कमलत ते जब न
माने करे नित्य नवल विनोद ते देखी अति होसी प्रजले कोप लगी
विरोध क० १९ कमलत ने कमे पठाइ जयजी को कियो आमन
कर भली कहइया घर बाहिर बोली हलकी जबान क० २० कुमर सदन
तज आयत धरत जा बैठा गुरु स्थान कमलत आइ पति न दीठ कीनो
अति ध्यान . क० २१ निज दासी हाथे ढुंढाय . पण कुमरजी नहीं पाय

हुइ निराश अति दुःख धरती । अन्न न नहीं चैन नाय क० २२ । बीच हो उत्तम आचरणी यों पुण्यात्म रहे ढाल यह नवमी गाइ अमोलक शीघ्र शीले सुख अहे क० २ ❀ । दोहा । गुरु स्थान जाइजी कीते ध्याने आर्त ध्यान नीच नारी संग करी पाये मैं अपमान ॥ १ । अमूल्य नह नाए नइ छुट्यो प्रेमल संग नीच परम हेरे किये नन इन भंग २ किहां जाऊं किणने कहूं करूं अब कांइ उपाय । आपत्यो कर्म जाल में हे प्रभु अब करूं कांइ ३ विश्वासी नारी संगथी छोड्या वैभव संग ते गइ सब सुख लेइ भुम्न अब होसी किस्यो ढंग ४ कर काले हटे नहीं न्याये नीर वहाय देखो पुण्यात्म प्राणीया शीघ्र ही सब सुख पाय ५ ढाल १० वी बहनी ने सुंदरी दोनों बइ यह० हिवे तिण अवसर ने नांइ जेठमल राजरी जेत श्री बइ खेले सखीयों ने नमारे । पुण्य वन्त ने सुख मिले श्रेयकारे १ । खेलती नदी ने तट आइ सखीयों साथ ते पाए

नहइ बाग सजी निकली बारे पु० २ सुनी न अशुभ कर्म जगत अचिन्त्य
शिव तन अंग लगा मुरछी पडी धरणी तत्काले पु ३ जैसे वृद्ध
तरो टूटे शाख मुख फटे विकराल आंख देखी सखीयों डरी भारे ४
कोइ दौडी आइ राजजी पासे हाल कह सब प्रकारे घबराये भूप सुणी
सनचारे पु ५ तत्क्षण आय कनी पासे देखी चेष्टा हुवा उदासे
सज्जन प्रजन मिलिये परिवारे पु ६ कोइ रोग कोइ दोष बतावे ये कोइ
कोइ तरह बैन लावे लग उठइ मन मम्हारे पु ७ मंत्र तंत्र जंत्र बदी
घणा आय डोर दांड धुप दीप कोइ लगाय औषध भेषद करे उतारे
पु ९ भेद बब वैद सब हार्या एक ही नरज नहीं सार्या निकम्मा भया
सहु उपचारे पु १० वेदना अधिक बढन लगी चेष्टा बिगडी नणा भींची
जगी मचो मेहल में हाहा करे पु ११ भूप राणियां मइ भोजइ सहुने
पणी अति बइ कर्म आगे सब लाचारे पु १२ सचीव कहे नहीं पति तहँ

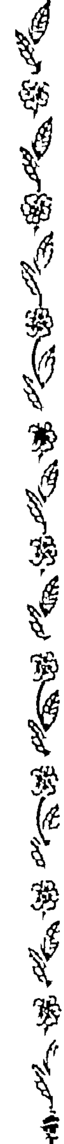
देवो नगर में दोंडी पिटाइ । इनाम श्रेष्ठ कीजे जहारो । दु । १३ । जो खुटी
नहीं होसी आतुरसी तो पुण्य तम कोइक आसी और तो वस नहीं लागो
दु । १४ । नरेश रे बात पसंद आइ तत्क्षीण हुकम सो फरनाइ । शीघ्र
करे प्रसिद्ध नगर मभारे । दु । १५ । जो कइ का दुःख गमावे तेहने बाइ
यह परणावे दायजे दे क्रोड दीनारो । दु । १६ । यों ही तब पडह बजवाइ
सुणी ललचाइ घणा आराइ । पण दुश्मन किण किण मिले ऐसी नारो । दु । १७
जयजी उद्घोषणा श्रवण सुणी । तत्क्षीण हर्ष चित्त धुणी सुमन पास औषधी
श्रेयकारो दु । १८ पडह छबी राज में आय । केइ तरह ढोंग जनाय,
आडम्बरे होवे नकारो । दु । १९ । औषधी प्रक्षाली पाणी मांही दीनी कन्या
ने पिलाइ भगयो व्यन्तर पडी किलकारो । दु २० । तत्क्षीण कुंवरी स्वच्छ
होइ । देखी परिवार सब हर्षाइ प्रत्यक्ष देख्यो चमत्कारो । दु । २१ नृप पुण्य
वन्त जय जीते जगाय लक्षण संस्थान रूपे यह छाय । जोनी जोडी ये कारो

संस्कारो ॥ २२ अति उलटो जेतश्री पराए इ उत्तम मेहल दीय रहत
तई नव भूषण दर अदि सुख सारे ॥ २३ दो सुंदर सुन्दर की
दरे जयजी नित्य प्रत नेह करे गुणवन्ती निली छे गुण धरे ॥ २४
अचिन्त्य फले करी पुराय इ दशी ढल दशमी नंइ ऋद्धि अनेल करे जन-
ने ॥ २५ दोहा तेण ही पुर न्हें रहे धूर्त एक सिरदार द्रष्ट ते
प्रेरी अति कपट कल भन्डार १ जय नहीं तेण संभली औषधी
को प्रभाव ते लेवण इच्छा जनी फरियो तब ही उपाव २ दर्शी रूप
सने करी रहो अजयकी पास विनय विवेक भक्ति करी कीय कुमर विश्व
ास ३ जयजी भद्रिक भाव सैं रीजय गुण तस जोय गुप्त कछु राख्यो
नहीं दीठी जडी ते तोय ४ हरखो अवसर पाय के ले गयो तेह उठाय
जयजी भेद न जाणीयो सरल पणे सुखे रहाय ५ ढल ११मी पहिले
संबर जिन वर यों कहे यह कोइक काण उपनो एकदा पेहे औषधी खोवी

जा तद चल । तद तिहं कूटी न नइ छनकइ ढकनरि । कहीं नइ
कोई हरण कीनी शेक इन बहू आनेरा न देख्यो भट जोवयो तब । तस
परे नहीं पावरि सुणे श्रोत कहे वक्ता धूर्त तेहने ठेरवरि । १ कुमर
चिन्तातुर चिन्ते चेतने थिक्क २ होजोजी काटी तिनने चल । काटी नित
विश्वास पाण्डी नन्दे वित्र आपरे तेव रहे दया आरहे करे करी बहुल
पाए आहीर ठतक पतक काके चिन्त जवल सिलावई कहे वक्ता सुणे
श्रोत उनित कान न आवइ । २ शेक कियं रे हे पछे न पावरि सन-
त रहे ते सुख मेले नारी । चल नारी पल मिले सन्त से आंखडी
के पल में लिये बहू गुणवन्ति रज कनय पारी ग्रहा इण से भरे नये
कंइ आपणे यह लभ से हर्ष आवइ कहे वक्ता सुणे श्रोत सन्त रे
सुख पावइ ३ देव जो दीठी हो देवर नारी आंख्य । से कैसे जवे हो
छोडी ने पेख्य चल पेशक छोड़न जवे कबहू दोडी मिले दुरय थी

देवे देवी देव देवी पुरण थी कुछ न्यून नथी । रौं इन से फिर स्थान ल-
कर सुवे रहे कुमर रहे कहे वहा सुणे श्रेत इन पदथी सुखदइ ४
हिवे ते अव्वर वैश्य एकद धन इच्छ धन पूजी नाणी तद चल पूजे
माणी इच्छा धाणी धन देवे देव हन भाणी पुरण वेन देव तुटे नहीं कि-
पूरे इच्छ तेह ताणी फूटी कोड़ी धन नहीं मिलय से नन मैं अतिपस्तवह
कहे वहा सुणे श्रेत दरवज दुःख पवइ ५ पुत्री निभोरे नदि वहा तुम्ह
भाणी पुरणवन्त कहइये मैं जाणी बुद्धि तुम्ह ताणी चल तुम्ह टरी बुद्धि
भृष्ट भइ हथ आये निधि खोइये तुम्ह वल्लभ को अन्तर पडहो हृदय
अति सुम्ह रोइये हिवे तस कोई अवर न वछू निश्चय सुम्ह नन यह रहे
कहे वहा सुणे श्रेत मिटी रौं जाणवइ ६ सब परिवार हे निन्दे अवका
भाणी धिक्क २ बुद्धी रे कहइये पुरण धाणी चल पुरण धाणी हुव पुज
जनइ हिवे एहवी वेउ कहइनरे धन लूंटी निकाली कूटे फोड बहुत ही

पखरे सुनी ग्रब्क डरी देल में धनकी पर जनवनी कहे वक सुए
श्रेत जरजी के पुराय रहही ने ७ देखिक नन्दु हे धनी गए ने इ-
च्छित ग्रे न ग्रो ग्रनाए ने चल ग्रनाए वैश्य ने तिरकी कहे
रम तकठ नेली जने देखे कुनाचेनी जो तून कने नरली नहीं ते
पूरे वेचर काजे ने हुव रज ग्रदीति कहे वक सुरे श्रेत जेट दु-
खरं कुरी द ग्रब्क धनी ग्रइ कुन कहे रुदन करती हे का
जोडे भए चल जोडी कर कहे कुनर रे खने ग्रपाद देव न-
हेरे पालन हुइ में नदी जोने किये गुन्हे बहु श्रंपरे ग्रहे नश हन ने
ग्रप छन्डे नन्डे प्रीति रज बइरे कहे वक सुरें श्रेत कौन हन-
रहइं हे ० रज नरत रे ग्रप नेहित भर नदि की रेव ग्रौर सुव
भूली र चल भूलिय ज्यों स्वर्ग जइ निज कुटम्ब भूले रही त्यों हन-
री नरन लीनी धनी किये जने कही पा हनरे ग्रप रकहे ग्रदर दूव



को नही कहे व्रज सुणे श्रोत न्हश्रेरे वेले रही मनु आते जी कन्ल
ज्यूं कूले त्यों तुन विरह शी पुत्री सुभ टलवले चल वेल वेले वेन
जर नहीं पडे विरोग अगिन रे जल रही संजोग ल्यी नीर सींची शीतल
को दय लही तुन विरोगे नगए पसी अति कर संताप शी कहे व्रज सु-
णे श्रोत सुखी होसी देह आप शी ११ एक कन वली है म्हारे रही
आप विन ते अन्य ने कहवे नही चल नहीं कहवे वल्लभ विन कोर
ने नहीं अन्य तुम सरखे नह नाथी हने घर में लखी नहीं जाए हन प
णे तेह भणी हन तुन ने आप लीजीये ल्या करी कहे व्रज सुणे श्रोत
कुन्वर हर्ष देवे सी १२ मन फिर बोली हे तुन होत जद हने ने
तव नवी वस्तु देत तद चल वस्तु नित्य नवी देत हन ने तुन ने यह
करुणा आणीये अन्य हन्ने नहीं तुन सरीखे चकर कर ढे शरीरे कुर
करी सुभ घर पधारो प्रीत पकन कीजीये कहे व्रज सुणे श्रोत त्याहें

अब दर दीजिये १३ उत्तम नर ते, प्रार्थना भी नहीं आप हम इच्छा, यह पूर्ण करो सही चल पूर्ण करो सब इच्छा म्हारी, नाथ आप यह लीजिये नाथ मेली कुमर पासे हम घर पावन कीजिये लेइ नाथ कुमर हर्ष पायो आप अबक ताणे कहे वक्ता सुणो श्रोता कुमर विदाए हैं घरो १४ प्रीति संभारी हे कमलता ताणी कोप न कीधो हे हुलस्यो मिलन भणी चल नाथ मिली पारी हेली सुख सहु चिन्त्यो पाछले कहे अवसर देख अपूं तुम पधारो निज स्थले अबक घर गई खुशी थइ ढल का दशमी कहे वक्ता सुणो श्रोता जोडी यह अमोलक रिखे १५ दोहा

अबक गया तदनंतरे कुमर पड्या मोह फंद कमलता मन मैं वसी दिवस कम नरिंद १ वसुपद्म निज कुल की लज्ज मर्याद तोड कमलता सदने चलन राज कन्या को छोड. २ जयती आया देख के हर्षो नीक परिवार अति सन्मान देई सभी आज तूठ करतार ३

नित्य नवल सुख भोगवे तन मन ने मन मन तन गुलतानं में मान-
त नवे रजन ४ जय जी कीअइ दुजब रहू रहे कीर पुराय तने
की किसे अनन्द मंगल नित्य ५ ढल १२की रे लल विछीये न-
हरे बजाए रह० रे भइ कुमरी सुणी ये बात दुम ती य वैश्य
छोरे भई मुरछाइ धाएी बढती यते आत लरे बहू टेर रे भई दिवक
२ व्यश्री जीवने टेर १ रे भइ शीतल पवन जले की ते दीए अन्तर
ने नयरे भई सचेत हो रोती कहे हिवे नही नीति सी थयरे भइ दि-
वक २ रे भइ वैश्य व्यश्री सुमाति पडूये कानलर ने फन्द रे भइ
लज रही नहीं कुल तणी थर नेहेदय से अन्द रे भइ दि ३ रे
भइ उर कूटे सिर अथडे वहे नेत्रे नीर पनाल रे भइ दसी दोडी नइ भूा
पे कहे बइ क सहू हल रे भइ दि० ४ रे भइ नृप शोकतुर थये
श्री वली लज्जाए घाएे नरे भर सुमजन तन रीक घो कुलनिन्दरे अब

जन जनरे मइ   हि ०५   रे मइ शीह ग्रय कुनी करे   लीनी होल
में बैठयरे मइ   का रे ग्रश्रू पूंछने   हुचकी कहे इनटयरे बइ   हि
६   रे बइ फकर किंचित को नरि   तुंछे मुम जीवन प्यारे बइ   परील
की तुम्ह पति मरी   देखूं शेडु देने ठन ग्रनरे बइ   हि ७ प्यरे मइ
रहीवने कहे भूपति   शीह जने वैशय ग्रवनरे मइ   तेडे हैन्नी जनतने
लने हन कुल ने कलपरे मइ   हि ८   रे मइ परक लेइ रघु जनी
नर कन्नलतन हेर रे मइ   नहि रही नोट नद रे   कहे जयजीने रौं
टेर रे मइ   हि ९   ग्रहे मइ भट निकले हर बरो   छोडी नीह नरी
ने रोन रे मइ   लज्ज धरो जन कुल तरी   रौं कैसे मइ नरि मंनरे मइ
हि १० रे मइ सुत के कुनर ग्रति लजीय   पड्य फिकर रघुदू के
नरंरे मइ   हैन्न हैन्न तुम्ह वशी भरी   रय चकर रथ बेलयरे नइ
हि ११ रे नइ इत जीतै रे नारी भले   कैसे जके देखुं हुकु रे

भइ सब तर्जनी रे बट दरी हुये कुन्त मने अति दुःख रे भइ टे
१२ रे भइ नहीं मन दे अबे मुझ भणी ते तेहूं में पारे उद्रे भइ रा-
जजी केरे जाएसी निकले नहा जनइ कुद्र रे भइ टे १३ रे
भइ राज हरे जाए नहीं वली इहां पण रहाए नथी रे भइ लज्ज जीवित
देइ रहे ऐसे कहूं में हिवे उपाव रे भइ टे १४ नाणी ताणे नभव रे
गय गगने उडे देसंत रे भइ स्वदेश की चोरी थकी भेद भली कहे
अन्यत्र रे भइ टे १५ रे भइ आश्रयें नकि हुए रही कुचाल रा-
प्रहने भइ वात वीती कही जयता ते सुए विसमय राजन रे भइ
टे १६ रे भइ कुलवन्त कुमर लजी नरे हे पुणवन्त वेह भरपूर
रे भइ चिन्त भर कर मुझ लडली तुम ने कन्त मिलसी जल्दे भइ
टे १७ रे भइ गुणवन्त सज्जन वीसरे नहीं दुर्गुण से नहीं प्रेम रे भइ इत्या-
दि रोगर वचन थी कुसी पइ चित होने रे भइ टे १८ रे भइ राज

जे स्थने नर कुमरी पडी सोच नरे रे भाइ विवेक सलेपति तरी पण
गुण जाण हर्षरे रे भाइ दे० १६ वह अन्तर कर्म टूटसी सुमा नि-
रखी अइ सन्तरे रे भाइ शील पालरे सुख पामसुं रही दृढ पतिव्रत धारे
भाइ दे २० रे दइ भूमी रत्न अहार एक टंक तज शिणगर धर्म ध्यान
धररे भाइ अन्तेल कही ढाल बरनी कंइ विश्व तज्यां सूख परेरे भाइ
दे २१ दोहा नाण प्रमे कुमारी सा परवरी कीध दृढवरी
जोगी बाय सन्नी सब सिंह १ जट मुकुट देही वसी अंबर मनवं
अंग मस्ती तनी भले तिलक वैराग नेत्र खमरं २ गले दाम कर मा-
ला तुम्बि मोली कांख चीमट दंड करने धर ईस नम सुख भाइ
३ लंगोट तां अनां जरा पानें ऊंच खड़ाव मुट ऊंच तन
मल देख कोरे तप ने पडव ४ लोच्छ मूख फिरे देखे पुर वर
ठन अन्नदे कल निति अब कहू पुराय मीरान ५ ❀ ढाल १३

नी निन्दक टूनी नरजो। रहा० भक्ति पुगाय बल देवोजी नर बन्दु
प्राति होय टेर एकदा एक वन के बिचजी शकुन हुआ श्रेय कार प्रथ
मभी आश्चर्य लहो इए नहा अटकी रे नभार ॥ १ ॥ नर बन्दु कहे मिले
रे शकुन न निष्फल जाय स्थान नवीन देखके बैठ तहां ध्यान लगाय ॥
२ अचिन्त्य तिहां आये तदा जी कोटी अवधूत वेष जय जी जोगी
जो हर्षाये नमन किये विशेष ॥ ३ सेवा साधे अति हितजी कुंवर
ओलगीये तास बरमन्ट को नहीं नहीं चूके जिहां लग आस ॥
४ ढिग रहो शिष्य होय केजी भक्ति को आगार जरजी भीतर पैठतजी
भोजन दिसलाय ॥ ५ आए निजय निय दिये जी इच्छित भोजन
पान कामती जोगी जाणे जी धूर्त हर्ष प्रसन्न ॥ ६ एकदा का-
र्य साधवजी करे गुरु के नरव कुंवर मन तस ओलगी निज शलाह करे
कथन ॥ ७ मंत्र जंत्र माणि औषधी जय मुझ से छीपी न लाय

जो चहिये सो ही कहे धूर्त हर्ष करे उच्चार ॥ ८. श्रीजी तुम पर
क्षे जो श्रौषध एक श्रमूल. गुरु विधि तस प्रकारिये ते किन होवे तुम श्रनु-
कूल ॥ ९ कहडी दी जोगी कहेजी कुंवर देख हर्षाय प्रत्यक्ष शकुन
फलित थया नइ श्रौषधी मिली पुनः श्राय ॥ १० जय पूछे सत्य की
जीए यह कहां से श्राइ तुम पर धूर्त श्रति नरमी करी कर जोडी करे श्र-
रदास ॥ ११ श्रीजी इहां से सत योजने जी रहे एक जोगी राज मैं
सेव तस रचती ते प्रसन्न हुवा राज ॥ १२ तेरा श्रौषध तुम दीनी
जी गुरु पूछ्य कहे एम जा तूं शीघ्र उत्तर दिश मह जोगी मिले प्रभु
प्रेम ॥ १३ ते कहे तुमने सहू इस बूटी मैं गुरु श्राप मैं श्राये
श्राप चाल मैं फलने गुण जे तेर ॥ १४ एक प्रभव ते इस ताये जो
श्रनुभव हुवे है मेर जब से श्राइ तुम करे तब से तुम मन हिरु होय ॥
१५ श्रला नराणे जय जी कहे रे दुष्ट तूं देखत चोर तव ही दुख यह तुम

दीसे ये एक गुण इसमें कठोर गा० १६ दगाबाज तस्कर भाए यह संतापे दिन रात तूं निश्चय नहिं भूरे है का आये किसकी घात गा० १७ यहां फल इस पाप का में, तुम्हे बताऊं आज. फिर आवे तूं नहीं को ऐसे मह कोइ अकाज गा० १८. इम सची सुण विस्मये अति भये शरीरी छूटी अंग औषधी छोड भगी गये कुमर न कीये तस संग गा० १६ पापी पापोदय काटिजी पीड सहजे पाय ; धर्म के धर्म प्रसाद से जी सहजे जय वलय गा० २०. सती औषधी गइ पुनः मिलिजी जयजी अति हर्षे पुराय फल दर्शाणी हाल तेरे अमोलक नाय गा० २१ ❀ दोहा प्रदेश के प्रवास को दुःख नहीं देवे लगार सार हुवे फिर ताणे बहु पाप श्रेय-कार १ जो कर्म पापिष्ठ को दुःख का कर्ता होय सोही कर्म पुण्यवन्त को सुख कारक ले जोय २ नेकले शे आपन से लज्जित हो दुःखपार काण से कर्म पाबे नह औषधी मिली आय । ३ हर्षित हो आगे चले

विद्या के प्रभाव देवन होंस्य पूरी करी निदान उत्सव ४ स्थिर रहने इच्छा हुइ तेही वने उपर इच्छित फले तुमारा ने सुणजो चित लाय

५ ढाल १४ वीं इण सरवीयाली पाल ऊभी दो नारी रह० तिण अवसर के नार भूमंड विभूषित हो सुजाण भूमंड विभूषित स्वर्गपुरी अनुहार नगरी छे भोगवती हो सुजाण नगरी छे भोगवती। ऋद्धि से करी पूर्ण चूर्ण दारिद्रत हो सु० चूर्ण भवन वाग निवाण सोभे लोभे इन्द्रत हो सु० सोभे १ सुभीम नामे राजेन्द्र राजेन्द्र ने सारीखो हो सु० सोहे न्याय नीति में निपुण जाणे नर पारखो हो सु० जाणे भोगवती पटनार अकार सुरी सारखो हो सु० अंक शील रूप गुणखान सज्जन मन मान्यो हो सु० सज्ज २ तस उदर उत्पन्न रत्न सम बालक हो सु० रत्न भोगिनी तस नाम सूरत सुख मालिका हो सु० सुरूप गुण कला विद्या भंडार विनय शील जिनगणी हो सु० उपरे हुइ दिव्य रूप

हुलसित अंग कमाणी होसु० हुल ३ सज सोलेह सिणगार भरवन
भूषण होसु० भर मत पठाइ तत पर वर दो सुलखणे होसु०
वर कन्या रूप वर जोर रय चिन्तुा भर होसु० रय किसको
पाणु ऊंधीण सर्व गुण गणमय हो० सर्व ४ जो गुणवन्त मिले जो
भोग सुख पावइ होसु० भोग अपलक्षण संजोग जन्म दुःखे जावइ
होसु० जन्म पुत्री को देइ सीख सचीव बोलइय होसु० सची धूर वर
विचार एकन्त बैठ बिर होसु० एक ५ तेतले अचिन्त्य व्याल वि-
काल तहां आवीय होसु० विक कुमरी जती श्री नेहल नाय ततो में
सोचविय होसु० ततो त्राछइ पडी भूंपूठ छूटे जयों तरुलता होसु०
छूटे दोड दासी भूप पास दाखी कुमरी कथ होसु० मखी ६ सुणा
भूप अश्चर्य पर वेद अति लवीयो होसु० वेद तत्क्षण आय तहां
जोय हीयो थरहरीयो होसु० हीयो सब आय तहीं दोड छोड कन

काज ने हेतु० छोड बेलाय भेष बैठ लेइ सब साज ने हेतु०
लेइ ७ मंत्र जंत्र जडी जाए बैठ दि ढाए आवरि हेतु० बैठ
आराए सब करामत उनी अजमावरि हेतु० उन किय बहुत उपचार
लागा लागो नहीं हेतु० लाग आवे उनकी उनंग मेहनत निष्फल गइ
हेतु० मेह न आर्ती आति को चर निरास हरी मने हेतु०
निर चिन्त से बरा हेरे सचीव नागी भने हेतु० सची कोइ
रत्न को शीघ्र तर ज्यों रत्न यह रहवइ हेतु० ज्यो बहु रत्न
वसुंधरा मंर उपकारी को पावई हेतु उप ६ उद्देष्य पुरा नार
नर कावई हेतु नर करे तुम तहुन कुशल तन परावइ हेतु
तन पडह बजरो पुरा मंर आर उनी ढाए हेतु ते तले जरजी तहां
आर शब्द सुए पडता हेतु शब्द १० देखने चन्त्कार ला बवने
किये हेतु ला लघु देही दीपे पुष्ट वरो संतलिये हेतु वरो

शुभ वस्त्र रज तन जेटिक कर दिहे हेसु जेहि चंदन तिलक ललाट
मल गल में दिशे हेसु नल ११ एक हथे करतल बजे दूंसे
हेसु बज दूजे हथे फेरे नल चले भक्तन से हेसु चले आये नद्य
वजर देखा लोक बहू जमा हेसु देख हंसे हंसाने सब तंय ववन
पीनन रम्य हेसु वव १२ पडह बजंते सुए करए सब पूछिय
हेसु कर विस्तरि हुइ बर भक्ते जन किय हेसु भक्त ववने
कहे करूं आराम दिएक केमयने हेसु दीए देखे करनत सुभ सर्व
तहां आयने। हेसु। सर्व १३ सबी कहे भक्तजी नन भक्ताए चविय
हेसु भक्त रय कन्य जोग जोडे येहि जग पविय हेसु येही
वरियं विन कैसे रेय सुरुवा इन सराव हेसु सुरू यें हंसे सब लोक
सव जने पराव हेसु वरा १४ कितनेक दने शए आय शिव
देवे इसी हेसु शिव नरे करामति बहुत हर तेथी चली किरि

हेसु थाकी नर का फोकट फंद आपन तूं पावसी हेसु आप
ारप न देवे तुम पूंजी पछे पतावसी हेसु पछे १५ तब कहे हंस ने
कोर अन्त पारख न कीजिये हेसु अन्त जरूर पावसी यह इच्छा पूर्ण
दीजिये हेसु इच्छा ये हंसन अरज पारख पास आदर करने को
हेसु अरज मैं करूं अबी विष दूर करने दृढ दीजिये हेसु वच १६
दी आइ भूपाल अरज सुनी कने हेसु अरज बूंटी ली कर नांय
ठौर जग बहुतने हेसु ठौर नौठे नरवर अंदर ठौर से पावइ हेसु
ठौर धूप दीप अछत आदि मंगवइ हेसु आदि १७ उदक मेलि
त औषधी कर पूछे भूपाले तिहां हेसु पूछे उदहेणा पुर नांय केस
आने किस हेसु किस भूप कहे कारे आपन जरूर पावसुं हेसु
जरूर वचन कहे दृढ राखे वचन वदे जिन मानसुं हेसु वे १८
वड २ त मुख मंत्र पाणी से पढिये हेसु पाणी तही दीरा के नांय

तिष सहू विलखिये होसु तिष निद्रागत की रेशुमरी सच हुइ होसु
कुम हर्षों सब परिवार चेतन भरत गइ होसु चेतन १६ नरवर
पुरजन सबी आश्चर्य भरि पविय होसु भ वनजी की कानन
सबी सासवीय होसु सबी करनी वचन भक्ष दिल जग तुम
मम होसु वि० चमत्कार प्रत्यक्ष देख सब नर नर होसु देख
२० महीम पेली पुर नगर हंसक शरमवीय होसु हंस पुराय पाये
जगजी का हुवा चवीय होसु "हुवा : यह हुइ नेरवी ढल रसल कौतक
ताए होसु रस ' कहे अनेल अणगार ' आगे मीठी दाए होसु
आगे २१ ❀ . दोहा नव जीवन कन्या लिये हर्षों सब परिवार
वचन भक्ष ताए सबी मान्यों आति उपकार १ आति टली आँखो खुली
हुवो त्यय ने विचार अहो प्रभु इण स्थान के वचन पडे कैसे पार २
चन्द्र कला सम बढ़ इम्भ यह रहू प्रत्यक्ष : गुण अन्तर नहीं अन्त लिव

कैसे जोडे ए दद । ३ ॥ अजब गति करतार की । विरूप आवें गुण ठाी
रह रत्न अमोल है चिन्त में पडयो निगुण ॥ ४ ॥ बोल्या भी पलटे नहीं
जे दर्शी मुख देण वड अड चित्त में पड्यो ॥ कीजे किस्यो अब सेण ॥ ५ ॥
❀ ढाल १४ वी. तपडो ढीलो सो पडजे ॥ यह० ॥ वडे नर बचन को निभावे
हो ॥ वडे नर० ॥ पुण्यवन्त तो नाम कहता अलभ्य लाभ पडे टेर ॥ बचन
भंग ते यश भंग होवे परतीत नहीं रही ॥ विन प्रतीत आपकी बने ते मुरद
तुल्य थइ वड १ ॥ कन्या का संचित प्रमाणे, पति मिल्यो यह आइ
रत्न महा चले किस रहां होत बसे थइ वड ॥ २ ॥ आतुर होइ बोले
वचनो बचन पार पडे ॥ नहीं तो मैं जाउं निज स्थाने, मन की बहिर
जडे वड ३ राजाजी दिग मुढ हो रहीया हां ना नहीं बोले चिन्त
सागरे मेत गवे केइ विचार तोले वड ४ तब वचन कहे चिन्त
नत करो मैं भी ऐसेही जाणू मुझने राज कन्या नहीं शोभे कुरूप तन मह-

नु वड ५ मैं दुर्भागी हीण अंगो ने [illegible] किन दीजे हंसली ग्रीव
वरस बन्धन अन्तर किम कीजे वड० ६ जो कदापि आप जबरी से
पुत्री मुझ देशो अङ्गीकार सो नहीं किये तो व्याशोन लेशो वड ७
समस्त परज अवगण बोलेगा तो सहा न जशे इस कारण मुझ न कहो
तो सब जन सुख पासे वड ८ सुन्दर मुझ से ग्रही न जावे कारण
सब जाणे चतुर सेड अडेण को जितनी तेरे न पातणे वड ९
भगर पर जो वस्तु इच्छे सो मूर्ख जाणीइ इसलिये मैं परणुं नहीं फिकर
तजो रइ वड १० वचन सुणड यें सुन वचन का सब अश्चर्य पाय
प्रत्यक्ष चमत्कार यह देखो निर्दोषी निर्णय वड ११ ❀ श्लोक
क्वचित् गुणः रागी नरा तत् गुणवन्त क्वचित् तत्व गुणवन्त गुणे रक्त स
गुण प्रेक्ष क्वचित् १ ❀ ढाल गुणानुरागी होका धा धव नारी यों
बोले तुम सा गुणवन्त निर्लोभी न मिले जा खोले वड १२ निश्चय

पुत्री तुमकों ही देवूंगा बचन महारा पालूं प्राण जावे पण बचन न जावे
उत्तम रीति चलूं बड १३ तब लक्ष्मण बचन पालन वन में वास कीना
हरिश्चन्द्र दारा तनुज बेंच कर नेहतर घर लीना बड १४ यों अनेक
दृष्टान्त दे भूपत बचन हट करीये तब सामन्त कुटम्ब बदल कर न
कारे भरीये बड १५ सबही बयण सुणी अर्जुन कर लाने लव मंड-
पे वावरजी को नौछव काजे द्रव्य अति दीलाये बड १६ नवरंग
महेल दीये रैने को हय गय आदि सार उत्तम लग्न महूर्त देखाये आवे
सजी परा बड १७ द्रव्य तहां सर्व जो अमिले बने सज्जन केइ
मिली सहेली मङ्गल गावे नाना नरजेइ बड १८ वाजित्र बाजे विविध
प्रकारे चन्देल फिरत देव विद्रूप हंसये बहू कौतकी केइ आश्चर्य धारा
बड १९ यों आनन्दे लग्न दिन आया सजी अति सजइ गजरूढ हो
चलीये वावरजी सुवर्ण वरवीई बड २० लग्न मंडपे आय भराय

सज्जन पुरजन सार । ढाल चतुर्दश कही अनोलक अब देखो चमत्कार
बड ॥ २१ ॥ ❀ दोहा ॥ राजकन्या भी सज हुइ आइ मंडप मांय । वचन
कर तर्शें नहीं सब रहे अचरज पाय ॥ १ ॥ पाणि ग्रहण करो नृप कहे तब
वचन कहे नार में नहीं जोगी सुन्दरी क्यों जबरी ये पाणार ॥ २ ॥ महीपत
कहे जोगा लखी मेने दी तुम तार अटल वयण सुभट न फिरे जो कभी मेरु
कमार ॥ ३ ॥ पूछे नृप निज अंगना कहो देवी के न्याय । सा कहे आप हुकम
दिये म्हारी खुशी सवाय ॥ ४ ॥ कुमरी को पूछे कहे यह तुम मोड समान
इनके बिन सब जगनर । आप समा लिया जान ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ढाल १५ मी ॥
आज म्हारा संभव जिनका यह० अहो सुझजन आज आनन्द घन नगर
में हर्ष वधाइ राज सत्य से सर्व सुख जन पावे दिन २ बधे पुण्याइ राज
अहो ॥ १ ॥ यों देखी अति जय हर्षाय परिष्द पूरी थाइ नहि सत्यवन्तो
दिनदिन जगावे तैसीही राणी बइराज । अहो ॥ २ ॥ निज स्वरूप तब प्रगट

करन को ... बोलइ अहो भूपादि सुरिये सर्जन कहूं तुम न जे
अइ रज अहो ३ कुरूप कन्या रत्न अहवे नीति से छुटो नहीं इस-
लिये मैं विहबल से, वह नलकुंवर सहइरज अहो ४ सत्य प्रभव तुम्हारे
प्रकासूं तुम विह दासइ सब मिले कुछ कर सको नहीं पाप मेरे से कैसे
थइ रज अहो ५। नर देही वांछित फलदाता जो कर जाने कमाइ
मूल गया अब देखो मेरा सहूसमन विरलइ होरज अहो ६ नार
नहीं वहू लम्बी चौड़ी दो एक खड लिएइ बनवो चन्दन वन्ही जलते
शीघ्र करो यह सजइ होरज अहो ७ जल मान किया तुम तनक.
लगा बने इन्द्रसइ फिर तुम बइ खुशी से परसूं इसमें शंका नहीं होरज
अहो ८ सती कहे यह मराए बहवे अग्नि से कौन उबरइ सब समभाये
जग ना मनी खड़इ में अनल दीपइ होरज अहो ९ नहइ धोइ नाइ
सइ वह भूषण सजइ कुञ्जर रूढ हो नजिर नदे सब जन से परवरी

इ होरज अहो १० अपूर्व आश्चर्य जन देखन को आवे २ छइ ओडो
गम जमे नहीं कुंडो कौतक कौन न चहइ होरज अहो ११ जल
गगन तले अदलक्षि ढिग जभे न रहइ केइ अचंभे केइ खेद आश्चर्य देखे हटी
लगइ होरज अहो १२ नारी नंत्र सर्व देखंत जइ पडचे कुंड नंइ
हहकार नचे अति तब तहां किन जीवत गह अइ होरज अहो १३
दिएन्तर में देव जैन वन बाहिर आऊ भाई सनन्द आश्चर्य सहू पइ इने
अति ते सगइ होरज अहो १४ औपदी महिमा निश्चल की त-
न कींचित लगइ सज भूषण मूल रूपे तब अधिक रह से भई होरज
अहो १५ नृपादि तस अति सत्कारी पूछकर हटी लइ. बलजी ब-
नीर किए करए साची देवे फरमाइ होरज अहो १६ मूल मंडप ते
रोगी हकीगत रथ तथ दीनी सुनाइ मंत्र औपदी नारी प्रभावे. चित्त
काज सिद्धइ होरज. अहो. १७ सुणी वाणी अति विस्मय मनी जय २

विजय बढ़इ धन्य २ नर महाराज धन्य बड़ की पुगइ होराज अहो
१८ अति उलटे पुनः शेहर में लाय दिय तेहीं महले उतराइ सबै जन
राय निज २ स्थाने वसुजों कीर्ति फैलइ होराज अहो १९ तीनों सल
बहू मोती रहे जय रहे दिर जय होवइ रहे आनन्दे सज्जन सम्बन्धे
चिन्त दुःख विलइ होराज अहो २० दल दश पर पंच शिरोमणी
सौ अनलक गइ श्वेत भरिये सुकृत सजने पुगाइ कन अइ होराज
अहो २१ ❀ दोहा पुनः अति आडंबर किये जयती और पुगार
मेनी पुत्री जय भनी शुभ लाने पगार १ शतज तुरंग सहस्रदश
दायज में दिय राय गाम जगीर दीरा घाए हथ लाख के तीय २
महाराज दम्पति जोडी जोती मिली अपार लखी नहीं कोई छवी
संचित सब फल पाय ३ नित्य नवल सुख भोगते दोगुंदक सुरसार नाई
पाने सहुरी होवे सब तैयार ४ भोगे तोबे अन्यने देइ इच्छित दान

होनहार आगे सुनो श्रोता लगाइ ध्यान ५ ❀ ढाल १६ मी नाहो
आज आनन्दनो दिन छेजी रह० पुण्यवन्त कुं बोल रहे नहींरे चतुर ने
चिन्त होवे सहीरे पुण्य १ एकदिन राजा इन्द्र सजीरे निकल्या फिरवा
जायजी पुरना मजीरे पुण्य २ हय गज रथ पायक बाजा बहूरे शोभे राज
सहकी तस सहूरे पुण्य ३ मध्य बजारे जब गये आवी सारे पुरजन देखण
आते लोभनी सारे पु ४ ठठ जमाये बजार के मांयनेरे जोवे गोरडीयें
गोखे आय नेरे पु ५ तमें नारी एक बोली जो रसभीरे कुंवर सरकी
ज्यों सुने सबीरे पु ६ वय देखो सबी जाय चडीरे आणा राय जाइ
रोसबर पडीरे पु ७ हरजाइ नदाइ रहे इहांरे किसो देखाणे रह जावे
किहांरे पु ८ शब्द नाशरो ए जय काननांरे लज्जा पण चिन्ते नीति
मननारे पु ९ ❀ श्लोक उत्तम स्वगुणै ख्यात मध्यम स्वपितृगुणै
अधमा मातुले ख्यात स्वसुरैः श्चाधमाधमा १ ❀ ढाल यों विचार सुत

नीचो कीयोरे । कीड उत्सह सब भानी नयोरे पु १० दीक्ष सुमन
बुद्धि ने अरु रिद्धि नीरे तैं तो नाइ लज काज सिद्धिनेरे पु ११ जैसे
हर्ष से नाय श हेलनारे तैसे शोक से अय पल नेहलनारे पु १२
आसन बैठ चिन्ता नारे पड्योरे आपन दुःख अति तन मन नड्योरे पु
१३ इहां रहाए सुमने जुरते नहींरे जहूं कानपुर विजय पसे सहीरे
पु १४ पुनः चिन्ते तहां कैसे जाइयेरे ते है राज कीन दास होय रहीयेरे
पु १५ मंत्री सही मैं भी बहुं राजीयोरे म्लेच्छ एहूं विन लजीयोरे
पु १६ यों विचारी मंत्र संभारीयोरे पाए हृदय तन विसारीयोरे पु
१७ मूल्य मन्दे यद अवे नहींरे पश्चात्ताप अति पावे तबहींरे पु १८
हह अनर्थ यह मैं मोटे कीयोरे महाराज दास मंत्र भूली गयोरे पु
१९ विजय विन यह तंत्र मिले नहींरे जाए मइ पास अवतो सहीरे पु
२० सुमन मन्द सुमने नीचो कर्योरे पड्यो वश वश तेहथी स्ववश हयोरे

पु २१ हिवे पत्तइ लाभ व्या लीजीये नहारज वन्दूगी उपाव की-
जीये पु २२ रोगे निश्चिन्त हुवा सतरमी ढालमें आनेल आश फले
पुरान आलम कालमें पु २३ ❀ दोहा स्वप्न परत्वी प्रश्नमें देखुं
मइ प्रेम मंत्र लेइ सघन करी पदूं इच्छित जेह १ नाणी प्रभवे तदणी
निर्मल रूप वनाय शुभ वस्त्र सजीया तन भाले तिलक लगाय २ वक्री
वन्हि पागडी गले रुद्र दक्षी माल कर बहुरंगी टीपणे जनेइ लडल
३ आकाश में उड चलीया उतर कानपुर आय निलिय हर्षी विजयको
आशिरवाद सुनाय ४ प्रेम परिहा कराणे करे वचन उच्चार ते सुणीये
श्रोता सहू लघु विनय आचार ५ ❀ ढाल १८ मी नणदलना नन्द-
ल यह० में जाणूं विहिवले तुमको बंधन देरहो राजिन्द तात आनन्द
नीकलता नागफल आति हो रहो राजिन्द सुणीये हमरी वात रे १
वनमें वृद्ध वट के तले रहा सुखे निशी आरहो राजिन्द तीन चहुंही तुम

ज०चं० ६६

भणी सब देव संतुष्ट थया हे जिनंद सुणो २ जेह भइ काटे नर तुम नाम सहां रज.हो जिनंद कहो मैं कहूं से सत्य है राज्य नीत-न काज हे जिनंद सुणो ३ सुणी वैजय नित कथ आश्चर्य अंकितो लया हे जिनंद अहो इनी ये पूरो गुनी । भइ गुन चित अय हे जिनंद सु ४ हृदय भणो मोह वसे नेत्रे नीर वर्षे हे जिनंद पूछे अति नर-नय के तुम बंदन छे कीण ठाय हेइनी सु ५ कब दिन ऐसो आसी निरखी पूज्य तुम भाल हेइनी शीघ्र वाले तुम भणी अति उपकार नो शत हेइनी सु ६ कहे नीति फिकर तजो जयसेण सद जय नर हे जिनंद विदर नाणी के प्रशद से तास की कछुनय हे जिनंद सु ७ से सुणे लुब्ध रहो दुष्कर मिला तुन तां हे जिनंद वय करो तीरे मिली तुमने की छे वाय हे जिनंद सु ८ ऐसे सुणी दिलगीर हुव अति कहेतर विन फीको सुख हेइनी सफल दिन ते जाणस्यूं देवस्यूं बंदन तुम हेइनी सु ९

निमित्त भए विह बले देवत को ले सहाय हो राजिन्द कहो ते तुलतुं
हाए जग तुम बन्धन दीए नाय हो राजिन्द सु० १० परन्तु उनको
जाने से तुमने होवे दुःख हो राजिन्द करए जेठ ते तुनकी इच्छा
नहीं को जसे सुख हो राजिन्द सु० ११ तुम हित भए पहिल कहूं
जो आगुं सुख चहाय हो राजिन्द तो दोनों रहो जुजुन जिनसे विघन नहीं
आय हो राजिन्द सु० १२ यह प्रश्न ने छोडके अन्य पूछो सुख उपाय
हो राजिन्द यों सुणकर विजय जी देव किन यों बोले विदुरराय हो इनी
सु० १३ नतलवी प्रीति दिखे इन वचने पड है विरोध हो इनी सत्य
प्रीति जिनके मने तस न कीजिये बोध हो इनी सु० १४. यह संपति
सब भइ को अर्पण करण ने तैयार हो इनी पण वंछे नहीं तुम बन्धन
नेलोंभी गुण अनन्त हो इनी सु० १५ जैसे तात लघु बल को सूंढी
में भरमाइ जाय हो इनी त्यों इन राज में भेलवी नाय तुम छिटकाय हो

इनी सु० १६ यह रज नहीं न्हेरे मैं नहीं नलक रार हो इनी नि-
लिय नहीं मई सुम भएी जो नर हाए तर हो इनी सु० १७
निरस हुइ सुम ऋति तब परवश करने कम हो इनी बैठे मैं राजन दीरे
ऋभिग्रहहरी तनहो इनी सु० १८ जहांलग मइजी नहीं मिले छत्र
बल नहीं रीस हो इनी चनर बीजते नहीं राज चिन्ह तजते दीर हो इनी
सु० १९ उमंग हाए मन मिलए की पए नहीं सुगाय सन्चार हो इनी
जो तुम जाए तो शीघ्र कहो नगुण ऋति उपकार हो इनी सु० २०
रमैं सुगा जयजी खुशी हुव ऋटादशनी यह ढल हो इनी ऋनेक रीति
कहे ऋाने सुगाये दोनों प्रगट मिले उजन्ल हो इनी सु० २१ दोहा
निनेक कहे विजय को ऋकरी विहबल जयजी बन्धव तुम ऋाठ ऋाने
दीए मैं चल सु० १ भूप कहे शीघ्र ते करो देवुं नांछित इनाम
इनसुगा तांई निनितयें ऋदृश्य होगये तन २ नेनिन्त का छोडी करी

मूलगे सोरथ वसु भूषण दीपत सदर इन्द्रसार ३ नगन से उतरा के अतीव विजय सभा के मांझर अचौं सहूजन अति देव के यह वनला ४ विजय वैठनी भूप के आनन्द अंग न मात उनी आ रुक वरण में अंकुरे ते छेवर ५ ❀ ढाल १६ वी टेक दश दिन आनन्दकारी यह सज्जन सुपात्र मिल सुख होवे भारी तेजने इनी के तर आमरी देर उठ कोटी ते मगर विसारी नेत्रे नहीं हर्ष कारी छनन दिन छडी आज हमारी कुशले भेट जेट भारी सज्जन १ दोनों उतरन ने बैठ बरोबर अनिमेष रहे आपस में निहारी जय कुमर निज वीती हकीकत यथा उचित भइ आगे उचारी स० २ विजय नारी कहे राज संभालो मैं ते सेव में रहूंगा तुम्हारी जो जोग तो तस स्थान ही सोहे ढील विचार न कीजे लगारी स० ३ जय कहे तुम उपजीत मुझ योग्य नहीं लेवो नीति विचारी भूलयो नाक पुनः याद करावे येह भक्ति सदो हिवे थारी स० ४

अति आग्रह कीयो राज लियो नहीं तब राज नन्द दीयो तस सुन्दरी धरी
नन्द मइ कुशल पूछत तब ही ए उदयचन्द नन्द भमरी न० ५ भोज-
राती नारी में आय जहां महेल है निज इच्छ्यारी एकान्त रही ते नन्द ने
कहे जैसी वीती सब तस ते धरी न० ६ भोजवती पुरपति की सभा-
में आय नीति इनका धरी कहे नृपति से सुणो होवे राजा बात
केतहुं एक चमत्कारी न० ७ इसी वक्त तुम पटवी कुंवर उन्नत होवे जो
नन्द छक छरी तो तुम वन नमो मुम रची आज रहीं दिन रात भमरी
न० ८ थारो अनुकूल पूर्ण होवो इसमें संशय नहीं लागी हो-
हार टले नहीं टल्यो पुण्य देवो में इन लारी न० ९ हितेच्छु हो
शीघ्र आवो यहां लो निजन काज सुधारी दल धर्म सुकृत्य सुकारी
करन से काले वक्त है यारी न० १० इतने में तो सुरयो सहर का
शीघ्र राज नन्द छक को पुलन आरी सुरपर तीय वाग इनी का

जगतारन तारन परम उपकारी स० ११ निश्चय में अब दिन रात में पर
वश्ये छोड जपसूं ऋद्धि सारी जो कुछ करने होवे सो करलूं जो पर भव
संग आवे म्हारी स० १२ निमन्त इनी को संतुष्ट कीन तेते गए स-
स्थान इच्छारी तपजी इन दया धर्म उन्नति कीनी लीनी परची टकारी
स० १३ जपजी को बैलाके पीछे हिवे सुभ ऋद्धि सहू तुमारी द्रव्य सं-
भले प्रज पाले अइ सुभ देवे इन वारी स० १४ अवंभी नारी
जपजी उचारे अवचिन्त रहस्य आप विचारी तपजी बर प्रकाशी नि-
न्तरी तब तीए तज ऋद्धि स्वीकारी स० १५ पुराने तब ऋद्धि त्या-
गी जिनेन्द्र प्रीत दीक्षा धारी एकान्त स्थान आसण द्रढ स्थापी हुव
ध्यानन्त मेरुगिरि सारी स० १६ पदस्थ से पिंडस्थ में पेठ रूपस्थ ध्या-
त रूपातीत तारी यों धर्म ध्याने से वर्णी शुक्ल क्षपक श्रेणी चडे शीघ्र तारी
स० १७ वेद कषाय कीया दीणमें दय सयोगी केवल ज्ञानी भारी .

अग्रेसी हो नय सुकीद अजरीन हुव अवीकारी स० १८ सीजो
संभरे जाए सज्जन जन जगत व्यवहार सोय सचव्यारी धर्मोदय कियो
बहुतेइ कीर्ति जस जगमें विस्तरी स० १९ अनित्य आयु जाणिरों
भव्यजन अल करी लेवे सुधरी सफल अवतार तास जाणिइ जैसे भैरव-
ती रजनी स० २० दल उम्मीसवी धर्म पुराय फल दरवाए ऋषि अनोल ऊ-
चरी धर्म पर तीर्थ भूधव जयजी पुराय को रह दीपनी स० २१
❀ दोहा महानंद प्रसाद से जयजी पाये राज, होरहर होवे जिस
अर मिले सब राज १ एकदा संभरी सुद्रीय जयपुर नृपती धीर
कमलत नीक विचे लगयो अन्तस जीर २ राज संभलाई सबीन को
कियो दल बल तैयार जयपुर आये सुखे चली उतरे नस के बार ३
सनन्त सं पठवीय सुसर को समचार सुणी नृपदि हर्षित जयजी
पुराय प्रसार ४ सतपुत्र दिये विरते निलय जइ जनत सुसज्जन

संजोग से कौन नहीं होवंत ५ ॥ उत्तम के लाय पुर विषे मिल दम्पति सुखी
होय रहे सुख में जयजी इहां हिवे धर्म कथा सुणो लोय . ६ ❀ ढाल
२० वीं दलाली लालन की यह पुण्याइ जयजीकी सुणो २ हो भवीका
चित लाय पुण्य देर तिण अवसर पधारियाजी जयपुर बाग मझार
तारण तरण गुण सागरुजी मुनिवर बहु परिवार पु० १ वनपालक राज
होय केजी राज सभा में आय दी बधाइ मुनि आवियाजी सुणी सब अति
हर्षाय पु० २ राजी राजाइ राजवीजी ले सां सेना सज्जन वंदन आ
मुनिवर भणीजी तैसे ही बहु पुरजन पु० ३ परिषद बैठी सर्व केजी
जग तारण मुनि राय नगरौं धर्म उपदेश नेजी अहो सुणो भव्य चित लाय
पु० ४ अनित्य असार संसार में मिल्यो मतलबी सब परिवार दीप
भंगूर शरीर यह जी सुरज हो किसे ही विचार पु० ५ पुण्य संचतो
निली सुखकारे पुण्य छुटे विरलाय पुण्य करे सुकाणी को तो अजरामर

बन जाय पु० ६ बनी वक्र में सबी बने जी बोझ्या बने न कांय
काणी २ में सुखरलो ते फिर पनतबो न थाय पु० ७ इत्यादि गुरु देश-
नाजी अमृत वृष्टि सम सुरज मिथ्यात्वी जवासीया जी भव्य चंपक राइ रंब
पु० ८ समकित धर केई थयाजी वैराग्य भूपाल वंदी मुनि सब निज
गृहेजी आय दिये तत्काल पु ९ चित्ते पुत्र सो हीर के जी एकही
नहीं राज जोग जयजी सहू गुण संपन्न जी देखुं राजगुण छोग पु १०
शीघ्र बुलाइ जय भणीजी दर्शायो ते विचार सो कहे सहू सत लेइजी करो
काम सुखकार पु ११ राणी पुत्रें मंत्रीने जी कही वाणी सो बात
जची सबी के मन विषेजी जयजी ने गद्दी बैठाय पु १२ जैत्रमल राजे-
श्वर का महोत्सव दिया लेय अंग एकादश सीखिया फिर तप दुक्कर ना-
इयो तेय पु १३ संचित कर्म खपाय केजी पाया केवल ज्ञान धणा
भवी को तारकेजी पाया पद निर्वाण पु १४ जन्म प्रमाण ते नरता जी

अवसरे को उद्धार जेष्मल अधिराज त्यों ते पाते सुख श्रेयकार ॥ १५
जयपुर पति जयजी भयजी संभली राज लगान संतोष सब राजन-
की अनीं सुख जे ठान ॥ १६ धर्म कान्हें सद्दतजी सुख से रहे
जयपुर ढल बीस अनेक कहेजी पुराईं सुख सवार ॥ १७ ❀
दोहा जिस दिन से जय कुमरजी तज्यो कनलत गेह तिस दिन से पति-
व्रत सम अभिग्रह धराही तेह १ स्नान भूषण नहीं वस्त्र तज्या न किये
रास आहार एकान्त वास तपन धरे अलभ्य की आचार २ अब रा-
जपे हां ते मने नलार नंस द्वादश वीतिया तब सुणिये समाचार
३ जयजी जयपुर पति भया उनंकी मिलाए तेवार अब लई बैठर को
शिविका में दरबार ४ बीती बात कही भूपने सत्यवन्ती तस जाए
राखी अन्तेउरी बीचे प्रेम पेटी प्राए ५ ❀ ढल २१ वीं
वीरसेन ते नन्द जिनंदजी को यह जय विजय नृपति का पुराय भरी जय

टेर दो देश अहीरे भए जयसेनजी गुणवन्ती मिली तीन नारी जय
१ तीन सिद्धी तीन लोकमें आप बल विलसे सुखसे सुखारी जय
२ एक दिवस बन्धु यद आये ऋद्धि युत मिलाये हिये जारी जय
३ बहुत बिछोह रह्या इस दिन अबतो रहें एकठारी जय ४
आनन्दते तब राज भोगरये नीति रीति सब वेतारी जय ५ जौ-
रोर बन्दोबस्त सब कीये काइ सेन सज सारी जय ६ तीनों राणी
ने साथही लीनी और ऋद्धि बहु केर कारी जय ७ शुभ महूर्त प्रयाण
करौं तब हयगय रथ दल भारी जय ८ महूआ ची कात नगरीमें
पुर २ पती हा मन्वरी जय ९ सुवे २ यों मुकाम करंत आय कन-
पुर सीम मंई जय १० समचार से पाय विजयजी आनन्द पाय अ-
पारी जय ११ शीघ्र हुकम कीये करो सजाइ नगरी स्वर्ग सी सिणगारी
जय १२ आप सभी परिवार संघाते सन्मुख आय पद चारी जय

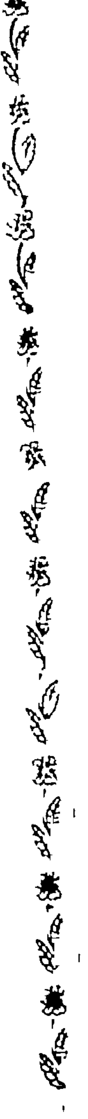
१३ । देख जेष्ठ भाइ उनां आइ । जा पड़ा चरणां मझारी जय १४
उठाइ जय हृदय से भीडया गर्ले प्रेमरस गुलतारी जय । १५ नेना श्रुत बहे
अचिन्त्य गया तजी मैं दुःख पाया भारी जय १६ आज कृतार्थ
मुझ को कीनो आइ सन्मुख दरसनारी जय १७ । दोनों आरूढ हुवा एकही
गज पर रवि शशी सम शोभतारी जय । १८ । सब परिवार चल साथ
बाजे छत्र शीश चमर ढुलारी जय । १९ सहूकारों नेती गेह वधाय
शोभमाणी लिया वधारी । जय २० आया महल में राज सभा में सिंहा-
सण दीपे दोनों बैठारी जय । २१ सुखे २ दोनों रहे एक स्थाने लघु जेठ
अनुज मझारी जय २२ देख भक्ति तुष्टा जयराजी विजय पर नाणी औषद
तन नार पारी जय । २३ निश्चिन्त रहे सुख भोगे इच्छित राज तिहूं को
संभारी जय २४ ढाल इक्कीसी गाइ आनन्द पुण्य फल सदा सुखकारी
जय २५ ❀ दोहा एकदा विजय रायजी सुख सेज को नाय सूता

निश्चिन्त पश्चिम निशि, स्वप्न अचिन्त्यो आय ॥१॥ जयति नयरी नवी री
जयन्त राज गुण धार, विजया तनुजा तेहनी अतुल गुणागार ॥२॥
सवार मंडप तेहनो रुचो अजब रंग ढंग राजराजेश्वर बहू मिल्या धरत
वरण उछांग ॥३॥ सर्व राज को परिहरि विजया वरी विजय तरंग हर्ष स्वप्न
देवतन भयो तत्क्षण जाग्रत थाय ॥४॥ तत्क्षण उठ बैठ हुआ आश्चर्य
अति मन लाय कहां विजय कहां जयंतीपुर किम स्वप्न यह मुझ आय ॥५॥

ढाल २२ मी नायलदे की देशी में सुराजे कथा पुण्यशालिनी जी भाइ
पुण्य सदा सुखदाय पुण्यवन्त ने पुण्यवन्त मिले जी जो दूर देशे ही रहाय,
सुण ॥१॥ चिन्ते अचिन्त स्वप्न आवीयो जी कांइ यह तो खोटो नहीं थाय
जद्यू भाइनी राज लइ जी लेवूं स्वर्ग अजान सुण ॥२॥ प्रभाते जागियो
जय भगिनी भाइ दी आइ तत्काल नाम प्रभावे कामिनी जी जय जय-
न्ति चाल सुण ॥३॥ चिन्ते इण रूप में तुम्हारे जी कांइ ताने आश्चर्य



कर कूरूपे बगुं जे दुजदरे जी । ते रत्य न्वर जणर सुए ४ नणी
प्रभ वे तव डरें जी भइ विद्रूप कुब्ज नरका कूब नेटी उर पूटे जी ठें-
गएँ तन नसे ऊ सुए । ५ एकाए पे लंड बरर जी भइ पेट
नपे पतल कर प दुर्बल बँकड जी चले डगनग चल सुए ६
चीबडी श्रुँहें बैठी नशीक जी कांइ श्लेष्म ते सडडार दंत तीन मुख
नहीं रे जी । लंब होट हलार सुए ७ नरक मूंछ ने दढीन जी कांइ
कबर विहरी बल फटे नलीन वक्र तन सजी जी । पडे मुख नहें से लल
सु० ८ जेटीक रहही कर हिंपे जी कांइ डगनग चलग जर शीशु
पछे देवलन जी हंसे श्राप तस हंसार सु० ९ सवा नंडा में पेरिय
जी हंसिर सब जन जोय सब से ऊंच श्रासन किये जी कमले ढांच्यो
सेर सु० १० त ऊपर विराजीय जी कांइ मूछे देत ताव श्रवले
कत सब भूपको जी जाणत पाएए भव सु० ११ हंसत लोक कहे



तेहनेजी कांइ अहे २ रूप प्रधान । पराए अब पहराणीजी बाणकर बीदर-
जन सु० १२ ते हट कर कहे परणस्यूं जी कांइ । निश्चय हूं विजय तांय ।
हंस सो से होसे घणाजी । देखो अबी दीए नांय । सु । १३ रते कुलदेवी
स्वप्न में जी कांइ वेतयो विजय तांय । वरजे कूबड़ कूबड़ भणी जी
जो पूर्ण सुख चहाय । सु । १४ । कुमरी रख्यो ध्यान में जी नहाइनजी
सिणगार । दासीयें बृन्दे परिवरीजी नेपुरने झणकार । सु १५ हाती
नर न्यन सहूतणजी कांइ । बेठी मंडप मांय । देखे घणी दरसवतीजी रूप
नूर अदी स्नेहाय सु । १६ नव ऋद्धि कीर्ति नूपें कीजी कांइ । सुणती
आगे जाय । कुंनरी वरे नहीं कोयनेजी । कूबडो रही चित्त धार सु १७ ।
आवे जिस नृप सन्मुखे जी कांइ हर्षे दीये तस दूर तजीने अंचल संचरेजी
त्व शेठी होवे ऊतरे ज्यों पूर । सु० १८ । तेतले विजय कुब्ज आवीया जी कांइ देख
धाराणी चिन्ते मन । जो इणने नहीं वराणूं जी ते दुःखिसंग लागे दोषन सु० १९

शशी कलाजी इम ऊचरे जी बाइ सबसे अधिक गुणवान । वाने तो वरे कूबडो जी
नहि मिले ऐसो आर ठाम सु २० दासी तेण देखी बेशश्री जी कुब्ज गले
डाली वरमाल अचिरज लेअ श्रीदत्तजी कांइ भाखी यह बारमी ढाल सु २१
❀ दोहा सर्व राय असुरक्त भये कहे मूर्ख कन्या येह नोल सा नहीं ति
तजी वरस भिक्षु के दर्शे नेह १ पण जुगते नहीं राय ने देखी नीच जाति
नेबल ऐशी ले कुब्ज कने शशी शी डारे वरमाल २ कोप तुर वदे नरवर
छोड कुब्ज वरमाल तुम जोगी कन्या नहीं भाग्य प्रमाणे चाल ३ कुब्ज उत्तर आपे
नहीं तव अतिलइ रीस कहे रे आर्य वरमाल शीघ्र नहीं तो छेदां सीस ४
समता सायर मीले कुब्जजी वदे नहीं एकवच । दैर्य से धोका टले जरा
लागे आंच ५ ❀ ढाल २३ मी राहव आ वीर हो यह० जिन्द आवीर
हो होकर सबही शूर टेर लेइकर करवाल नागी बोले वचन विकराल
आरे धीठ हीरे चीठा छोड शीघ्र वरमाल टे० १ नभीर वराण तव कुब्ज

बोले अहो हत भागी नार निज देव पर रोश करो तुम मुझ पर किय
व्यो आय नं० २ खोटा करों तुम रंड न लगी पड़ाए हाथ फोकट
रोश व्या करो आते मारे कहु की बात नं० ३ यों दुर्जन वचन सुण
सब अति प्रज्वलत अंग कुब्जी को कर धर खेंची चढ़यो कुब्ज के संग
नं० ४ ओढ़नी निज आनन में धर जैष्टिक हठ कर रहार कूटवा ला
गी रार को ज्यों मेरियें को जनाय नं० ५ ते उलट खड़ा हाए
कुब्ज को जरा न लागे घाव कुब्जे नारी पड़कर धरणी आश्चर्य धरे सब
नर नं० ६ मूरति देख मूरख भाखे त्यों भाय नृपाल कोइक लंगड
लूल भइया कोइ ढिंग पहोंचा काल नं० ७ खेद आश्चर्य धार कहे सुझ
तब यह नर नहीं कोइ देव नह जोइ वीर हमार निकले इस हेव नं०
८ सज्जन अति चिर चिन्त धरत थर२ कांप थरराय मन नरह
महूए का शासनपूर राय नं० ९ कहा तात भय चिन्तातुर

पुत्री देवूं किस तरह कुब्ज ने देता राय कोते विद्या जग फैलाय रा० १०
राय को देता कुब्ज कोते करे सब संहार दिग मूढ सम होकर बैठे सूझे ने
कोइ विचार रा० ११ चित्त में सन्तोष करने नभथी उतर्यो विमाण
तेहथी उतरा एक खेचर नरमी कर जोड़ी वदे वाण रा० १२ अहो विजय नरेन्द्र
जयवन्त वर्तो सदा ही आप राय भूषण नैली मणी सम वधो तेज प्रताप
रा० १३ कुब्ज चिन्ते दान इच्छक बोले बिरुदावली कोय दान आपण
करलेवस्यो फिर नरनी कहे सोय रा० १४ गिरी वैताढ्यें दक्षिण श्रेणी में राय क-
नक महारूप प्रकृति विद्या आपनी पूछे वर घर भूप रा० १५ सुणी स्वरूपा
रू नहिं आपकी वाणी सुण हर्षाय तेडवा मुझ वहां पठाये पधारो
शीघ्र महाराय रा० १६ यों विनंती बहु विध करते तबही तस सखाय
दूसरा खेचर आकर उतर्यो बोल्या विजय को बधाय रा० १७ उत्तर
श्रेणी विद्याधर नाथ की कन्या गुण रूप आगार तेहनी सुणी ने पूछा वर निज

आगे बहराय अपार ॥ र० १८ ॥ वेलग में सचीत आये शीघ्र चले
रयनाथ कुब्जजी तहे नैनदरी सब देख अति अचंभार ॥ र० १९ ॥
यह नहीं कुब्ज छे नरेन्द्र को विजय विधान प्रसिद्ध खेचर पर सुम सेव चहते
ते न है को दिद ॥ र० २० ॥ कौन कहां का कुब्ज क्यों बने ; संशयी
आनन्द विशाल अति अमोल पुराण प्रताप की ॥ कहीं बीवीस ढाल ॥ र० ॥
२१ ❀ दोहा अवसर ओलखी विजयजी कुब्ज रूप किये दूर ॥
नरेन्द्र तन मूल रूपे रहा दीपे झलहल नूर ॥ १ ॥ सर्व नरेन्द्र आइ नम्या ।
कहे पुराय क्रूरा निदान ॥ अजा जे गुनो हुवो माफ कर बने रहो मेहरवान
॥ २ ॥ सुन खेचर करे विनंती शीघ्र चलो महाराय ॥ विजय तात प्रणामी
कहे पराय विन न जाय ॥ ३ ॥ माने विजयजी आर्ज ते नमन्चर रखे सा-
दर पराय विजय ठाठ से दम्पति आदि प्रेम भर ॥ ४ ॥ परसंसये सब
बड़ बुद्ध किया राजेन्द्र भरतार ॥ सुखे रहे विजयजी तहां खेचर बात विसार

५ ❀ ढाल २४ वी जिह्वा की देशी में तब तहां खेचर विजय ने
विसर्यो जाणी हो पुण्य फल सुन्दर तब तहां खेचर विजय ने विसर्यो
जाणी हो राजिन्द ग्रार चेतन नहीं विजय मधु वाणी हो पुण्य फल०
ग्रार चेतन नहीं दीनो मधु वाणी हो राजिन्द १ यहां ग्रार सुखमें
लुब्ध हमने भूल्या दीशे स्वामी हो पुण्य० यहां० रा० इम सुण विज-
यजी चित में शरम ग्राति पामी हो पुण्य० इम० २ तस साथही जाव
शीघ्र ही सज्ज से थइ हो पुण्य० तस० रा० पल्ली ससुर ने योग्य
वचन से समझाइ हो पुण्य० पल्ली० रा० ३ बैठ विमान ग्रासमान
पन्थ से चाल्या हो पुण्य० बैठ० रा० गिरि वैताढ़ का पहाड
निहाल्या हो पुण्य० गिरि० रा० दक्षिण श्रेणिये पचरा नगर लोक
शोभे हो पुण्य० द० रा० जगती वगीचा सुन्दर खेचर देवी लोभे हो
पुण्य० ज० रा० ५ जयतपुरे जयन्त राजा सभा ग्रार हो पुण्य०

ज० ट० उत्तरी दिशा ते मण्डप स्नान शोभया हो पुराय० उ०
ट० ६ खेचर पति सारिखे उछरंगे चढया हो पुराय० खे० ट०
छाेही स्नान ते ऊँचे आसन बैठया हो पुराय० छा० ट० ७
अति आडम्बर महोत्सव को करइ हो पुराय० अति० ट० जयति
न्ते वइ विजय ने पराइ हो पुराय० ज० ट० ८ कन्यादान सु-
न्मान देवन की न्ते हो पुराय० कन्य० ट० न्हते न्हविद्द दीवि
सुखको हो पुराय० म्हइ० ट० ६ और यथ विधी सुसरे जनइ स-
न्मान हो पुराय० और० ट० अपूर्व लाभ ते आनन्द विजय अति
मान्य हो पुराय० अपू० ट० १० सर्व सुख में लीन स्वलकाल तहं
रेइ हो पुराय० सर्व० ट० दूसरे विद्याधर युत नृप सम्मती लेइ हो पुराय०
दूस० ट० ११ बैठ विमान में पुनः अस्सन ने चाल्या हो पुराय०
बैठ० ट० उत्तर श्रेणी सठ नगर को ठठ निहल्य हो पुराय० उत्त०

र० १२ विजयति नगर ऋद्धि सिद्धि भरउ पधारी हो पुराय० वि०
र० विजयन्त भूपत हर्षित विजयजी ने जोइ हो पुराय० वि० रजि०
१३ पुरायतम जनइ ने लियसै वधाइ हो पुराय० पुराय० र०
अति आडम्बर विजयन्ति वइ पधराइ हो पुराय० अति० र० १४
नह विह तस रोहाए नम सु दीनी हो पुराय० नह० र० अति आ-
नन्दे विजयजी गृहाए तस कीनी हो पुराय० अति० र० १५ शेठे
कल तहं ठइ पुनः की तैयारी हो पुराय० शेठे० र० निजपुर जाने
नसुसराद ठज गृही जहाँ हो पुराय० निज० र० १६। जगजी
दस दसी गगन चली दीन हो पुराय० जग० र० रव ऋद्धि से पा-
वर्ी नभ नारी लीन हो पुराय० रव० रज० १७ पुनः जयन्ति
आर सुख से तहं र हो पुराय० पुनः० र० तहं से भी ऋद्धि आ-
दिक ले आये सिधार हो पुराय० तहं० र० १८ जयन्ति विजन्ति

नारी आपहर रानी हो दुराय० जय० रा० काम देव के रीति प्रीति
जोडी रे जनी हो दुराय० का० रा० १६ और सब
ऋद्धि तेज बल कर शोभे हो दुराय और रा० ऐसे ठठ से कान पुरे
चल आय हो दुराय ऐसे रा० २० पुर नहिर उतराय खबर संचरी-
य हो दुराय पु० रा० लोक सब आश्चर्य भरिया देखन हरिया हो
दुराय २१ जगा जयजी सेन मंगल तान राजइ हो दुराय जगा
रा० सभै आय लीना लहु बन्धव बइइ हो दुराय स० रा० २२
नारी सिंगार गोडी नीत उचरी हो दुराय न० रा० दोनो राज
आरूढ रेस सब परिखी हो दुराय दोनों रा० २३ देखी खेचर भू-
चर अति विस्मे हो दुराय देखी रा० मेतरि क नेह बढ़ि रस बढ़ा-
वे हो दुराय मेती रा० २४ आय नेहल नेहल नांही सुखे सहू साथ
रहइ हो दुराय आ० रा० कीती वरत भात ने वीजय सुनाइ हो

पुराय वीर० रा० २५ जेठ की छांहे निश्चिन्त विजय जी रहते हे
पुराय जेठ रा० स्वर्ग सम सुख भोग में काल बीतते हे पुराय स्व-
र्ग० रा० २६ जय के चार विजय के तीन है राणी हे पुराय जय
रा० पुराय ढल चौबीस अनोल गवाए हे पुराय पुराय रा० २७
❀। दोहा पुराय वृक्ष निज फल लाये। दोनों बन्धव उस वार तात से
मिलने आंगरि। देखाने चमत्कार १ विन गुने आनन्दीय तात बतावं
फल। चले सेना ले सहू कीजे कुल वीमल २ तात दिन सज्जन सहू
वर जाने नम भोर, कुवर गया प्रलय भय के रहा ऋद्धि पाय ३
सुन्दर नम्बर की सबी करी सेना तैयार नभ भूमी भाग संकीर्ण कर चले
करत जयकार। ४ रस्ते आते अन्य राज में शक्ति से नमत आए का-
त सेना समठी सुखे २ करे प्रयाण ५ ❀ ढाल २५ वीं एडका छन्द
मे आये सब सीम जहां आइ निज तात की छावनी डाल तहां सहू रहीय

लूंटत लेसत त्रसत ठकर जयजौं खबर तत अवे अहिंय ॥ १ अ-
तप प्रताप नहि दुराय बलीय ताए अरि हरी जय श्री देन तवे टेर शू-
रने वीर साहीर रत मिली . जोर को तेर अविको जावे अतप ॥ २
भारी तजीय अय नरेन्द्रो दल बल छल ऐसे जाने सुणी छनरय
भरय कोपे अति है कोन दुष्टसुभ तने आवे अ० ३ सजी सब फौज तब
बोज लडन ताणी खोज खेद दुष्ट अरी नर ने नज रथ पालकी भेट शू-
रजी शूर ज्यों तजीय देह भरने अ० ४ नयांल नद भरी सिता री
रज करी श्याम घट छाइ ज्यों नंदन आवे गुल गुलट तजरख विद्युत होद
चनक लम्ब घराट घोर नद शरे अ० ५ तुरं कुरं ज्यों चाल पा
थिर नहीं ऐसल चौफल हाणाइ रहीय । पलाय नजबूत रजपूत बैठ
सजी शक्र सम्बन्ध कार सज थइय । अ० ६ रथ संग्रनी सज भा-
गाटे अरि लज जरी खेल फहरंत तेज फाके रग बैठ नर वेंची छनुषय

जमाय मरे अरी जा लरे न सरके । छ० ७ । दक्षर संगीन रंगीन नयन
देश में मल मले अनी न ली मल कर में शूर रस में छके वके अरी
दो मचे सूर रस पूर सातूर रमें । छ० । ८ । यों चतुरंगी बहुरंगी सेन
बनी धर्म राज तणी चोजे चली आइया कटक जहां प्रटिट कुमार का
राण में चौगान शिल भली छ० । ९ । राणां गण मडवीय सड वड-
वीर निशाण फरहरीय दोनों राज ! शत्रु अरु सजी थइ २ नाचे शूर
बाजे जुजु सातूर बाज छ० १० दयाल जय विजय यों दोय चिर
चिन्तवे चिन काम धमशाण महा अरी थटे नहा पाप संग्रही निश्चय जवे
मरि नहीं करूं यह अकृत्य भवे छ० ११ आपणी सेन को न कही
लडन की दोनों आइ आगे जमा जो रहीय प्रति पद तेन छंछेडी कू वेण
कहे एक बजू संग्राम चलनी थइय छ० १२ धर्मराय सेन देश का
न्हाले शत्रु कुमर पर औषधी नहीं मा का नहीं लागे नेह धरी जयों वो शत्रु

सेन पर । देव आश्चर्य सर्व मन जाने । अ० १३ आये शत्रु सब संग्रही
ने ढग किये नि शंक हुइ पित सेन जाने शूर नाद्य बर करे शत्रु निर
थर २ कमोत इत उत सौं निहारे । अ० १४ लेइ नाद दोनों बंधव लागे
नाचे सेन निरधार ने भागी त्यागे । धर्म राज लखे भगने कुमर जो लागे ।
सन्मुख जाय अकर तारे अ० १५ अहो बुद्धि राजीर । बलरे मारि
लाजीर कैसे देंगे जाने । कौन गुने जय विजय आनन्दीर शीघ्र परनवे
ऐहीज म्हाने ; अ० १६ सो बीज बोये सो फल अब आवीये दोष जाए वे
कुमर केरे बिन न्याय किये करो रोबीर पुत्र रे जानत चाहे हनसेइ बेरे
। अ० १७ यों वचन सुणी चन्द्रय तब धार धाणी बैर लेवा येह कुमर
आय ।। उनंस्ते प्रेम प्रेदी पुत्र याए निज अजन आराध हुव कहे दान्य ;
अ० १८ संदेश में बत दर्शाइ तीन तनी देवी कुमार ने घात थती
तुम नाय नन्तरे जाणी लेरी चा सह तब म्हारी घाए जली छाती । अ०

१९ चौकस कोई पेखी नहीं तुम खबर आरत धर आज तक रहीया
तुम पुण्यातम निज चाकरी ना हमें हीय न समाय भईया आ० २०
हृदय चम्पी दोनों गले भेट्या सुख में सपूत पेखी सब हर्ष लावे तो खुशी ना-
थ की कैसी वाणी ढाल पचीस अमोल गावे आ० २१ ❁ दोहा
शालत पेखी तात की हर्षे दोनों कुमार चरणे पडी अर्जी करे हम
गुनेगार आप १ नहक सताया आपने कर अविनय भरपूर सब अप-
राध माफी करो मित्र मतिये भूर २ तात कहे संतोष ने गुन्हो न हुवो
लगार उज्वल्यो कुल म्हेहरो गाल्यो अरि अहंकार ३ सहू पहचानी राज
पूत्र हर्षित हुवा अपार मंगलतूर बजन लगे परसरे सबी कुमार ४ खेचर
भूचर पत भया विद्या बलीया आप ४ जीत्या प्रबल सेना ने हिंसा न कीनी
लगार ५ ❁ ढाल २६ मी जीवो हो जीवो वीर एह० हर्ष हो
हर्ष सजन सहू पाया जी मेदी जय विजय की दिल्लुजी जोरो हो जोरो

प्रत्यद चन्द्रकराने जी बिहु थाणी छे सिद्धजी हरखे १ आवी जन हो
आवी जन सुणीने लजीर जी सज्जनधर आणंद जी वंटी हो वंटी वहइ प्रेम
डी जी आज निलय सुख समकन्द जी हरखे २ मुहूर्त हो मुहूर्त शुभ
तब आइयो जी बिद्धु कहे पुकार जी पेसा हो पेसा पुरे आवी करे जी
मुहूर्त विजय श्रेयकार जी हरखे ३ बैठ हो बैठ रायजी कुंवरो जी
दोइ पास कुमर बैठइ हो नन हो नने सुख आति नन हिवे जी छत्र सि
चमर विंजय हो हरखे ४ सेन हो सेन सब हुइ स्कठी जी खेचर चाले
सान नर हो भूचर हो भूचर चले भूचरे जी ठठ आनोखे देखत हो
हरखे ५ बाजे हो बाजे आम्बर जडीरो जी हर्ष निशाण कर रव हो
बोले हो बोले विरुदावली धाएजी बन्दीजन दुवार सासर हो हरखे ६
लीह हो लीह वहइ गोरडी जी शुद्ध द्रव्य नीत सिणगार हो चलय हो
चलय नाग रथी जी परवरी सहू परिवार हो हरखे ७ निरखे हो नि-

राखे गौरव से गोरडी जी नाठी धीरज सर्व हो देवी हो देवी ऋद्धि जय
विजय लीजी गलीया शत्रु गर्व हो हर्ष ८ आयहो आय राज सभा
बैठे जी बैठा सौ शय रोग स्थान हो भरसे हो भरसे सचीव जय रयन
जी सुणी यों सब देइ कान हो हर्ष ९ पुनारथी हो पुनारथी ऋद्धि पा-
पगे जी पाते पुनागम प्राण हो जरजी ने जरजी विजयजी जीया जी
इह थी किये प्रयाण हो हर्ष १० नर्मे हो नर्म यद संतुष्टिया जी
दीठ तीन रतन हो पार हो पार राज तिहुं नाटक जी वली वेचाल
दसपन हो हर्ष ११ दावी हो दावी चाले सब दोइनी जी सुणी सब
आश्चर्य पायहो आयुहो आयु सुख गिरीश रहेहो आशीर्वाद सुणाय हो
ह० १२ पहोंत हो पहूंत सहू निज २ घरे हो अठाइ महोत्सव करय हो
दुःखीया हो दुःखीया सहू सुखीया कीया हो दान धर्म फेलाय हो ह० १३
आय हो आय देवें वन्दन जी निज २ नाम ने पाय हो प्रणमी हो प्र-

एम्य रागीय सं लेहो विरह दुःख करिय नश हो ह० १४ पुत्रर्ज हो
पुत्र सपूत देवरां हो जननी प्रीति सुख पाय हो प्राणी हो प्राणीनाथ दे
तोरिय जी हृदय सहूने लगा रहां ह० १५ दीप हो दीप नेहल ओर
रहव जी सहूसुख सनमो सज्य हो परिवार हो परिवार सब परिवारथी हो दोनें
रहे सुख नय हो ह० १६ जोइहो जोइ रचना कुना की हो श्रीनाथ मन
सुरभय हो श्रावीर हो श्रावीर राज वीरे ही हुवा हो तुम्ह व्यर्थ नये उपाय
हो १७ होतव हो होतव कौए टली सके हो पुराया सुख पाय हो यों
जाणी हो यों जाणी सुखी रही हो नहीं मन सन्ताप हो ह० १८
उनरजी हो उनाजी नागेंद्र मन श्री हो राखे इष्ट सब काम हो तेबे हो तेबे
सब सज्जन भरी हो पूरी इच्छित हाम हो ह० १९ जाने हो जाने नाने
उठी करीजी करे सहू राज संभाल हो रहवे हो रहवे पित की छांह में हो
सदाचित उजवाल हो ह० २० विलसे हो विलसे सुख सर्व सब हो

हुइरे छवीसमी ढाल हो प्रभो हो प्रभो ऋषि अमोल का हो पुराये. सुख विशाल हो हो० २१ ❀ दोहा तिण अवसर भूमंडले चारित्र चूड आगार विचरे बहु मुनिवर संगे करता परम उपकार १ नन्दीपुर के उद्यान में समोसर्या महाराज । हर्ष्या नृपादि सुणी ज्यों मेली समुद्र जहाज २ हुकम कियो सब परिवार को चालो सुणन व्याख्यान सेना आदि सामग्री सहू संग ले चले राजान ३ पुरजन बहू उत्साह धर रथ योतर सज होय आये विधि से वंदीये उरे दर्श अमी लेय ४ परिषद बैठी भा-र्य केवणी सुणन उमंगाय सर्व जीवो हित कारणे मुनी सद्बोध फरमाय ५ ढाल २७ वी चेतन चेतोरे दश बोल यह. लाधो लाधो हो भव्य जीवों । अवसर दुल्लभ पाया हो । लाधो । टेर । निर्वाण साधक मानव देही पाय तेही साधो हो धर्म रिद्धन सूत्र सुणाय श्रद्धी ने आराधो हो ला० १ पुद्गल स्वभाव पूरणगलाणे नेहडाम्बर सो जाणो हो दीण भंगुर या रहे-

की पाई सुद्ध सुरज पणे हो ला० २ वाणी वहो जो केते सुधरे सामग्री
लेवे लागे हे हो तो जलम दुःख दीए में गमाइ, आदरानन्द पावे हो ला।
३ इत्यादि उपदेश सुणी सहु सभा अति हर्षाइ हो, समकित व्रत यथा
शक्ति आदरी, निज स्थान आइहो लाल, ४ संवेगे भीना थई राजा
जोड़ी करे आजी हो राज पुत्र ने देइ आसुं संयम लेवा मरजी हो
ला० ५ यथा सुख करो मुनि परमावे धर्म में ढील न कीजे हो वंदी
गुरु नृप राज में आया धर्मे मन भीजे हो ला० ६ जय विजय
जय को कहे बोलाइ राज ये तुम संभारो हो तुम सम पुत्र में पायो मन
सुधारो हो ला० ७ दोनों कहे आप पुरष पसारे राज समकित हम पाया
हो ये राज देवे जयधीर ने होवे म बहारा हो ला० ८ तब नृप
तीनों रानी बोलाइ वैराग्य बात जणाइ हो जनम सुधारूं वाणी बहु तुम
इच्छा कांइ हो ला० ९ प्रश्नोत्तर बहुत हुवा नन्तर तीनो रानी वैरागी

हो कहे हम किन विध करां रेहीं आप जावो त्यागी हो ल० १० तब
नृपति कहे रणधीर ने राज संभाल भइ हो जय विजय ते पाया राज अन्य
रे तुम तांइ हो ल० ११ जयधीर कहे जयवीर पिता हम हूं तो राज
न लेस्यूं हो विजय बराबर भ्रात भक्ति में सदही रहस्यूं हो ल० १२
सब की सला से विजय कुमार ने जल्दी से गद्दी बैठाया हो तातमात का
दीक्षा ओत्सव जयजी मन्डाया हो ल० १३ सब परिवार बाग में आया
संसारी वेष तजाया हो धर्मी मुनि वेष लीनी दीक्षा जग दुःख छिटकाया
हो ल० १४ सब परिवार चित्त आरत धारते फिर कर निज गृह आया
हो संभारे गुण रहता सुख में जगरूढ रहाया हो ल० १५ तीनों
सती रहीं सतीयों मांइ मुनि आचार्य ढिग रहाइ हो प्रथम ज्ञान सीखे अति
चूं जो रिद्ध दाताइ हो ल० १६ नन्तर दुक्कर करणी करता वह
अभ्यन्तर शुद्धे हो हरि लाइ निर्वाण पन्थे जो दाई सुद्धे हो ल०

१७ धर्म ऋषि धर्म ध्यान से चढ़िया शुक्ल वरी शुक्ल भैया हो । कर्म हटाइ केवल पाइ मुक्ति गया हो ल० १८ मतीयाँ ऊंचे स्वर्ग सिधाइ थोड़े भवे मुक्ति पाइ हो जन्म सफल जो आतम तारे अवसरे भाइ हो ल० ॥ १९ सम्कित उत्तम जय विजय तणे पुण्य अधिकार खण्ड पहलो हो । ढाल सत्ताइस नाम रसाल कीनो मेलो हो गुरुप्रसादे कहे अमोलक पुण्य का संचय करीये हो तो जय विजय कुमर के जैसे सुख शीघ्र वरीये हो ल० २१ ❀

हरीगीत छन्द ॥ श्री सम्कितोत्सव सर्व सुखकर पुण्य फल दर्शाइया । जय विजय दोनों पुण्य प्रतापे अखूट ऋद्धि सुख पाइया ॥ ऐसा जाण सुखार्थी प्राणी निर्वद्य पुण्य संग्रह करे कहे अमोलक तस पसाये, धर्मकर शिव सुख वरे १ ❀

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी
मुनिश्री अमोलक ऋषिजी महाराज रचित—सम्कितोत्सव—जय विजय
चरित्र का पुण्य अधिकार नामक प्रथम खण्ड समाप्त ॥

श्री सद्गुरुभ्यो नमः "समकितसार" जयसेण विजयसेण चरित्र का सम्यक्त्व
अधिकार नामक द्वितीय उत्तरार्द्ध खण्ड प्रारंभ दोहा प्रणमुं सिद्ध साधु च-
ण सारस्वति गुरु पाय विघन हरे मङ्गल करे द्वितीय खण्ड वणाय १
समकित मूल धर्म वृक्ष का शाखा कीर्ती पान यश कुसुम फल मोक्ष दे
आराधे मति मान २ विजयसेण सम्यक्त्व द्रढ पाली संकट मांय लहेवासे
केवल लही पाये सुख शाश्वताय ३। ऋद्धि वृद्धि हुइ बहू यशः सुख वि-
स्तार प्रमाद तजी चित चटक धर कथे सुणे धर्म धार ४ जय नृपति
के राज का विजय अनुइये ताय प्रीति परोदक सारखी अन्तर छे फक
देय ५ बीत बहुत काल वृत्ते। ऐसी तरह सुख पाय एकदा विजय
कुमार ने पश्चात् स्मरण आय ६ राज देइ सचीव को मैं लुब्ध रहा आय
अब शीघ्र जाकर तहां संतोषु परजा तांय ७ ❀ ढाल १ ली सैयांरे
मोय डारे लागे उस दिन को। यह० सुणोजी भाइ विजय चरित्र सुखकारी

टेर । प्रात समय श्री विजय भूपति करी शृंगार शोभारी सु० १ मोती-
मुक्त किनरसुत कहे जग से कलपुरी रहवा हुइ इच्छारी सु० २ इच्छा
होवे तो हुकम फरमावो हूं इच्छुं आइ तुमारी सु० ३ जाए आतुर
तस मातु वदे जय कीजे जो तुम सुखकारी सु० ४ सुणी हर्षित ल-
स्कर सजाया हेवर मैंवर तेही वारी । सु० ५ बन्धव दि सब जन ने संतो-
ष्या साथ लीनी तीनों नारी । सु० ६ शुभ मुहूर्त प्रयाण कीया सब । सुखे
मुकाम करता री । सु० ७ आया कलपुर ढिग जारी प्रजा हर्षित हुइ
भारी । सु० ८ पुर सिणगार स्वर्गपुरी सम आये सन्मुख राज थारी
सु० ९ लेवे वधाइ विजय भूप तांइ मोतीयन मेह वर्षी सु० १०
सपविते मुखे रहे विजयजी कन्ही पुर के ममारी सु० ११ बन्धु दे-
रोग विटके जयजी विर मिलाए मन उमंगी सु० १२ नयदीप को
राज संभलाया दीनी सब मुक्तारी । सु० १३ निज परिवार समाते सर्व

लेइ काम पुरे चलारी सु० १४ सुणी विजयजी अति हर्षे शोभ-
सर्व सजारी सु० १५ सन्मुख आइ भइ बधाइ पुर प्रवेश करी सु०
१६ एकही स्थान गुलतान प्रेमे हो रहे सुखे स्वेच्छाचारी सु० १७
रथ उचित काज करे उमंगे राज भोग समदारी सु० १८ बात विनोदे
एकदा चोजे आपस मांहे उचारी सु० १९ निर्धन बैठा काल जाय सों
करां कछु न मनारी सु० २० ज्यों बल ऋद्धि पाइ प्रसिद्ध होवे छट
देखूं विविध प्रकारी सु० २१ दिग विजय करने उमंगन करी सब फौज
तैयारी सु० २२ रोहणी प्रज्ञप्ति आदि विद्या सही शीघ्र आवे कन-
मारी सु० २३ मणी औषधी लीनी साथे कसर न रही जन नारी
सु० २४ महा ऋद्धि महा द्युति महा बल सों चले नगर छोरी सु० २५
अनुक्रमे सब राय वश्य कर्ते शक्ति से भक्ति बढ़ारी सु० २६ तो सिन्धु
खण्ड देशें साध्य वैताढ्य लग नही सारी सु० २७ तृप्त न देखें

वंदन कर ॥ अखाडे आण फिरी ॥ सु० २८ नन विध ऋद्धि सिद्धी ले पछा सहु पलटावरी ॥ सु० २९ उत्सवे आया कान पुरे सहू सहु सामेले राय परिवारी ॥ सु० ३० कानपुर का नाम बदल कर विजयपुर नाम स्थापारी ॥ सु० ३१ सब नृपत करिया विदा तब यथा योग रीति सतकारी ॥ सु० ३२ ॥ हरी हलधर सी जोड दोनों की कीर्ती जग विस्तरी ॥ सु० ३३ यह पुण्य कथा दोनों की गाइ ॥ अब कहूं धर्म कथारी ॥ सु० ३४ ॥ उत्तरार्ध अधिकार प्रथम ढाल संक्षेप अमोल उचारी ॥ सु० ३५ ❀ दोहा ॥ ते काले नहीं नाडले गुण कर ऋषि सवाइ ॥ लाभ स्थानक से विचरते तारते जीवों बहू आइ ॥ १ ॥ भव्य पुण्योदय आवीया ॥ विजयपुरी के बहार ॥ उतरे वनपाल राजा लइ विजय उद्यान मझार ॥ २ ॥ माली हर्ष सज हुइ नृपति सभा में आय ॥ अंजिल युत वधाइ दे अरे सवाइ महाराय ॥ ३ ॥ नृपादि सुण आनन्दिया सिंहासण से उतर तहां से वंदन करी मुनि भणी प्रेमेलुब

हो उर ४ अर्द्धवरे ओड हीराए ताणी मली बौं बवसार । वस्त्र भूषणे
तेहे तस कीधो तम वीदाय ५ ❀ ढाल २ री । वनछव वेल नाने
हो यह सर्वइ मुनि आगम लही दोनों भूप हर्षाया हो धन्य दिन है
आज को रोम २ विकसाया हो भविक समकित आराधो हो आराधे सुर
तरु जिसी आतम कर्म सधो हो भविक १ सेन सज्जन सहू रज किया
वंदी वंदन चाल्या हो पुरजन जनी बहू तंहवा जतन से हाल्या हो भ०
२ देखी मुनि बहाण तडया मुख यत्न कीनी हो तिखुत्त वंदी वंदन किये
मति गुण रंग भीनी हो भ० ३ रथ योग्य बैठ सहू इन सुणन का
तरिया हो परोपकारी मुनिवर बोधन तब चरिया हो भ० ४ अहो
भव्यो इन आतम ने भव भ्रमण के मांही हो अनन्त पुद्गल परावृत्या दुर्लभ
देही पाइ हो भ० ५ उत्तम क्षेत्र आर्य विषे उत्तम कुल अवतारे हो
आयु दीर्घ पूर्ण इन्द्रिय देही निर्विकारे हो भ० ६ मिल्या निर्ग्रन्थ

गुरु निग्रन्थ जिन वाणी सुणीजे हो श्रद्धो प्रतीते रोचवो करणी शक्ति
शुणी जो हो भ० ७ धर्म मूल समकित है शुद्ध श्रद्धा धरो हो
परम दुर्लभ जिनवर कही पाया भवो दधि पारो हो भ० ८ सकल
क्रिया श्रद्धा रहित होवे नहफल दाता हो अभव्य तणी श्रद्धा विन अनन्त
संसारी रहत हो भ० ९ नक्षत्र विन चन्द्रमनी चन्द्र विन जिन
रजनी हो रस वती सब रस विन विन प्रीति न सजनी हो भ० १०
जिन तप धीक्षा लो तिम धर्म की करणी हो श्रद्धा विन निसार है
नहीं पार उतारनी हो भ० ११ इण कारण धर्म इच्छुक श्रौं प्रथम
होते सुधारो हो शुद्ध होइ समकित लइ धर्म बीज फिर डारो हो
भ० १ व्यवहारी समकिती पहिले बनो तत सठ गुणवन्त हो परमार्थिक
परिचय करो परमार्थ वन्त हो भ० १३ वमनी पाखण्डी संग तजो
यह चउ श्रद्धा धरो हो दुर्वित मद करनी करनी सेवे इमनी ज्ञान वरे

हो प्रा० १४ ए तीन लिंग ज्यों जिन वचने, दृढ़ प्रीति धरी हो अरि-
हंत सिद्ध सूरी ज्ञानी मुनि ताणी संघ चारे हो प्रा० १५ कुल गण ने
क्रियावन्त का नित्य विनय करीजे हो त्रियोग शुद्ध जिनमति ताण गुण
हृदय धारीजे हो प्रा० १६ शम संवेग निर्वेद अनुकम्पा आस्ता हो
यह लक्षण ने धारत मिले सुख शाश्वत हो प्रा० १७ शंका कांक्षा
वितिगिच्छा पाखण्ड परसंस हो परिचय तजे पाखण्डी का दोष पंचहिंसा
हो प्रा० १८ दक्षधैर्य गुणाकर धर्मी भक्ति उन्नती हो भूषण पंच धारण
करे जे नर समकिती हो प्रा० १९ सूत्रज्ञ बोधक वादी जय त्रिकालज्ञ
तपसी हो प्रसिद्धवृति बुद्धवन्त कवी प्रभावक दीपसी हो प्रा० २०
राजा बली गुरु न्यात ने देव मरण संकटे हो दोष लगे जो नाकिते आ-
गार छे दंटे हो प्रा० २१ बोलया विन बोलाय ही बोले धर्मी से जइ
हो दान मान वंदन नमन छे यत्न करइ हो प्रा० २२ मूल कोट

नीन करंडीये हट भजन जैसी हो धर्म की समकित गिये छे स्थानक ऐसी हो भ० २३ आत्म है सदा शाश्वती कर करती मुक्ति हो । भा-वन निश्चय ये रहे त्रिसते मुक्ति हो भ० २४ । यह व्यवहार सम्यक्त्व के सत सठ गुण पावे हो । भावे अनन्तानुबन्धि चौकडी त्रिमोह दपावे हो भ० २५ अर्हंत देव निग्रन्थ गुरु । दया धर्म व्यवहारे हो । देवतम गुरु ज्ञान ने धर्म शुद्ध भाव धारे हो भ० २६ सम्यक्त्व धर्म द्रढ वव । देरना ये परम इ हो खराड दूजे ढाल दूसरी । ऋषी अमोलक गाइ हो भ० २७

❀ दोहा श्रोता प्राप्त सम्यक्त्व सुध अत्यन्त आनन्द मन । अपूर्व भव श्रवण हुवा आज दीहाडो धन्न १ राजेश्वर जय विजय गुरु पाया हीये प्रकाश उत्सुक हो बुली २ नारी प्रणाम्या करे अरदास २ स्वामीजी ज्ञान की कहो भवन्तर विध संजोग वियोग हम किन लीये कैसे मिली यह रिद्ध ३ उपकार कराण जाणके श्री सर्वज्ञ भगवन्त पूर्व भव जय

विजय को देव जैन कथन्त ४ करणे भणी विशेषे ले दे सन्ते कोइ
नर प्रत्यक्ष देखीये परख नृप दीसे सभाय ५ ❀ ढाल ३ री
जय जिनराय २ यह० सुणो सुणो भइ २ पूर्व भवों की सुकृत कमाइ
सुणो आं० भूतिलकपुर नगर भलेरे धन धान्य ऋद्धि सुख घणेरे सुणो
१ श्री जय भूप कहाणो नाणी बुद्धि विजय प्रधान गुण खाणी सु०
२ तहां रहे ऋद्धिवन्त व्यापारी भद्र भन्न नामे भार्या धारी सु० ३
श्रद्ध पद पर्व एकद आय जैन व्यवहारे भुक्त निराय सु० ४ तप
तिथि होती ते दीहडे नित्य स्वजन भिक्षुक जीमाडे सु० ५ नीति पुनी
स्वति जीमावे तव श्रमणी एक तहां चल आवे सु० ६ परमानन्दे भज-
ने मुख डल देख दोनों भइ रोषे हुआ कल सु० ७ जेष्ठिका सजो
कमरे नारी धरणी पडी मूर्छित तेवारी सु० ८ तब एकभैसे दोड तहां
आये दुर्बल शक भूखे हकारे सु० ९ पडो कुरी दोनों रोने लगा

पूर्व भव का नेह तस जागा सु० १० नारदाणी से म्हेले उतरे देखे ताक
रब अचरज धारे सु० ११ सुणो पण पूरी सम्भ न पावे भेद जाणन सही
केवल चावे सु० १२ मथ्य भाखे श्रुत केवली आया देखी सर्व अति
हर्षाया सु० १३ मनु भरत तुली वंदन कीनी शुद्ध भेद उलट भाव
से दीनी सु० १४ फिर कहे छुपा को प्रकाशो अपूर्व आज यह देखो
तमासो सु० १५ पूर्व इनके उपयोग लगाइ कहे मुनि सुनो कर्म कथाइ
सु० १६ पहले पिता कुरि तुम माजी जिसका आज यह श्राद्ध कियाजी
सु० १७ सत भवों से प्रीति इनकी जाणो भवोभव पाइ ऐसी ठाणो सु०
१८ यह मिथ्यात्व पंथ विरुद्ध दो हुवा दुर्बल तेज तुम लादो सु०
१९ निजके को निज छिपाणो सुणी नाम इहांपे लगाणो सु० २०
अकाम की लहुरैया जाति स्मरण इन दोनों लैया सु० २१
कहे मैंसे डरी नारी तांइ फिकर पड़े रे पुत्र काइ सु० २२

आपणे नहीं भोजन निजघर लदी लाय सुमन जर न चाहय सु०
२३ ये चीर खइ कम्मर तोडइ दोष ने किनक रुल्ली कन्हइ सु०
२४ ये दोनें ऐसी कर रहा बातां एहे संशय हुन जर मन लाता सु०
२५ निर्धन बत्ते पडो तुम तांइ ते सत्य ये सन्मुख जे भाइ सु०
२६ पडे गैशल पग थी कुचरे खोदी देखे भनु द्रव्य निसरे सु० २७
परतीत आइ सत्य बात जाणइ भनु संतोष्य दोनें के तांइ सु० २८
दोनें तिर्यंच मिथ्यात्व छिटकाइ मुनि बोधे समकित पाइ सु० २९
और घणा जन धर्म ने धर्या मुनि उपकार कीने पधार्या सु० ३० ढाल
तीसरी अमोलक गाइ सत्संगति महालाभ दाताइ सु० ३१ ❀ दोहा
भमर भनु दोनें मिली कर तिर्यंच की सेव हान पान वस्त्र भूषण से पोषे
तस अहनेव १ तिर्यंच दोनें इन्द्रक पाले समकित शुद्ध रथ उचित
करणी करे धर्म में प्रीति बुद्ध २ अनु अन्ते आसण करी प्रथम स्वर्ग

नमन देव देवी पाए ज्ञान जाणी इन नमन ३ तत्वीणे अइ पुत्र
ते देखइ निज रिद्ध समकित धर्म पसरे ते छुवण तिरे एह विध ४
प्रत्यक्ष फल देखी धर्म का धर्मी हुवा हाए लोक सुरसुरी सबी नर भोनके
दुगर का शोक ५ ❀ ढल ४ चौथी नमन जन २ रतन तेने पायेरे
यह० समकित रतन २ सदा सुखदाइजी धरो भव्य हुलसाइ स० टेर ॥
भमर भमु धर्म पाप फल देखा प्रत्यक्ष परिचय लेखयजी अति थिर हर्ष ।
धन्य २ मुनिराय सुख पन्थे लायाय सा १ अति दुर्लभ येह अवसर
पायो लेवो लाहो चित चायेजी यों धर्म उत्तर हो शुद्ध समकित नहो
ले उत्त दे लहो स० २ दान देवे पर्वे शील पाले तप करे धर्म उजवा-
लेजी पाए कर्म नीति भरी वले फिरे अडो अरी देवे बुद्धि विनडी ।
स० ३ नन नहीं धर्म जाणे सची प्रमाद बहो ढल कायजी मेरे
सुखे ललचइ रहा मोहसुरमाइ करी करी ढीलइ स० ४ सुनि

दाशए काब न जाइ ते धर्म श्रवण कैसे थाइजी हे समकित सेठ रहो
घर नहे बेठ करे ज्ञान से भेंट सं० ५ दोनों भाइ के दो दो लुगाइ
तसही धर्म समझाइ सुसंगति से लगाई धर्म इन सिखाई करी सम-
कित में गाढी सं० ६ उन २ दोनों बाइ के दो दो सहेली तास ते धर्म
में भेली जी ते पाए होगइ शाणी सत्य जिन मार्ग को जाणी धर्म अन्त-
मी जाणी सं० ७ एकदा कोइ पाहणाई आगे मानु संग विवाद नचा-
रो जी तेथे काटी दूजो जैसे सहेत को छुरो करी चार कुटो सं०
८. जिन वचने शंका मानूं ने आइ पाए किसी को नहीं जाए इजी नहीं
परशंसे निन्दे नहीं वन्दे निकन्दे मन में राख्यो सन्दे सं० ९ केता क
काले ते विसराई फिर जोग बारो तैसे आइजी फिर शंका भाइ रयों तीन
वा मराइ नरक कर्म बन्धाइ सं० १० एकदा जेठ मानु नगरी आमी
थी घर दरीजी तहां आइ नेतराणी बोलते सेठाणी कोह करी प्रेराणी

स० सुण शेठाणी गुणरइ भरणी, बोले जेहने तारीजी, तूं छे नीच
जात नरी, हम सां नहीं करां थरी, बोलत आवे लाजरी। स० १२।
नित्य लेजो ते अशुचि हुइरी, कथन करे बरोबरी म्हारीरी, इण बहु दिकारी
नव नवल भरणी, नीच नेत्र वन्धारी। स० १३। पाली समकित निर्मल
सबही, अरु अनन्त लहो जबहीजी, प्रथम स्वर्ग नगरी, देव देवी आनन्दी
ऋद्धि पुरषारुणी। स० १४। आयु पूर्ण कराइ, यहां आइ सहु
निलइजी, मनु जन्म नृप थइय, मनर विजय लहु मैय, पूर्व प्रेमे लुबधैय
स० १५ तीनों रत्न तुम शुद्ध आराधन, ता पुरय श्रीवरड साध्याजी,
तीनों रत्न पराइ नारी औषधी मंत्र तंइ, कुछ फल पल्याई। स० १६
मनु जिन वचने शंक लय, जयजी तीन वक्त दुःख पाय जी, मनर की शुद्ध
श्रद्धा ते नहीं पइ बहु, संचय स्व सुख लहु। स० १७। कुल मद
तीनों स्वकां बइ, तेहने देश्य कर जइजी, कानलता कहइ, पूर्व ने

अकर्षाइ मिल्या जयजी आइ हुइ पजी लगाइ ॥ स० ॥ १८ ॥ और सज्जन
मिल्या सब भाइ । नगर २ दीना बधाइ जी सुणियें जिन वाणी इहयों को
सब प्राणी व्रत लेन्दी लगाणी स० १९ ॥ नित इन्द्र वरण बन शैर
जति समाए इन लैया जी सुणी जैसी जाणी अति हीये हरणी द्रढ
समक्त ग्रहणी स० २० । श्रवक क व्रत सब आदरीया शुभ सौन
बहु करीया जी ढल चतुर्थ थाइ अति अमोलक नाइ धर्म सदा सुखदाइ
स० २१ ❀ दोहा श्री जिनजी रहे तहां लगे लेदी विजय राजान
तत्वार्थ धारण किया निसंशय मतिमान ॥ १ ॥ जिनजी विचरे जिन पदे
नगर विजय राजान अमरी पडह वजवीयो तीनों खण्ड के स्थान ॥ २ ॥
नवकार आवे जेहले तस नप कीयो दाण इन शब्द सहू सुन कर धर्मी
श्रति मंडाण ॥ ३ ॥ धर्म अर्थ काम सेवत जान नन्दन तीन नन्द आनन्द
सुन्दर श्री कीया धर्म अर्थ प्रवीन ॥ ४ ॥ धर्म जा मंडाए को रहे सहू सुख

पर अवधारिये समकित को । जिनेन्द्र सुरेन्द्र अधार ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ढाल ५
मी ॥ अंजनजी के रास की देशी में ॥ तेजी महा विदेह क्षेत्र के विषे ॥ चौथो
आरे सदा रहो वरतायते ॥ विजय पुष्कलावति शोभती ॥ तहां विचरे सीम-
न्धर जिनराय ते ॥ सर्वज्ञी सर्व दर्शनी ॥ सुरेन्द्र नरेन्द्र मुनिन्द्रे पूजाय ते ॥ दे-
शना सुणन को आविया ॥ सुधर्मा स्वामी पति एकदा ते ॥ समकित की महिमा
सुणे ॥ १ ॥ शक्रेन्द्र दाहिणा दिशापति ॥ भरत क्षेत्र पर अति अनुराग ते ॥
प्रश्न पूछे नमन करी ॥ मुझ को फरमावो अहो वीतराग ते ॥ इस काल के
भरत में है धर्मीन ऐसो मह भरत ते ॥ पाले समकित निर्मली ॥ प्राणान्त
न लगावे जरा दाग ते ॥ सम ॥ २ ॥ तारे जिन विजय पुन्याते ॥ विजयापुर
शुद्ध समकिती जाणते ॥ देव दानव चला न सके ॥ न लगावे दोष जरा कद
प्राते ॥ कुदेव गुरु इच्छे नहीं ॥ शंका कांक्षा कोइ न शके आणा ते ॥ यों सुणी
हर्षे देवेन्द्रजी ॥ वन्दी स्वामी पाछा बैठ दिवाण ते ॥ सम ॥ ३ ॥ सुधर्मा सभा-

सिंहासन बैठा करत सोही विचारे सुर सभा भरी ता माँ जय जैसक
समकित श्रुत पठन रे ते श्रम रहक तीनौं परिषद श्रीकांते
प्रकीर्ण अपार ते उलह आण महत्व सब सुरों से यों करे उचार ते
सम ४ धन्य भाग्य भरत भूमी तणे तहां रहे नर जिन सिणगार ते
विजयपुर पति विजय भूपाल पाल विशुद्ध समकित पालनार ते देव दानव
नहीं छल सके शंका कंखा टाली सके न लगार ते जस परसंसा जिन
मुख तस हे जो महर नमस्कार ते सम ५ सब सुर मान किये तदा
पण एक मिथ्यात्वी सुर तस मान ते धर्मी नर नी महिमा सुणि तस मन
दुख पाये असमान ते चिन्ते मेल शुचि पति निःशंक नर क करे गुमान
ते स्वर्ग हे कोण देव सम जो चल देवे भूमिरी स्थान ते सम ६
ते क्या कथा मानवी तणी पण कहूं ते अभी नहीं माने बात ते सब हंसी
करे महेरी करी बात येही सच्चत ते सम चलित करुं विजयराय ने।

तेही सुर सुरूप नाम कहात ते   यौं अभिमान निश्चय करी । तद् दीण चल
कार भरत मैं आत ते   सन ७ । सम्यग भूत प्रतिमा धारी । क्षुलक श्रावक का
रूप बनाय हो निर्मल अल्प परिग्रही सर्व शास्त्र को जाण कहाय ते   जाणे दुष्कर
क्रिया तप करी हठ पिंजर किये तन सुकाय ते   आडम्बर अधिको करी
“जैन पण्डित” नाम प्रसिद्धी पाय ते   सन ८ आनन्दि में विचरत । बहू
नगराएँ विजयपुर आय ते   सुणी श्रावक धाए हर्षीय   वन्दे नमें धर्म स्था-
नक लाय ते   इणी संघत चलता आय नृप पिष्ट शरण नाय ते   लेइ
राज तिहं उत्तरीय   दया दान शील शुद्ध जाय ते   सन ६ लोली
नहिं लखन ताए   भिद्रष्टी से लेवे लुख सुख आहार ते   उदेशीक नित्य
पिण्ड वर्जत   ऐसा अधिक कठिण आचार ते   सदुबोध को विविध प्र
महन शास्त्रर्थ को विस्तार ते । हेतु कथा से रुचाइ   नवे रस प्रने ललकार
ते   सन १० परिषद घणी आकर्षाइ   तथा प्रभावना होवे उपकार ते

विजयराय सुण हरखिया मिलण आया सैंधवशाल नमार ते। सुखशाता पूछ
विरजीया ते भी सुख पूछे मधुर उचार ते लोक प्रसंसा करे घणी ते
निजमने देवे धिक्कार ते सम ११ इन किया व्यवहार शुद्ध उपकारी
गुणी नृप तस जाण ते रख्या तहां आग्रह करी वृद्धि करण सुकृत्य धर्म इन
ते आप भी आवे को अवसरे धर्म चरचा करे को पेछान ते कुशल
भक्ति थी जनघण मेहरा करे सेवा सन्मान ते सम १२ नरनी वीछले
सर्वई को ते अन्य की क्या कथा कहाय ते गुणानुरागी रीजे गुण लावी
छद्मस्त ते जेत जाणाय ते पंचमी ढाल अनोलक कथी श्रोता सुणो आगे
चित्त लगाय ते अद्भुत रचना रचे आसुर ते विजय निकन्दे मिथ्या कन्द तांय
ते सम १३ ❀ दोहा विजयराय निजवन्य करण देवते रचे उपाय
गुप्त रूप श्रुत केवली ढिग रहीं इन धर आय १ तिन देश शत्रुज
तणी एकान्त नृपने बताय प्रश्नोत्तर करे राजवी ते भी तैसी पूछ आय २

अपूर्व लाभ इन को लहीं आनन्दे राजान । अहो निश तस सेवा करे । सुर
नहीं दे पहचान ३ कल बहुत बीतीये । प्रतीत भूपाल । विनीत शिष्य
पद देवान । वचन को अंगीकार ४ निज वश भये जाणी रायने । राधन
हट ते वार । विरुद्ध चरण करे देवता । ते सुणो सुज्ञ नर । ५ । ❀ । ढाल
६ ठी । अठ कूट ने बाडी । यह० श्रावक कहे सुणो चित दे । राजेश्व-
रजी । जैनधर्म श्रेयकार । अहो धरणी धरजी । पण अनिलती अधवी धारी
राजेश्वरजी । अब ते मैं कहुं उच्चार । अहो धरणी धरजी ॥ १ ॥ सिद्ध अन-
न्त होया । राजे० हुवे है होसी अनन्त । अहो ध० । जीवरासी संसा-
री । राजे० कदापि नहीं घटन्त । अहो ध० ॥ २ ॥ राय कहे सु-
णभलो । रे श्रावकजी । श्रीमंत तहमेव सत्य । अहो सुणो श्रावक
जी । व्यवहार अव्यवहार राशी । सुणो श्रा० । दोय कही जिन नत
अहो सुणो ॥ ३ ॥ अव्यवहार रासी से नीकली । सुणो । व्यवहार रासी

जो आय अहो तस संख्या ए जिन कही सुणो ते कमी नहीं थाय
अहो ४ जितने जीव शिव पद लहे सुणो तितने व्यवहारी होय
अहो अव्यवहार अनन्त सदा रहे सुणो सर्वज्ञ रहे सब जोय अहो
५ भेषधारी देवल कहे राजे साधु महाव्रत के धार अहो तीन करण
तीन जोग से राजे जीव हिंसा परिहार अहो ६ को गंगा न
दी उतरे राजे तहां निश्चय जीव हणाय अहो आज्ञा दी जिन एह-
नी राजे विरुद्ध प्रत्यक्ष यह देखिये अहो ७ भूप कहे नहीं संकीरे
सुणो प्रभु मत दोय प्रकार अहो उत्सर्ग अपवाद छे सुणो उत्सर्ग
में यह निर्धार अहो ८ अपवाद को प्रायश्चित लहै सुणो कारण क
कारण उपकार अहो अटक काम चलाण कहो सुणो पण हिंसक आड-
म्बर अहो ९ जैसे पिता कहे पुत्र ने सुणो मत कर खेल कि
तेल अहो जो न खेलो जावै तुम्हारी सुणो तो एक घड़ी पर मत खेल

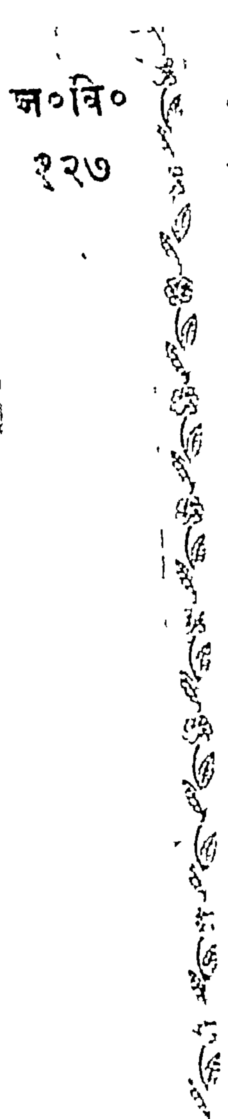
अहो १० यह हेतु जिन चित धरे सुगुणे समए पुत्र मन जाए
अहो नहीं निर्मे ते से निर्मल सुगुणे आनन्द भरयो मावन अहो
११ मेघहरी सुर किम कहे तजे लोटे हड कूद मंर अहो पाणी
के जीव असंख्य है तिज सब बरोबर कैसे थाय १२ तिण ज्यों भूधन
कहे सुणो ज्यों लख औषधी का तेल अहो मर्दन तेल शेर मण
लेवे सु० लाखही औषधी तेल अहो १३ अन्य हेतु वली यह है
सु० जो दश सत सहस्र लख अहो सब ही संख्यात सब कहे सु०
तैसे असंख्यात भव अहो १४ सुर यह श्रद्धि लवे सु० पुण्य पंच-
ती जय अहो तस अधर सब जीव ने सु० चल थिर विकरा
दर जय अहो १५ तेते हुई अवे नहीं सु० ते कैसी तरह से घ-
मर अहो नरेन्द्र कहे जिन बचन में सु० प्रकृ पवति मन अहो
१६ अली ने कहे तुझे सुणो मो विजरे कैसे आय अहो पा

रूपी करत वाणिंदि दुत सुणो । हृष्टि न आवे तास अहो १७ श्री जिने-
श्वर के बचन में सुणो शंका न नहीं कान अहो झूठे लवे किम कार-
ण सुणो जिन तजी सब हाना अहो १८ शंका तहां समयक्त रहे
नहीं सुणो कह आचारंग मझार अहो जो वर कोइ नहीं जचे
सुणो ते निज मति धार अहो १९ अजाण मोल जवेरात को
सु० मने जोहरी करे तेम अहो अलप्त जिनोक्त सब बात ने सुणो
सची श्रद्धेही तेम अहो २० ऐसे सुण सुत शरनारी ये श्रोत जन हो
छट्ठी ढल के मांय अहो श्रोत जन हो अमोल कहे धन्य जे नर श्रोत
संदे मिथ्या हरय अहो श्रोत जन हो २१ ❀ दोहा ज्यों नह
मतंगल मद झरे सूंड दंड प्रसङ्ग पंकज खूट पंथ ने लिये ऊंची करहडे
उतंग १ कुंजर नृप मद इन नन्द वीतके प्रचंड सूंड संशय पाहंथी
ऊखरों समयक्त्व कुसुम सूतुंड २ त्रिदश चलाये फिर नैं। जमारो नृप

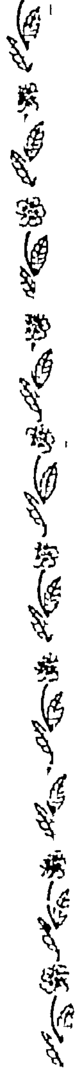
पावीन शंकित कांदित न हुवे लिये शुद्ध मत चीन ३ परन्तु प्रत्यक्ष
दाखवी जैन की विपरीत रीत चलवूं जो इण भांति तेही महारी होवे
जीत ४ निश्चय वचन सुरेन्द्र को किये विन न जाय ये द्रढता फिर
फेर धरी बोले से सुणी वर ५ ❀ ढाल ७ वी सखी पाईये भ-
जन के सजाए बीणजारा के रंग में तुम सुणीयो जी रयत हमारी कौन
जैन धर्म शुद्ध धरी टेर भेद धरी सुर कहे महु तणी धन्य तुमने जैनागम
रहस्य जाणीजी जावूं तुम बुद्धि की बलिहारी कौन १ जिन वचन सत्य
में श्रद्धा शुभ संशय ज्ञान सब मरदनजी अपूर्व बुद्धि जमारी कौ० २
जैन मत सत्य जग मांही अन्य नहीं इण सहीजी एण कौन समर्थ पाल-
णारी कौ० ३ राय कहे चौसंघ आवे यथा शक्ति किया सब साधे जी
देवे साधुजी शुद्ध आचारी कौ० ४ नहं कर्त दे किया नह पाले वि-
नाइ प्रमाणे चलेजी अनन्त में न कोइ इसारी कौन ५ तव सुर

अश्रई धर बोले तुम भूलो हो भव भोलेजी । सब रहु काट भन्डारी
कौ० ६ वह आडम्बर से रजी मल लइ करे देही तजीजी । सब कि-
रिया जाए ठगारी कौ० ७ रएजी कहे अरे भूंडा ऐसा वचन न
बोलो कूडजी इन से होवे अनन्त संसारी कौ० ८ क्यों मुनि करे काट
किरिया जो इन गुण को दरियाजी । लगी सुरत मुक्ति से एकतारी कौ०
९ आहार वस्त्र पात्र शुद्ध लेवे निर्दोष स्थानक में रहवेजी निकले छती
ऋद्धि छिटकारी कौ० १० गुरु कहे लोक देखन्न छोड पण अन्तर न
नहीं भेडजी गुरु करे अनर्थ भारी । कौ० ११ जो सार तज नल
खावे देही लाल कुन्दसी बनावेजी वे कैसे होवे ब्रह्मचारी कौ० १२
स्थविरों को भाजे नारियों को धर्म सुणावेजी यह वृत लो हिये विचारी
कौ० १३ भूंडा सुण ऐसी सुरवाणी लिये धूतारो तस पैछाणीजी पण
तोडे न जेष्ठ नारंदारी कौ० १४ कहे दृष्टि ऐसा नृत बोले कौन जग

मैं दुनियां तोलेजी छती त्यागी व्रत करे इच्छारी जौ० १५ संयम नित्य
न तन पोषे केइ तपस्या कर तन शोषेजी इनी धनी वैरागी चाकरी
जौ० १६ खोटी दृष्टि कर नहीं देखे नारी नग्न बेनकर लेखेजी सोह
साधुमति सच ब्रह्मचारी जौ० १७ महासतीयां केई गुणवन्ती सूत्रार्थ
गुरु मुख सीखंती जी तारे आप तिरे पर तारी जौ० १८ जो श्रुत के
ज्ञान गुणवन्ती ते केइक संयम आचारन्ती जी केइ देवे सती सन्त ने सतारी
जौ० २० इन रे गुण वृद्धि पावे यों जाण सुनि पढ़वे सुणावे जी
पापी पाप धरे चित्त न्यारी जौ० २१ देव कहे मैं भी संयम पालां
वह अभ्यन्तर भेद निहालो जी तेहने श्रावक भेष लीयो धारी जौ० २२
मैं कदापि न बोलूं झूठो नहीं साधु पर मैं रूठो जी जैसी देवी तैसी पुजारी
जौ० २३ जो भेल हे रे जाए भेल भेदन सके छिपाये जी जो
राखे शुद्ध व्यवहारी जौ० २४ प्रश्न परिदा कीजे फिर श्रोलंभे सुजाने



दीजेजी मैं कर बहु विनती जी० २५ कोइ आने दे सहु तंइ
मैं देखूं भेद बताइजी भूपत ते वर न थाई जी० २६ कुचाल उठ नेहले
अर नहीं वैम जरा मन लायजी ढल सतमी आलेल उचारी जी०
२७ ॥ ❀ ॥ दुहा आगर अलबेरो इन से नृपति न दिल चटपटी
लगी चित में हलूं किस विध शल्य १ तासमें तहीं विचार आचर्य
कीनी विख्यात देव शक्ति ता अवसर तहीं को लार बाए र २ विहार
करन्ता आय के उतरे वन के मांय तासंयम इन ध्यान में निर्मल होभाय ३
सुणी हर्ष विजयराजजी कहे श्रावक ने आय चलो वंदन ऋषिवर श्रावक कहे
तेण ताय ४ विन परिहा नहीं वंदीये राय कहे तज वैन प्रसिद्ध यह
ऋषिवर चले जिनेश्वर वैन ५ ॥ ❀ ॥ ढाल दशमी चाल नट रहे
रह० जरा मत चलरे मेरी जान जरा मत चलरे जैन जती रहे शुद्ध लेन
श्री जिन मत मैं दृढ रहणा जरा देर वऊगणी सेन स्वजाइ सब



परिवार लां लीहइ । श्रावकजी भी संग थइ आये सब तां नमारे ठेह
अभिमान छोर घारे जय ॥ १ ॥ सब मुनिवरों के तांइ नृप दि सर्व छहइ
ते श्रावक करड रहइ बैठ सब गण घेर थावे । जमां मुनि वाणी सुणावे
जय ॥ २ ॥ अचर्ज सछोह पावे तत्त्व नहव दर्शावे । ते सुनम करी
पामावे श्रोत तल्लीन होवे सुणे के । आत हित लेवैं तसे सुणे के जय
॥ ३ ॥ सद्गु किरिय खूब दृढइ उत्सर्ग मारग थापइ न आपव्द जप
लाइ श्रोत सुण आश्चर्य पाय । कहे धन्य जय मुनिराया ॥ जय ॥ ४ ॥
जो खड्ग धार पर चले सूक्ष्म ऐसा दोष टले । सो टोटे क्यों करणी में चले
भक्ति फल अति ही पावन्य दन महत खूब दृढइ ॥ जय ॥ ५ ॥ श्रावक
की किरिय करइ जो भेष धारी पालइ । ये उत्कृष्ट श्रावक कहइ सुणी
सब धन्य २ तस कहत भेषधारी भूमी देखी रहत जय ॥ ६ ॥ फिर सम्य-
क्त्व के सासइ जो भ्रान्त चित में पड़इ केइ रागीयों भी सुणइ इत्यादि

भेष २ भेद सुना कर नृप दिहों हरि गरे भर जय ७ कोइ समरत्थ
व्रत आदरीय कोइ खन्ड नियम त्याग करीय यों हुव उपकार बहु परीय
सब विधि वंदी मुनि तांइ परिषद निज स्थान सिधाइ जय ८ विजय
राय मुनि पग वन्दे कर जोरी वंद आनन्दे आज संचित पाप निकन्दे आप
सम सन्त दर्श पाय अपूर्व बोध सुनाय जय ९ पाप शमक वन्दे
नहीं राज तस ढीठ जनाइ । मुनि पास कछु न बोलाइ दोनों मिल
चले पुर माहीं नृप मुनिवर को सराहइ जय १० तब दांभिक गुरु कहे
राय तुम हरि रंगे मोहराय यह साधु बोलाएं मैं डराय शुद्ध हृदय रे
छिटकाइ विचारे देशन फरमाइ जय ११ महारी थारी खुश नंदी की-
नी किया उत्कृष्ट कह दीनी सुनी परिषद सभही भीनी पाप पले तो बले
हरे वचन वीर्य मात्र नहीं तरे जय १२ यह साधु है बहु बोल
म्हे नगर सहित पोल नावे तुन सरीखा मोल पाप में मानुन जार रइ

मुझे ते मान भूत दाखइ । जा० १३ तुम साहे परीक्षा करसूं जो शुद्ध
देखूं आन्दासूं तो चरण में माथो धारसूं देखते हैं सरीखे मणि और कांच
मालुम होवे तबे जब आंच जा० १४ राय कहे इतने मत ताणें जो
मैं हैं तिन गुण इनको दीया है तैसा ही व्याख्यान बोली से भेद लहे
लीजे विशेष परीक्षा क्या कीजे जा० १५ श्रावक कहे अभी
सुनाओ गुरु रते इहां चल आओ फिर आचार विचार बताओ तो
मालुम सही पड़ जासी मन्ने इति बात नेरी वासी जा० १६ वैरी
वातें सुर बनइ आये से उपाश्रय मांही सूरि निज मन्दिर रहे तांई
आगे चरित्र दीखवे लाइ ढल कहु अनेल रचे लाइ जा० १७ दो-
हा जगिनी जान जदा लाइ सुर भूपत ढिग आय कहे चलो अब बा-
ग देखा किरिया मुनिराय १ राय कहे क्या देखिये दीखे व्याख्यान
मांय छिद्र पेखते सहू के पतक आतम मराय २ देव कहे ये ही जाल

मैं साधु गृही पासा मतलब साधे आपने को जाण नहीं पार ॥ ३ ॥ पी-
दा करतां गुरु भए जो कभी लागे पाए तो ते मुझ ने लागसी सो जते
चले आप ॥ ४ ॥ यों आग्रह अति सुर करी, वन में लाये तार गुरु रही
देखडते मार दिगुनि आन्तर ॥ ५ ॥ ढाल ६ नी सुए चन्दजी यह
यह० सुणो मुनिवर जी आरजी करूं शुद्ध पाले तुम आचार ने तुम गुण-
वन्त जी छाजे नहीं है छोड़े शील व्यभिचार ने ठेर एक मुनिवर बैठ
अति नेठ सोकर रहे वैश्या संग किड आमद लवे मेव पेड सगे वाए
गया आइनी जेड सुणो ॥ १ ॥ यों देख राय आश्चर्य पायो मन में रोश
आणीको लायो ये जुलम कियो इण लागयो हूं देखुं इण ने आभी
समझायो सु० ॥ २ ॥ भूपत साधु पासे आयो पण साधु जरा नहीं शरमायो
ते भी राय तस बोलायो ये अकृत्य कियो तुम लागयो सु० ॥ ३ ॥ यह
काज आपने अघट तो धर्म नाम ऐसे हट तो देखी मुझ कालजो फट तो

त्यागो यह कुबुद्धि भूत ते सुणो ॥ ४ ॥ कहो सुरेन्द्र को आवास कहां विष्ट
खन को वास यों संगम ने कर्म विनास । क्यों करो उत्तम काया को नास
सुणो ॥ ५ ॥ तुम देखते हो इनकी गुणकी भारियां कैसे इनकी हो गुण ने
हारियां कैसे प्रश्न आवे कांचे कारियां थांके हाथ लागी रतन न्यारियां । सु०
॥ ६ ॥ गज तज कोण खापर बैठे नादी तज ऊकरडे लेटे सिंहासन तज बैठे
हेटे त्यो तुम सत्य कर्म ते रहो छेटे सुणो ॥ ७ ॥ अमृत ढोली विष क्यों
पीवे क्यों सुखमल तज कम्बल सींवे इन कर्मों भोगवतो हाणी होवे जो
असंयम की तरह जीवे सुणो ॥ ८ ॥ अनन्त संसार भ्रमण करसो नरक
निगोद में पचन्तासो फिर सम्यक्त्व दीपक नहीं करसो जो ऐसा कर्म से नहीं
डरसो सुणो ॥ ९ ॥ अति दुश्कील नरकुल पावो अति दुक्कर जैन कुलो
आवो तो श्रावक पणो छे चावो अति २ दुर्लभ राह थावो सुणो ॥ १० ॥
ज्यों कांगल ने चिन्तामणि पड़ई तिण कंकर जाणी नाखई तैसे तुम तणी यह

चतुराइ होवे सुगुण संभलो अरे भाइ सुणो ११ धिक्कार तुमारी बुद्धि
तांइ धिक्कार दांभिक भेष सजाइ कुकृत्य करत लजो नहीं धिक २ तुम
जनक जनेता जाइ सुणो १२ जरा पण तुम सरमाया नहीं नर नार
ने लजाया पर भव दुःख से नहीं डराया सुणो १३ निकलङ्क धर्म जि-
नेश्वर को सो दीपावे मार्ग मुनिवर को लजावे तस जननी जैसे नर को
डुबावे दोनों भव दुष्टाचार को सुणो १४ अबतो जरा चित शंकाओ यह
यह व्यभिचार को छिटकाओ देव गुरु की शरम लावो तो पाओ दोनों भव
सुख पाओ सुणो १५ म्हारे थांरे गुरु शिष्य की सगाइ या लिये हित
शिक्षा सुणाइ कडु औषधी ज्यों सुखदाइ जो माने तो सार निकले कांइ
सु० १६ माते गुरुजी को हूं आनंदूं सहू करी तुम्हारा दास रहूं
अहीर भाग हूं मानसुं कहे अमोल आदरीये सुख पामुं सुणो
१७ ❀ दोहा वैश्या संगी मुनि कहे राय न बोल कुबोल केन २

को तुम पलसे गुरु देव यें पेल ॥ १ ॥ श्याल रूपमें है म्हारे कराए न
जाणूं काट वह मन्तर एक से न रखुं पर दपट ॥ २ ॥ परमेव को डर
मुझ भ्रीति सेवूं न नर लाए । ऐसे जर भ्राने बढी बृद्ध मुनि भ्राचार
॥ ३ ॥ सुए चित चञ्चल नहीं पति श्रावक का इयों तन चले देखे
भ्राने वली कैसे मुनि गुण इन ॥ ४ ॥ बूढ छांर में छिपत से देखे
भ्रागे जर भ्रघटित पेली क्रूर को एभ्रर्य भ्रति चित पर ॥ ५ ॥ ❀

ढल १० वी चेतनजी, वराणे नत जावोजी यह० राजेश्वर द्रढ
समवक्त के धारीजी देवी देवमय नडियरी टेर एक साहुजी जूव
हेलेरे, चौक नकी दुकी डव में लेरे हार जीत में धन हाणे देले । राजे०
१ एक दुनि भ्रानिस रोहेरे हाणा मशाल गुल सवदेरे करे परसंसा की
बन्हे राजे० २ एक मंदिर सरीसी ले भ्रायरे सभ्रारोगी तरही गुर-
छायारे नचे गवे चंग बजाय राजे० २ एक जति रहा वैश्य रन्डो

ज०वि०
१३५

क्रिडा बहु विध करइरे आप हँसे तस हंसाइ राजे० ४ एक पशु
जलचर जीव मारेरे तिहां एशके ठेले शीकारेरे जीव तडफडे दया नहीं
धरे राजे० ५ कितक चोरी कर धन लायारे करे पांती बैठ एक ठा-
मरे लेने देने का झगड़ा लागा रा० ६ कोइ नारी रूपवन्त आइरे
वस्त्र भूषण तन सजइरे तस अंचिल ठेले बैठइ राजे० ७ यों एकेक
कुव्यश्ये रातारे कोइ सेवे छे मेलइ मातारे देखे विजय आश्चर्य आते राता
रा० ८ आहो सब मिलया भृष्टचारीरे कुमति सु बिगाड़े बुद्धि सारीरे कैसी
टोली मेरी यह आरी रा० ९ देख्या आचर्ज हटि न आयारे ते ते
गया दीसे कोइ ठायारे तेहथी निडर हो फन्द न्हाया राजे० १० प्रते
आचर्ज भाणी वेरासुंरे दंड देवा के सीधा करसूंरे नहीं तो ए आभी कोइने
फकासु राजे० ११ जिन रे जिनाणी नहीं लजेरे इनकी सुध्दे आलज
काजेरे यों विचार बहुल करीज रा० १२ नाणीवा किहां नहीं पायारे

तब नार मैं चलाय रयो नन नहे स्रुति तुम्हारो राजे० १३ तब
श्रवक कहे परन्तेरो ने कहो सो देख्यो उनेरो मुभ बचने प्रतीत जर
लते रा० १४ पर कहे आचार्य जो नेटरो सो ते कहीं न करे कर
होटरो ये ते निलय कुन्ति दलय नेट रा० १५ सें बेलत नेहल
पर आयरो तिहं आचार्य निकलत देखरो दैछत्य नकश के नंत
राजे० १६ सो ते अन्तेवर में रे आवो नक पारी ने रथ लेजवेरे
देवी पर स्रुति शरन्ते रा० १७ पर नैन लूटि तब रहेरे कौन
नेट में पत्थर नहावेरे नि पनि कुर कर्न पाहे राजे० १८ अब कैन
को उपर पूकरो बलद हुत लूंटतरे नव होट निलय कैरे नरू राजे०
१९ यह ते ठा की टेरी देवइरे नहीं जैन तुने निश्चय थइरे करूं
उपदजें कुनर बिरलइ रा० २० ढल दरशी आनेतक नहेरे देवरज
को चेर चलवेरे धन्य विजय दक्षे द्रढ रहे राजे० २१ ❀ दोहा

मेरी सुन कहे रायजी देख्या मुनि चरित्र जैन जती ढोंगी सबी तेरा से हम
पवित्र १ तुम सदा रहो घर विषे किम जाणो यह बात मैं बहु रह्यो
साधु विषे जाणु सकल अवदात २ मैं तो निश्चय नहीं धरूं पर नहीं तुम
मन परतीत आज तो देखी आँख से जैन जती की रीत ३ म्हारे बचने
आसता धारो अब महाराय ! छोडो पाखण्ड जैनमत जो आतम सुख पाय
४ नहीं कोई इस काल में साधु जगत मंझार धर्म नाम से जग ठगे
येही रूप सरव धार ५ ❀ ढाल ११ मी ऊँदवारे मेरी जान यह०
सत्य सत्य सत्य जैनधर्म है शंका मुझे न लगार यों पाखण्ड देख्यो जगत्
का मुझसे हुं न कोइ बार सत्य १ अन्धकार न व्यापै रवि थकी चन्द्र
सेन पडे ताप अमृत जेहर होवे नहीं तैसे जिनजी आलाप सत्य २
चारों तीर्थ इण कल में पाले शुद्ध जैनधर्म करे हाटदे शिवसुख वरे क
येही परम धर्म सत्य ३ सह मेल लाणी सर्वज्ञ की सत्य तीनोंही तत्व

श्रद्धे परतीत चित रूचे आराधू मैं निज सत्व ॥ सत्य ॥ ४ ॥ कदा एक ही
खोटो देखे सब खोटा जाणे नाय खोटा सो तो खोटा ही है खरा खोटा
नहीं थाय ॥ सत्य ॥ ५ ॥ एक एक लूंटके नामे दूजी एक नहीं जाय तो सात
सब बन्ध हुवे जाकूढी नाश थाय ॥ सत्य ॥ ६ ॥ परम नाथ वीतराग को
धार पालाहार यह टोली निली पाहुंडी की दूजा नहीं इसरार ॥ सत्य ॥
७ ॥ नहमुनि धार भरत में शुद्ध पाले आचार तैसेही सतीयां धार उनको
म्हारो नमस्कार ॥ सत्य ॥ ८ ॥ अवधि ज्ञान देखे देवता तृप्ति निश्चर परिणाम
पाखण्ड पेली हठ धार हुवा देव विस्मय गये पाछे ॥ सत्य ॥ ९ ॥ प्रकट
कहे सुणे राजी सारी अवगुण न जोय शे तो पाप हो दृष्टि रागमें
शुद्ध नीति कैसी होय ॥ सत्य ॥ १० ॥ जैसे काली कानन्द हो न देखे नारी
अवगुण तिम जिन मत राचिया विरासी नीति जो निपुण ॥ सत्य ॥ ११ ॥
डाढी धर्म न रही सके सुपड़ी से ग्रह भट अन्तर नेत्र खोली जोवे

छोड़े यह खटपट सत्य १२ तत्त्व होकर निर्णय करो छोड़ो असत्य रे
मत इत्यादि वचन कहे गए जाये रव ने सत सत्य १३ स्वर्ग-
हीलए सुए करी राय कोर्ति होय जगायो निन्हव देह ने मेरी निश्च-
ति सोय सत्य १४ वे पाव होइ वदे तद बोल बिचारी ने बोल निन्दे
नहार देव गुरु मणी जगायो वचन से तोल सत्य १५ निर्णय कर नि-
श्चय तम हो ग्रहो जैन धर्म मेय नहीं निश्चय इण साहिबो अन्य धर्म बिशे-
छोर सत्य १६ कौन समर्थ त्रिलोक में करे मिथ्या जिन वैण नहीं तुं
अवक अछो नहीं मनु शरीरी केए सत्य १७ रे निश्चय तूं कद ग्रही
दांभिक भेख धार अरे ठाव मेल मणी पण नठ नहुंना नर सत्य
१८ पखवाड़ी संग बोलणो मुभ जग जुगते नाय शीघ्र जा यह स्थानक
तजी जो कुशल तूं चहाय सत्य १९ कोप वचन सुणी राय का सुर
कम्पो चित मभार तत्क्षीण उठ चलते हुवे नहीं कियो तूंकार सत्य

२० राजी आय निज महल में धारत चित चमत्कार (धूर्त सहु ने आव-
क सौ खटके चित मझार सत्य २१ खेद शर्त्य यह आवे जांच आत-
रैं आय अद्भु दिन खले चहुं ते सत्य श्री जिनवर सत्य २२ रौं भ-
वे निर्मल भवन धन्य विजय भूपाल प्रत्यक्ष विपरीत जो हठ रहा आले-
ल एक दश ढाल सत्य २३ दोहा चित में चिन्ते आतुर ते निष्फल
हुआ सौ जान पापर का सहू दारुण्य तेह से स्थिर रहा मन १ आव
धीरहुं हरषे महाली शंकट पूर जोडुं फिर हठ किन रह कुमति रे चिन्ती
रौं सुर २ सब तुगे सूत निशी बीते तब देव स्वप्न मझार राय सची-
व समान को कहै दिव्य रूप निज धर ३ शीघ्र समझ होवे सहू टले
जो इच्छे हो सुख तो धर्म सत्य मानजो तुम पुर पर आवे महा दुःख
४ नगर कुमार कीर्ति हुआ कोई विहन आपर नते पूछे नग नृपती
ते बरसी बेनचर ५ ❀ ढाल १२ मी आदक श्रीवीरन चनान

वसी जी यह छन्द विजय पराजै द्रढ समकित धारी जी टेर भ्रा-
श्रई पाप सब भजिजै बसे देव स्थान आपन में वेखती जी करिये
सुद्ध के जतन छन्द १ धरे पाप शुभ लिखे जी निर्मल एक
भाव स्थान ने निरखै थकी से सहू को वर सुधार छन्द २
नृपादि सुणि रौं सहू जी भाव हूं तु हित का भयंकर नन देव को
आभी उत्सर्ग होरी यह ठाम छन्द ३ तेह निर्वाण कारणे जी एकही
रीहे ध्यान राज प्रजा सहू मिल करी पूजे देवल रे नारण छन्द
४ स्थान भ्रने निर्मल जी मिली एकही सहू वत भर पाप सब
चिर तें जी निश्चय सब नर भरते छन्द ५ सवेत सनन्त प्रजा मिली
जी उत्तम पूजा ते सजय पूजा करी नारण की जी अति आडम्बर
भाव छन्द ६ प्राणी भजीं को सभीजी कोप निरपराजे देव संतु-
ष्टी सुद्ध सर्व भजिजे यह स्वीकारी हार सेव छन्द ७ विजय भूप श्री

नहीं जो रूप निमित्तक बात होणहार सो होवसी जो जिनजी देख्यो
सदात छन्द ८ शुभ अशुभ कर्म उपार्जिया ते भोगयां ही छूटसी होय
दीपक सुख ने करणे कोन सूर्वे समकित विचार छन्द ९ देव पाप
कर्म पास में ते [illegible] ने कैसे छोडाय इम निश्चय अवलम्बिने निश्चिन्त
रहे विचार छन्द १० रची सनन्त शहजन नेली करे नृप ने
नी अरदास पधारो नाम पूजवा ज्यों उपद्रव होवे नाश छ० ११
राय कहै कर्मोदय नहीं देव टलाण समर्थ समकित रत्न [illegible] न कहूं
ने यह अनर्थ छ० १२ दुःख सुख देव न दे सकेजी कर्म संचित फल
पाय यह अनुक्ष शुक्र की ते येहीज [illegible] कान आय छन्द १३ तब इ
छनी हुइ तुम कैसी देवो सुभ सह लीव [illegible] संभलो आणो ज्यों आगे
न पावे ठीक छन्द १४ इत्यादि सुन सहु हुआ हुवजी निज २ स्थाने
जाय तत्क्षीण राय भवन में बहुत पाणी घर प्रकट थाय छन्द १५

अरुण नेत्र अग्नि सम जी भस्म सम शरीर लम्ब भयंकर विष भर्यो जी
उभर जीभे भरे नीर । छन्द । १६ । फण विस्तारी फूंकरत जी विहि जंगल
मझार छारी पछाडी फण पूंछने ते सदन सर्व थरथार छन्द १७
भय भ्रान्त हुइ अन्ते उरीजी दस दिश भाग जाय कोलाहल मच्यो महलमें
ते राजा सुणीयो ताय । छन्द १८ आकर देख्या महलमें जी लग रही
दौड दौड भुयंग भयंकर अतिजी देखे ही भागे खोड छन्द । १९
त्याग करी ते भवन को सब अन्यस्थाने जाय जीव की साथे कर्म ज्यों ते
सर्व लारे धाय छन्द । २० जावे तहां साथ आवेजी जाणीये तब देव चरित्र
निश्चिन्त बैठा एक स्थानक में तो नहीं गमावुं समकित । छन्द । २१ । सज्जन
आदि छवरावे पण राय न देवे ध्यान होणहार सो होवसी यों चिन्ते निर्मल
ज्ञान छन्द २२ उत्तरार्द्ध यह खण्ड की ढाल द्वादश अमोल कहंत । ऐसा
द्रढ श्रद्धा धारी जी क्यों नहीं भेद लहंत २३ ❀ दोहा दान शील

समकित दिल सज्जन बहु भांत । सुइ ता अवसर लही । नीकरो अदत
१ पूज करे फणीन्द्र की ज्यों होवे उपसर्ग दूर करो ने देखा नहीं
जाने केरा हजूर २ कमठ न छोड़ो तू बिरती तब सहु अति आकुल र
हि कहे पिण हठ यह अवसर औलखे नर ३ समकित सज्जन कीरे
कीजे फंडो वेरन निज सज्जन तारो हवे नर कोई नर ४ नह
अनर्थ होवे जेह से ते तजो स्वामी नर संसारथे सदा करो नर पूजन
५ ❀ ढाल १३ मी । जिनेश्वर म्हारी जात जी यह राजेश्वर सा-
हिब धणी हो के धन्य जीत उपसर्ग भरी हो टेर । सहीत सज्जन आदि
सहु मिली हो समझाय बहु भांत नहीं मानी राजिन्द्रजी हो होरहेर से
शत राजे १ राज का राजन नाम में जी कहे सुर कोटि हेय हं
मैं हटील भारी क्यों अभिमान के धर लेय राजे भूलो समकित भा-
वे तुम्हरे नेश्चला देव नाय सब माने तूं माने नहीं छोड़ो बुद्धि ना के

मंत्र राजे ३ जाणे न परकाश म्हारो छूं तूठो सुरतरु ने सरन रूठो
कली कल सरीखो हरूं दीणो हूं में अभिमान राजे ४ प्रत्यक्ष परचो
म्हारो तूं देख रहो है तेण तोही पण माने नहीं नहीं सुणे सज्जन हित
वेण राजे ५ जो हित वंछे तहारो तो छोड जैन क्रिया सब नहीं तो
दुःखीयो पूरो होसी मन वचन नीति बन सुद्ध राजे ६ बेर वूं तुम्ह करण
करी शीघ्र प्रते करी मान रथ विधि सहू साथ ले जइ पूजे म्हारो
स्थान राजे ७ तो सर्व सुख तुम्ह आपूंगा नहीं तो करूंगा सर्व संहार
निश्चय वचन या म्हेरा लीजे पक्का हृदय में धार राजे ८ यों कहकर
अदीठ थयो महीपति तब जागृत थया स्वप्न चिंतवन निश्चय कियो
मिथ्यात्वी सुर तुम्हने डिगाय राजे ९ जे इच्छो पूजा आपणी अन्य पास
करी बलत्कार ते रूठो किस्यो करी सके तूठो करे किस्यो उपकार राजे
१० नाश करे ऋद्धि तणो ते तो प्रभुजी कहीं नश्वर नाश करी सके

म्हेरे ये रत्न दुर्लभ अत्यन्त । राजे ॥ ११ ॥ अनन्त पुराये समकित मली । नहीं छोवूं क्षणिक सुख काज ॥ इम निश्चय कर स्थिर रह्या । नहीं पूजा फणीन्द्र देवराज । रा० ॥ १२ ॥ दिवसोदय राय भवन में एक दीर्घ सर्प प्रगटाय । श्याम शरीर रक्त नेण थी । सर्व जनने भय उपजाय । रा० ॥ १३ ॥ जेष्ठ पुत्र को डंकीयो पड्यो मुरछाइ तत्काल । स्वजन परिजन मिल करी । करे रुदन आक्रन्द असराल । राजे ॥ १४ ॥ कर धरी कहे राय को । अब शीघ्र चलो महाराय ॥ पूजा करो नाग मूर्ती यह तो अनर्थ मोटो थाय । रा० ॥ १५ ॥ राय न माने मोहने तब पटराणी ने दियो डंक ॥ ते भी पडी मुरछाय के । रायजी तो बैठा निशंक । रा० ॥ १६ ॥ अति स्वजने सहु मिली । भूप कान धरे नहीं बात । तब डंक्यो विचला कुमार ने जी । तेही पड्यो मुरछात ॥ रा० ॥ १७ ॥ तीनों राणी तीनों पुत्र ने इम करड्यो नाग ककर । छेउं पड्या मुरछाय ने । कुटुम्ब कोपित हुये तेश पूर । रा० ॥ १८ ॥ धिक्कारण लग्या रायने । राय कहे समता रखो मन ॥

कर्मोदय प्रगट हुआ नहीं चाले एक जतन ॥ रा० १९ ॥ शोकातुर सर्व जन हुआ करे छडंको विविध उपचार ॥ औषध मंत्र मणि आदि सहू पण असर न को लगार ॥ रा० २० ॥ शोकातुर सर्व हो कहे अब करनो किस्यो इलाज देव कोप्यो राय ऊपरे करवा लाग्यो महा अकाज ॥ राजे ॥ २१ ॥ पुनः सचीव समन्त मिली कहे प्रभु ने मानो राय, तुम रागी जिनवेणन ॥ तो दया न घट किम आय ॥ रा० २२ ॥ मनुष्य मरे छे धर्मने, डूबे आपको वंश यह पातक किण सिर चडे ? धर हाणि ने जन हंस ॥ रा० २३ ॥ शास्त्र में जिनजी कहा जी छे छन्दी आगार कारण उपने कुदेव ने करे महा श्रावक नमस्कार ॥ रा० २४ ॥ इत्यादि समज वे घणा पण राय न माने रंच ॥ ढाल तेरे अमोलक कहे ॥ राय जगावे देव परपंच ॥ राजे ॥ २५ ॥ ❀ ॥ दोहा ॥ ते अवसर तहां आवीयो सकल गारुडी सिरदार साज सज्ये तिण सहू विधी देखत चित दे ठार ॥ १ ॥ गेरुवा वस्त्र तन सज्ये जटा में बांध त्रिशूल ॥ तिलक

मल नल कंठ में बोले विश्व सु बोल २ कवड कन्द है नाग की फुंनी
नहुली बजर भुजंग ते तरु तन परे प्रत्यक्ष परिचय देखय ३ दश देख
लकडी को संतोषण सब नन यह तो निश्चय टल रे आपण सर्व विहन
४ ❀ ढाल १४ मी बिणजारे यह० सुणो श्रोता हो सज्जन सुगु
णी हेर सलर किये लकडी ताणो सुणो श्रोता हो सुणो श्रोता हो आ
ज्ञा महभाग तुम दीठ हमने आनन्द थयो सुणो १ सुणो छल करी इसकर
कानन देखवीये सुणो सुणो उत्तर छोडुं को जेहा हमरी चिन्त नाना-
रीये सुणो २ सुणो करस्यां खुशी तुम तरय नांग सेरो देस्यां सही सु-
णो सुणो उपकार हेरी आकार जीवित लगे भूलस्यां नहीं सुणो ३
सुणो भइ हो लकडी छोडुं ने देख कहे यह बिन विघ्न अति सुणो भइ
हो सुणो भइ हो अरहद से दिखे यह तो भी रहतुं तुम शक्ति सुणो
४ सुणो मैं जाणुं अनेक उपचार निर्विष निश्चय करस्यूं सही सुणो

सुणो करणहार करतार करनार सब देखो यही सुणो ५ रौं बहू
नतें बनर कुंवरी कन्द बोलवइ सुणो सुणो नहवइ पुष्टे सजार
पइ सन हैंसवइ सुणो ६ सुणो श्रदत छद्द तत तन शर २ ते छू-
जए लगी सुणो सुणो नगदेव श्रये श्रंग नरुडी कहे देखो जनी
सुणो ७ सुणो तस गरुडी किये सत्कार भले पहेरी कुल की
नाग रायरे नग रायरे होवे हम पर संतुष्ट छेज को वेष लेवे हरी
नग रायरे ८ सुणो भइ हे कंन्य सुवर्णी सुर केर कोपठुं होइ
घणो सुणो सुणो यह तर श्रभेनी श्रत्यन्त श्रानन श्रते कीये
हन ताणे गरुडी हे ८ गरुडी हे मिथ्याती कुदेव केर परभ जा
नहीं केहनी गरु० तेहथी वइ चमत्कार मगरी हतं तेहनी न०
६ गरुडी हे तूं जा थरे हेर इण दुष्टो पद पहिरी नरु० नरु०
नहीं मनुं थती केण रीस हुरी छे नहेी ग० १० सुणो भइ हे

गारुडी करी नमस्कार ' अत्यन्त नरमी अरजी करे '' सुणो ' नाग रायजी ।
तुम सब मानवी देव ' मोटा सोही क्षमा धरे '' नाग० । ११ '' नाग ' जो मैं
गुन्हेगार आप ' तो अपराध भूले सही , नाग० । जेष्ठ तणी यह है रीत तेही
आप धारो अबी । ना० । १२ । नाग० । फरमावो आप हुकम । सोही करसुं
इण वक्त ' नाग० ' हिवे तजो सब रोग ' नमस्कार सो इम भने ' सुणो १३
गारु० । सुमने नम्यो सब जगत् यह शुक्क काष्ट ज्यों नमे नहीं । गारु० ।
गारु० । हिवइ जो करे नमस्कार ' तो सब दुःख हरुं सही गारु० १४
सुणो रायरे गारुडी कहे खुश होय नमन करो नागरायने । सुणो रायरे
। सुणो० । थोडे हुइ सब खेर ' अबी दुःख जावे विरलायने ' सुणो रा० ।
१५ । गारुडी हो । नृप कहे सुण मुझ वात उठ जा तूं थारे घरे गारु०
गारु० '' जो ऐसा अभिमानी देव बिना काम अनर्थ करे गारु० १६
गारु० । ऐही कुदेव लक्षण ' तास वंदन मैं नहीं करुं नहीं इण लोक की आस

निरागी पद सिर धरूं गुरु० १७ गुरु० जे जाणे तत्व त्रयतत्व ते
ऊँच न कद रहे गु० । गु० । दरश्यो मुज मन भेद जद कदाच पर रहे
गु० १८ सुणो राहे गुरुडी कहे विस्मय होय हो यह हट नहीं
कम को सुणो सुणो अवसर ओलखो आप नाश न करो सुखदम को
सुणो रा० १८ । सुणो रा० मत करो काय से मनन मन से करोते ते
जाणे सुणो सुणो हूं समजावूंगा तुम दुःख खोसी दूर आणे
सुणो रा० । १९ सुणो रा० मैं भी जासूं जैन धर्म संगति करी सहु तणी
सुणो सुणो छे छंडी आगार सहित सम्यक्त्व गुरु भणी सु० २०
सु० अलप दोष महा लाभ प्रत्यक्ष ते विचारीये सुणो रहे वंश जगे सु
नाम छे मनुष्य जमारीये सुणो । २१ सुणो संसारी दोय प्रीति तो
हारे लेखो कीसयो सुणो अति ताणाय टूट जाय क्या कहूं ज्यादा शाण
दीसयो २२ स्याद्वाद जिनमत एकान्त मिथ्यामति सुणो सुणो भाइ

हो अमोल यह चउदमी ढाल देव रयें भाखी अति सुणो २३
❀ दोहा इत्यादि जिनन्त न्याय दे राजा ने समझाय पाया द्रढ
रा ते बात ने जग ही श्रद्धे न्याय १ लडी संत हो कहे खेद अर्थ
इन हटीलो नृप तुम सारीखो नर नहीं देख आपार २ यही पद
समयक्त का किया दया का नाश सकुटुम्ब पर मात नहीं तो या आगे
पा त्रास ३ हिया की छाजे नहीं परखी न माने कोय ऐसा नर से दूर
भली क्यों मानूं तोय ४ ईर नृप रयें बचन सुण ओ है न लगे लगार
जिनन्त रहस्य समजावा को लडी ते उचार ५ ❀ ढाल १५ मी
हो पियु टलिया रहा० अहो सुणो लडी बोले जिन मारगनी रहस्य ता
नृप जाणजो जिन धर्म मानी न मानी रीत न्याइ करेरे लो अहो सुणो
लडी थें कही सची बात जो चहात ऐसो कायर नर जिन नत परेरे लो
१ अहो तुम्हारे न बोल यह बोल जो तोल जो नर को देव के बराए

से कहडीये रे लो अहो धर्म को जे जाणे सत्य जो तो किम आलस्य में
निज तन नडीये रे २ अहो जो कही जवे प्राण जो प्राण न खराडूं हूं
कही श्री वीतरागनी रे लो अहो देवेन्द्र देव लिए नम जो तो किम वन्दे
प्रतिम हिवे हीन नगनी रे लो ३ अहो अतिचार अल्प ते बहुत जो
समल करीने अल्प डूबवे आपनी रे लो अहो दया निजतननी होय जो
तेयज परनी दया श्रेय मत थापनी रे लो ४ अहो ज्यों कंटक खुचे अं
गम जो तिम अन्य मत पेठो अति दुःखदाइ हो लो अहं जाणी लगवे
अतिचार जो तस प्रायश्चित शक्ति किम बताइये रे लो ५ अहो जो को
व्रत खराडन जो तेहथी आण खराडीत व्रति सदा भलरे लो अहो जो होवे
स्थिर रहेण समर्थ जो तो भले राखे आपण व्रत ने निर्मल रे लो ६
अहो जो पलन सके उत्सर्ग जो तो ते कायर सेवे छे अपवादने रे लो अहो
पले अडग उत्सर्ग जो तहां ने अपेद करीये कहो स्याद्वादने रे लो ७

अहो वीतराग जो मत स्याद्वादजो तूं कहे ते हूं मानूं छूं साची सही रेलो ।
अहो एक ही ज्ञानान्तर होय जो एक में तो स्याद्वाद त्रिकाले छे नहीं रेलो
८ अहो यहां नहीं दया को पक्ष जो यह तो पक्ष प्रत्यक्ष है संसारनो
रेलो अहो नहीं जीव अजाणी कहेवाय जो एतो मिथ्यावी कीनी सदा परि-
वारनी रेलो ९ अहो नारी पुत्र राज काज जो कधी न छोडूं धर्म श्री जिन
राजनो रेलो अहो यहपद ऋद्धि अनन्त जो वार अनन्ती हुवा अछे सहू साजनो
रेलो १० अहो कोण किसी को धन परिवार जो सार न सरसी स्वार्थ
सगीयां कोइनी रेलो अहो स्वार्थीया सब जाणे जो कर्म संचित संग आवै
करणी होइनी रेलो ११ अहो धर्म प्राप्ति दुर्लभ जो सो पायो हूं म्हारा पुण्य
ना जोगथी रेलो अहो दारिद्री चिन्तामणी जेमजो लहसी ने कौण भोले
चिंति मोगथी रेलो १२ अहो मत कर यह उपदेश जो मत आस घर में
पूजुं अन्य देव ने रेलो अहो होणहार सोही होय जो वछूं नहीं पुत्र नारी

सेवक सेवकीरेलो । १३ । अहो ! नहीं इण लोक सुख चहाय जो लाय जणां
हूं सम्पति सब संसार की रेलो । अहो ! सब मिल्या वार अनन्त जो तृप्त न
हुइ आत्म इश्वरी आपार नीरेलो । १४ । अहो अनित्य क्षणिक सुख काज
जो कौन मूर्ख हारेगा नित्य सुख सायबीरेलो । अहो दुर्लभ लाभ हुवो
मुझ जो गमस्या पीछी दुर्लभ हाथे आयवीरेलो । १५ । अहो सुण गारुडी
न तजु प्राणान्ते टेक जो न नमुं कदापि जिनजी बिना अन्य देवनेरे अहो
तूं जाणे जिनमत रहस्य जो तुझ ने चेताय कही एह बातें में वलीलो । १६ ।
अहो तुझ थी जो होवे उपाव जो । तो कर भलाइ सचेतन छे प्राणीयारेलो
अहो धर्म हट मत ताण जो । मार २ अहिले थोडा में जाणीयारेलो । १७ ।
अहो टूटी आयुष्य की स्थित जो सान्ध सके नहीं शक्ति किसी ही देवनी-
रेलो । अहो ! जो पूरो हुवा इन को कालजो तो जा घर तुझ गरज नहीं
मुझ हेवनीरेलो १८ । अहो सुण श्रोताजी इत्यादि विविध बात जो

नरुडी रूप सुणे कही वे प्रमाड से रेलो । ग्रहो सुणी श्वेतजी सुर पगरो
चनत्कारने चलय शबदो नहीं ऋजुन द्रढ ताइ से रेलो । १९ ग्रहो द्रढ
धर्मी रजन जो होवे सहीं समकत धर्म ग्रादरवरेलो ग्रहो यह हुइ
पंचदश ढाल जो । कहे अनेलक सूर वरे नेह रधवरे लो । २० ❀
दोहा । नरुडी रूप देखते सुणी विजय नवन्न चीडयो ग्रति चित्त में
दोखी नृप कठन १ कहे नृपति मेलीया । कदग्रही दयाहीन निज हित
हित न ओलखे नरों को प्रवीन २ होटे भव तव ताहरे होते दीसे
हाल समर्थ सुरथी न डरे । वोले ग्राल पंपाल ३ रोगी देह वनावे जो
ग्रवनी तजंत । ते ते रोग वृद्धि हुवे नहा पीड पावंत ४ तैसेही तुमे
यह कदग्रह को । पत देशी नारय इन वड वडतो नरुा छोड चलो
ने ठर ५ ❀ ढाल १६ वी । सुमत विनतडी ग्रवधारो साहिब यह ।
देखी भव्य विजय नृप द्रढताइ रखी ग्रवाड प्रमानत टेर नरुडी जत

ही तदीए प्रगटे नभ मैं भाए । जाए विजय की प्रबल मेदान । आवै दिन सुलतान देखो ॥ १ ॥ मन्त्र बले जो आहीं बन्दे थे वो छूटै तत्काल नदी पूर जो उलटे एकदम जैसे सेनानी आये काल देखो ॥ २ ॥ काल लाल पील होल, कबर विचित्र रंग । की जिह्वा से भरे विष महा । आरुण नेत्र भय ढंग देखो ॥ ३ ॥ ते सर्प टोली में एक महानाग उतंग फण पसार । नृप सन्मुख हो बोले नागर आहो मूर्ख के बिचार । देखो ॥ ४ ॥ धीठ धीठ मत आठ आधर्म नीडर होश्य । धर्म गर्व छक उन्मत होकर करे वे विचार के कर्म देखो ॥ ५ ॥ नहीं जाणी हतु महारी शक्ति जो सहतां सुख काल जहां लग तेरे अङ्ग न व्यापी तहांलग तूं अटल देखो ॥ ६ ॥ जड़ूड ना कहने सुनने से डर नहीं धरे लगार । निज पर दीते सन्मे दुर्रही । येही है थारे विचार देखो ॥ ७ ॥ कृत्य कर्म का आते कटुक फल भोगव तूं इणवार । यें कहते नृप आंगे बिठाएँ अस्पृश्य क्रोध नमार देखो ॥ ८ ॥

नींद न थानें नश्यें बन्दी जकडी कीने सर्व अंग डंस । और अनेक लहु ।
खाइ कीटनें ता अवसंश । देखो ॥ ९ ॥ चूंट २ ता तन ने तोडी करे खंड
खंड अहार नेउ ज्यों द्रढ बन्धन ता हो स्मरण को नकार ॥ १० ॥ नह
दीठे पान सब ही तन में दवरित स करूा । जाने वज्र प्रहार करे है को-
पे नदव के असुर देखो ॥ ११ ॥ तीक्षण शस्त्रों अरी तन काटे त्यों फटाने
लाल तन नह भयानक भोगे जो जाने के जाने भगवान देखो ॥ १२ ॥
शर २ शर तन सब कमे तार २ कूटे खंड तड २ सब नाडी टूटे जेहर चढ
अति शक्त देखो ॥ १३ ॥ छेदक को बोले जेष्ठ नान्हे देखो दुष्ट के हवाल ।
स्वजन पुजन आदि जो त्वन दी मुढ हुवे अस्तल । देखो ॥ १४ ॥ अति
वेदन से मुरछाइ पडे पडे भयानक चीस देखे सो अति उरित होवे देव
कोपे व्याजीर देखो ॥ १५ ॥ हरीत वदन दशन छुपाए भये तडफे जल
बिन मीन स्वदत नरकी वेदन अनुभवे जाणी ते दिन । देखो ॥ १६ ॥

यम प्रहार भूलया ते संभार्या अहो सत्य कथन भगवन्त इससे अनन्त गुणी
महा वेदन भोगवें बार अनन्त दोहो १७ इन विचार में मन रमावे
तबही सुने समाचार राणी पुत्रों छोड़ी मृत्यु पाये करो ले ज संस्कार
दोहो १८ जले अंग पर दाह के जैसे वीत राग मन परिताप
तो भी तेह अखराड ध्यानी से करे नवकार को जाप दोहो १९ ज्यों २
वेदन वृद्धि पावै त्यों त्यों भाव निर्मल अधिक २ अरिहन्त जिनजी के वचन
में हुवे सबल दोहो २० महा संकट में महा स्थिर रहे धन्य विजय नृपाल
कहे अमोल बनी यों अन्त यह षोडशमी ढाल दोहो २१ ❀
दोहा ता समय तेहीं गरुड़ी धुणावते निज शीश विजयराय ढिग
आवीयो देखते दया जगीस १ त्रसित मुद्रा से कहें अरे अब तो जग
नाथ नमन कर मान देव ने ज्यों मनावे प्राण २ अति दुर्लभ
महा पुराय ने अपूर्व वक्त यह पाय लै लावो देई आयु वर

हो मूढ़ी मन मान ३ सर्व जग स्वारथ नरकी कहे झूठे झूठ तो भी सा
र समकित मंत्र आदि पाप सब दो मेरे शिर डार ४ किन्ही माने
मानेन्द्र को ज्यों सब पावें सुख कोलाहल यों मच रहे मय मौन गही मुख
५ ❀ ढाल १७ वीं नहीं सन्देह लगार निरोगन यह निर्मल मन-
कीर्ति विजय भूति श्री जिनधर्म महशूर यहां मह उपसर्ग सहू निर्देह
तहां न चलायो मन भूर विज० १ नरक सम दुःख से तन छिदवे
सजन बेले कुजवन कुटुंब संहार हुवे पग जलाये तो भी न कम्पा प्राण
विज० २ मेरु पर द्रढकर तन बैठा पक्ष सम लगाया कहे सब से बक-
वाद करो मत सुमन मन द्रढ पहली सहाय विज० ३ सुभ व्रत न पलटे
कदापि जो ऊंचे पद्मिन भाए रे मरुडी पछो फिरके चाले नहीं नहीं
खडु जिन आए विज० ४ धर्म खंडन की बात न करजे । करती तो
शिव पाती रे न रुडी जो तूं जाने तो । मैं पूछूं से दे नकारी । देखे ५ ।

यह अति वेदन असह्य मुझ थी सहसी कितने कलतंइ अनुपम म्हारो
रह्यो किती घडी जन्ने ते कहदे भइ दे० ६ ज्यों मुझने यह सर्प डस्यो
है ऐसे ही डसे अन्य तंइ ते ते काल कितने जीवे जाए ते देखत इ
देखो ७ ते जाणूं ते में पाप आलेइ सलेषण करूं भले भावे निशल्य
होकर गति सुधारूं और कुछ मुझ नहीं चावै देखो ८ यों सुण नगर
घर कहे गारुडी निर्विष दीई विष की जाए जघन्य पीडे घट भार लव
देव कोप कह व्याख्याने देखो ९ पण ज्यों भोगे दुःख दारुण यह
करण किसे काम के अति विस्मय म्हारे मन पावै किणर्थ सर्वस्व गम-
ते देखो १० म्हसत्व को धरी निरुद्र सुणी ने नहीं डर्यो लगारे
निर्विकल्प चित्त ने द्रढ स्थिर कर इण विध करतो उचारे देखो ११
सुणो सहू जन पुष्प की तरेह तुम तन अति है सुकुमाल ते पण धर्म थी मुनि
पर अग्नी मन तन हुवो मुझ उजमाल देखो १२ जो यह वेदन सहतां

अकरी तो पण ने थेड हो जाणूं इससे भी कभी होय अनन्त गुणी तो भी कुनि ने नहीं मानूं दोहो १३ छे नरक तो काल बीतसी म्हारे मने न घणी बातो अबे पूर्व लग दुःख भोगवूं तो ही न छूटे धर्म को नातो दोहो १४ ज्यों ज्यों यह दुःख वृद्धि पावे त्यों ज्यादा सुखकारक जाणूं धर्म की करण यह निर्जरा किंचित खेदन आणूं दोहो १५ ज्यों अधिक समभाव से सहूंगा त्यों ही सुख अधिको पावूं येही जो सर्व कर्म दग्ध वे तो निरन्तर मुक्ति में जावूं दोहो १६ इससे अनन्त गुण अनन्त बार दुःख भुक्ते नरक मांही नर्क सें दुःख अनन्त गुण अधिक निगोद में पायो सही दोहो १७ सम्यक्त भजे नरक निगोद के भव अनन्त करना पडसी सम्यक्त बिना किंचित दुःख सही यह दुःख नहीं शिवपद वरसी दोहो १८ परवश अनन्त दुःख सहे जहां निर्जरा हुइ कभी लवलेशो अपूर्व लाभ को अवसर यह सुप्रभात कोई ने जरा मत देशो दोहो

।१९ उपकारी हुवा नग देव सुमन अशुभ कर्मों को टाव । नहार व-
धर्म में ही भेगहूं सुलहे यह सुविरयों शब्द देखो २० यों सेवन वीर रस
प्रीति वचन सुणी सहु विस्मय बहुत बोलो विजय समवर्ती की अनेल
ढाल सतरे मांय देखो २१ ❀ दोहा यों द्रढ निश्चय तम बनी
पद्मासन लगाय मेरु ज्यों स्थिर रहे ध्यान धर सदुबोध करत उचार १
लोक दीग मुढ होरहा बोली न सके लगार देवी प्रत्यक्ष यह चरी असुर
अचंभ्ये अपार २ देखे अवधि ज्ञान से तीव वेदन तूप तन पाए नमस
निर्मल अति स्मर २ बृंधन ३ कीना उपाव डीगावने उलट हुवे द्रढ
मन सखेद अई सुरभ्म गयो । हरयों जुगरी दांव ४ प्रगट्ये अति नमे
इन्द्र दिया आसन निर्थक सत्य महासती ने अहो २ विजय गुणगान
५ ❀ ढाल १८ वी गोपीचन्द लड़का यह धन्य २ सब बोले
द्रढ धर्मी विजयराय को टेर ताहीं सन्य सब नीरे वीलइ देव नन्न में

ऊभइ जय २ नंद करे जिनराय को दुंदुभी रहो बजाइजी छन्द १
पंच दिव्य तहां प्रकट करंया सुगंधी जल वर्षाइ रत्न भूषण वस्त्र अरुपुष्प-
सोनैया धन लगाइजी छन्द २ अनेक प्रकार विचित्र देव का गान
में छत्र छवाइ विविध प्रकार जिन गुण गावै विचित्र विविध बजाइजी
छन्द ३ अहो २ सत्व अहो २ प्रदत्त जो जिनराय में पाइ ते नहीं पावे
अन्य स्थाने छन्द २ जिन तात भाइजी छन्द ४ कोडों प्रकार कोडों
जिह्वा से जिन गुण न कहहीं अज पवित्र होवे चरण भेटी यों कही
सब में अइहो छन्द ५ नह दिव्य रूप वस्त्र भूषाधर मुकुट धारि पद
ठइ कह सदन्ते दन्ते देव सुभ नह आपद कीधइजी छन्द ६
काजेडी नमी सन्मुख ऊभे सत्य विरतन्त दर्शाइ मैं परसंस्य किसी कर
ना सीमन्धर जिन रहइहो छन्द ७ प्रश्न स्वामि पति जिन वन्दन गये
विजय पुष्कलावति मांइ सीमन्धर से इन्द्र प्रश्न किया को समदवती भरत

मंइ हो छन्द ८ जिनजी नाम तुम्हारो दाख्यो न सके देव दानव चलाइ
तैसी पर संन्य सुधर्मी सभा में कीनी स्तुति आइजी छन्द ९ मो
मिथ्याती अधरो नहीं उगारो आभी आवूं डीगाइ पो आभीनन धरी मैं
आपो श्रावक रूप बनाइ हो छन्द १० धर्म परचा में नहीं परभाव्या-
तव साधु समुदाय बनाइ भूटचार बतायो मुनि को तो भी तुम न चलाया-
इजी छन्द ११ नागदेव रूप में दीनो निर्मितक नहीं बनाइ नाग
रूप धर उपसर्ग कीना गालई हो आइ चलाइजी छन्द १२ इत्यादि सहू
कर्तव्य म्हारा तुमने म्हा पडिचाइ सब जाण डीगायो न तुम नन्दू
डीगायो मेरु मरुत के सहाइजी छन्द छन्द १३ अहो सत्य दिश
धर्मी मैली मारी शूरवीर धीर राइ जिनेन्द्र देवेन्द्र परसंस्था से अधिक आप
पाइजी छन्द १४ जेती म्हारी शक्ति थी सबही तुम पाली आजमाइ तुम
मनकी नहीं शक्ति आगे म्हारी न चाली कांइजी छन्द १५ सुरासे भी नर अधिक

सत्व धर आज तुम प्रत्यक्ष देखाइ प्रमाण जन्म जैन कुल धर्मको जे जो तुम पाइजी धन्य १६ मैं महादुष्ट कुदेव दयाहीन कुलना रीति कीधइ बिना गुण मेह धर्मत्व ने संतपा कुटुम्ब रहाइजी धन्य १७ पण तुम मने ये कल इतना मैं द्वेष जरा न लयाइ ऐसी द्रढता किंचित मुनि मैं तो संसारी क्या कहही हो धन्य १८ अहो नरेन्द्र धर्मेन्द्र कृपालु मुझ ऊपर दया लाइ उने २ यह सर्व गुन्हाने अब फिर करूं नहीं हो धन्य १९ करी कदीन दान किंकर पर दो नफी दान रहही यह उपकार न भूलूं कदापि नेहा करो महाराइहो धन्य २० तुम लायक चाकरी फरमाइ पवित्र करो मुझ ताइं ढल अठदश नहीं अमोलक आनन्द अर्थ वरताइजी धन्य २१ ❀ दोहा संतुष्ट भूप कहे देव को तुम अपराध न लगार महर बन्धव मोचना न करो कोइ विचार १ सुर तरु चिन्तामणी थकी अधिक जिनेश्वर धर्म जे पाल्यो तुम हृदय थी इससे न

कोइ परम २ से जडुं में तुम करने और न को मुझ चहाय इतना पर
जो देवे मुझ तो मांगु एकवार ३ देव कहे परनाइये आप कहे सो
प्रमाण पण कहे तो छोडदो मिथ्यात्व दुःख खाण ४ स्वीकारो जैन
धर्म को करो चतुर्थी सेव उत्पत्ती करे धर्म सत्य की पावे सुख सदैव
५ प्रमाण वचन यह आपका करजोडी कहे देव मैं धारों जैन धर्म को
पालुंगा अहमेव ६ विजय गुरु वंदन करी खेद हर्ष दिल धार देवता
देवलोक में पाले धर्म स्वीकार ७ ❀ ढाल १६ वी तूं नहीं जाणी यह
तुम सुनो गुनी लोको सर्वार्थ सिद्ध शुद्ध ध्यान से टेर। पछे पाले आराधन विजय
जी पोषध शाल में आय अष्टदश दोष रहित शुद्ध पोषधवृत गृही रहाय धर्म
ध्यान तब शिखली पाते धर्म ध्यान को ध्याय हो तुम १ चिन्ते
विजय मुझ ने तांई लुब्धी सुख ममार जाए तें ही पण छोडी न सकुं
ये संसार असार राज कुटुम्ब ने मृद्ध हुवो मैं काई न बने लगार हो तु-

न । २ अब प्रति नेह हटाने। देइ पुत्र को राज । सर्व प्रपंच को छोडी करी ये तहूं आनन्द जाज । श्रावक का व्रत गहेही धारू । त्यों सुधरे कुछ काज हो । सुण । ३ प्रात भया ऐसो धारी ने । करी अहार निजवरा । भाइ पुत्रादि आदि दे । सबी परिवार जिमाय । अति आडम्बर नन्दकुमार ने राज तखत बैठाए हो । सुण । ४ फिर लेइ सबै की सीख आइ । धर्म उपकरण लेरे पोषधशाला में एकान्ते धर्म करंता रेय । तप जप खप शास्त्र प्रमाणे । करे नित्य प्रति तेय हो । सुणो । ५ जो मिले निज कुटुम्ब के घर में । उनके निमित्त से अहार बना सो अचिन्त्य तहां जाइ । मांगवे थोडे जे नर । ज्ञान ध्यान में सदा उद्यमी हाणी न करे लगारहो । सुणो । ६ । एकदा मनध्या समय विजयजी देवसी प्रतिक्रम कर तीनों मनोरथ चिन्तवत ते दीना स्थिर ध्यान धर । अपूर्व भाव बढ्या ते वारे एका ग्रहे ताजी । सुणो । ७ । अहो प्रभु जी आप नहे सुख सागर । प्रकाश्यो जैन धर्म । बिन कष्ट शुद्ध भाव आराधे ।

ग्रहौं शिव सुख पाय तप जप किरिया की न जरूरत धरे दृढ श्रद्धा हो
तुम अष्टदश दोषण रहित सो अरिहंत देव कहाय शुद्धाचारी निर्लोभ धारी
निर्ग्रन्थ गुरू विनय, सर्व जीवों को एकान्त सुखदाई धर्म जिनराय हो
सुण ९ यह व्यवहारी धर्म तिहुं तत्व को भव्य जीवो अराधे त्रिशल्य
त्रिकरण से त्यागे जाम जैन मत लहे यथा शक्ति दस किरिया निपाइ
आत्मार्थ को सधे हो तुम १० निजात्म निज गुण में तल्ली न होवे सो
ही निश्चय देव जाने आत्म ज्ञानानन्दे रमण करे गुरु तेही पहछाने पर
परिणति तज निज परिणति ये धर्म सोही धर्म माने जी तुम ११ यह निश्च-
यिक तीनो तत्व श्रद्धे यथा शक्ति में पालय परन्तु मानव शरीर को न धरै
तासे संयम न धार्यो धिक्कार होवे मेरे प्रमाद को भव भ्रमण नहीं टल्या हो
तुम १२ अनित्य पदार्थ तन आशुचि कुटम्ब स्वार्थी सार शरणदाता
कोइ होवे नहीं दुःख निवारण हार पुद्गल नन्दी होकर आत्म अपना भान

विरागजी तु० १३ इत्यादि चिन्तवन करत आनन्द मगन भई अते
दायक श्रेणी पडिवजी कर्म नाश हुआई दीया नेह को कीयो विजयजी
शुक्लध्यान में रहईयाजी तु० १४ घोर अन्धारी रात्री मांहि अनन्त मनु
केरह केवलज्ञान और केवल दर्शन विजय आते प्रगटइ जो वस्तु नह
कट रे पावे सो सहजे हाथ आइजी तु० १५ पति ने पुत्र यें
अधिक निरीखे सो संयम ले केवल पाय इनने तो गृहस्थ श्र-
मांही ध्यान से केवल कमाया यें पुण्य की उत्कृष्ट देखो ध्यान बली
कैसा भया हे तु० १६ सुनु लिंग सत्रामति देव तत्क्षीण लइ दीना
ही वेष परिहर विजयजी तहे ग्रहण कीना ढाल उज्जोसवी कही अनेलव
विजयजी चिन्तित लीनीजी तु० १७ ❀ दोहा केवल महिमा कारने
सुरगण अति उमंगयी नाचे बजे देव दुंदुभी जय २ शब्द उचार १
पुरजन कौतुक देखके अति आश्चर्य मन लाय कौन करे केवल इहां दर्शने

नाम धार २ आरे पोहद शाल में विजय ऋषि वर देव जने यही
हुवे केवली पाये हर्ष विशेष ३ दिन कर भी तब प्रगट मिले सज्जन स-
ब आय पुरजन आदि परिषद बहुत ही तहां भराय ४ जग तारण जिन
रायजी धर्म देशना फरमाय से सुणीये श्रोता सबी लेजो आतम न्याय
५५ ✻ ढाल २० मी जो सुख देखणो होडी पारस को यह चेतो चतुर
शुद्ध समकित धारो धर्म से खेवा पारजी टेर नर भव अति दुर्लभ जगमें
प्रथम नर भव पायजी चे० १ नव घाटी में अनन्त परावर्तन किया जन्म
मरण धारजी चेतो २ अनन्त पुण्ये नर हुवा पिन सूत्र सुणवो दुष्कर
करजी चेतो ३ मिथ्या वाणी खोटी कहनी सुण अनंतवारजी चेतो
४ श्री जिनवाणी सुणके श्रद्धे सोही समकित उचारजी चेतो ५ कुश्रद्धा और
और मिथ्या शल्य सेभम अनन्त संसारजी चेतो ६ चौथा बोल श्रद्धा
को दर्शन यथा शक्ति अनुसारजी चेतो ७ इन सहित चारित्र पाले

तो हो जावै केवल पार जी चेतो ८ दम मुक्ति आर्जव ने मार्दव ला-
घव सत्य संयम भार जी चे० ९ तप इम ब्रह्मचर्य धारे तो निश्चय केवल
पार जी चे० १० इम दर्शन चरन त्रय रत्न यह करे आतम निस्तार
जी चे० ११ आत्मिक गुण तज प्राणी रमणता सोही. लल वन्हार जी
चे० १२ ममत्व वन्धे जो वन्धे जकडी तो कैसे छुटकार जी चे०
१३ जो छेदे अरोहित मच्छ पर तस सुख शिव द्वार जी चेतो० १४
यह तन प्रत्यक्ष अशुचि का कुंड । धर्म करे तो होवे उद्धार जी चेतो १५
असार से सार निकाले सो निकालो जो तुम हो हुंशयार जी चे० १६
येही तन है मोक्ष को कारण धर्म हेतु से लेवो धार जी चे० १७ अ-
पूर्व और महा लाभ दाता येह आसव श्रेयकार जी चेतो १८ दुलभ
लाभ लभ्य हुवे लूंटो मरणो आवी ही विचार जी चेतो १९ मह नर
पुनः आवे न किनी, होय सोच अपार जी चेतो २० यों सत्य जाणी

चेतो भव्य प्राणी आनंद सुख इच्छनहार जी । चेतो २१ । जिनइ आराधे निज आतम साधे होवो शान्त निर्विकार जी । चेतो २२ । तरे तरे सब दुःख निवारे पावे मोक्ष पद सार जी । चेतो २३ इत्यादि सदबोध दर्शना ढाल बीसमी मझार जी । चेतो २४ । श्री आमोलक ऋषि पसरे सदा रहे जय जय कार जी । चेतो २५ ॥ ❀ दोहा । सुधर्मा सुणी देशना हुई सभा शान्त रस । वैराग्य उर्मी अंगी लहने वह सुलक्ष ॥ १ ॥ समादत व्रत नियम गुण धारे बहुत सुइ जन । जयसेण आदि सौ परिवार के परम संवेग धार्यो मन ॥ २ ॥ सहु परिषद गये विशुद्ध जिनजी को करे नमस्कार । आइ थी उसी दिशी गइ यथा शक्ति धर्म धार ॥ ३ ॥ जयसेण जिनवन्द कर, लुलीयें को उच्चार श्रद्धा परतीत उपदेश यह सत्य सच्च दृढ निर्धार ॥ ४ ॥ जिनजी कहे यथा सुख करो प्रतिबन्ध करिये नाय । सुणी अति हर्षी पुनः वन्दी निज २ सदने आय ॥ ५ ॥ ❀ ढाल २१ वी । गौतम

राग की देशी । परमानन्द वैरागीया जी । निज २ कुटुम्ब सम्भाय । दीक्षा लेवाए राज हुवा । तब सज्जन मौछब मांडया जी शुद्धोदक न्हवाए आय जी दिव्य भूषण वस्त्र सजाया जी । जो सहस्र पुरुष उठाया जी । ऐसी सेविका मांहें को बैठाया जी । श्री सम्मेत उत्सव सुखदा सदा । टेर । १ आया पारि- परिवर्या जी । विजय केवली पास । सद्गुरु तिहि वंदन कीये । फिर ईशाण कोण रही खास जी । वस्त्र भूषण तज करी रास जी । पंचमुष्टि लोचन करी स- जी । साधु वेस धार्या उमंग्या सही । वन्दी जिनजी से को अरदास जी । श्री । २ अलित पलित संसार में जी । जरा मरण प्रज्वलंत । ताने जले जा- न्तुआ । हम आपके शरण आवन्त जी । दया कर हमे तुम बचावन्त जी आठों संजम शिक्षा करे समन्त जी । जिनजी कुटुम्ब आइ लेवन्त जी । नवें जनों को दिक्षा देवन्त जी । श्री । ३ । जय १ ऋषि आनन्द २ मुनिजी सु- न्दर ३ साधु महंत । एह तीनो सन्त सोभित । अब छे सती नाम भणन्त जी

जयवंती १ विजया २ गुणवन्त जी जेतश्री ३ भोगवती ४ दीपन्त जी जयति
५ कमलता ६ सोहंत जी यों नव ही शिव पन्थ धारन्त जी श्री ४ साधु
सतियों संग परिवार्यां जी जिनराय कीयो विहार गाम तीन लग सहू मिली
पहोंचाइ फिर्यों परिवार जी सुरत गुण गण प्रीति संभार जी अब सब
निज २ आगार जी करे धर्म कर्म यथा सार जी अब संतों सतीयों अधिकार
जी श्री ५ जिनराज एकान्त स्थानके जी बैठ सब परिवार असे-
वन गृहण शिक्षा विस्तारी करी उचार जी जो इन गुणे आचार जी ते
तीनी सन्त सती धार जी और इन पद्म कूर सार जी दिरकाणी मे
महा एकतार जी श्री ६ । इम नन्दि माणि ध्यान में जी तो तप घोर
द्रढ जाप ग्राम नगर आदि विचरत सहत परिसह शीत ताप जी सद-
बोधे उपकार अमाप जी काट ताप भव्यजन तदा जी फेलायो धर्म
सत्य श्राप जी बहूते तरे जन्मे साफ जी श्री ७ श्री विजय जिनराजजी

जी एक लक्ष वर्ष आयु पर । अनसनी हो दृढ़ासनी । किया अन्त तिक कर्म छार जी । पधारे मोक्ष मझार जी हुवे अजरामर अविकार जी । अनन्त अक्षय सुख लीन सार जी कृत कृतार्थ रही धार जी । श्री । ८ जय पुण्य वृद्धि हुवा जी । पहोंता सर्वार्थसिद्ध मांय । एकावतारी उत्कृष्ट सुखी । महा विदेह से मोक्ष सिधाय जी ॥ और सबी स्वर्गे जाय जी । अतुल्य महा सुख भुक्ताय जी । थोडा ही भवान्तर मांय जी पामसी शिव सुख सदाय जी श्री ९ आत्म मेदनी विशुद्ध करी । तामें विनय बीज बोवाय ॥ शील कोट से घेर कर । विविध ज्ञान बगीचा बनाय जी । महाव्रत वृक्ष फूलाय जी समता रूप होइ सुखदाय जी दान रूप नीर भराय जी वैराग्य रंग दे होलाय जी श्री १० सद्बोध पिचकारी भर करी सुमति गुप्ति सहेली संग । स्याद्वाद नजिक झणकार से हुवे अनहद नाद में चंगजी । खेले उत्तम विजय सुरंगजी पावे से सुख अभंगजी बने येही आतम प्रसंगजी ॥ श्री ११ ज्यों विजय की

सपरिवार से यह उत्सव रमी पावै सुख त्यों सब श्रोता वक्ता मिली धारो द्रढ
श्रद्धा सम्यक सनमुखजी महा उपसर्ग न होवे कलुखजी तो तैसे न्याय से सब
दुःखजी यह कथन सार धारे तुखजी तो कथन श्रवन सार पुखजी श्री १२
श्री सासनपति महावीर केजी आचार्य हुवे गुणधार। पूज्यलवजी ऋषि सोमजी
ऋषि पूज्य कहानजी ऋषि सिरदारजी तारा ऋषिजी काला ऋषिजी सारजी
वतु ऋषिजी धनजी ऋषि लालजी महन्त खूब ऋषिजी आणगारजी चेन ऋषि
जी गुरु प्राणधार जी श्री १३ तस किंकर अमोल हे रो वंदित
सूत्रनुसार कथा पढी कथी रस में रखनाते सुधार वहार जी
अछेद विछेद मतानुसारजी करतं किंचि असत्य हो उचारजी तो सर्वज्ञ आतम
साखीदारजी मिथ्या दुष्कृत्य मुझे वारम्वारजी श्री० १४ कोविद कवियों
को अर्पण कहुं कीजो रस सुधार नहीं कवि मैं कवि शिशु तेहि बुद्धि
विबुद्ध उरधारजी कीजो सर्व दोषण को निवारजी प्रसार जो गुण विस्तार

जी होवे सर्व लाभ दातारजी येही परम पदार्थ तारजी ॥ श्री १५ श्री वीर निर्वाण संवत्सर बीते चौबीस सौ सत्तावीस । विक्रम उन्नीससो अठावने देश दक्षिण सुमुनीश जी छोड नदी ग्राम धर्मधीश जी रहे चतुर मास सु जानी-न जी शुभ विजय दशमी के दीन जी यह पूर्ण हुइ सुभ जानीये जी ॥ श्री १६ सती शिरोमणी महासती जी श्री रत्नकवर जी जान तस अनुज र-च्यो यह समकितोत्सव लाड जी । समकित रत्न गुणों की खान जी । चिन्तामणी सम कुंभ समान जी पूरे इच्छा देइ इष्ट दान जी जय जय सदा आनंद धर्मवान जी ॥ श्री समकित उत्सव सुखद सदा ॥ १७ ॥ ❀

कळश हरिगीत छन्द

ॐ नमो अर्हं सिद्ध सहू सर्वज्ञ प्रणीत जैन धर्म जी ।
चारों शरण येह सदा मुझको वांछित सुख देवे परम जी ।

सम्यक्त्वोत्सव पढत सुणते नशत मिथ्या मान जी
ऋद्धि सिद्धि सब सुख पावे अरि होवे नरम जी १

श्री विजय जिनराज गृही रही सम्यक्त्व पाय केवल वर
पुण्य तम गुण पठन श्रवण होत शिव सुख सत्वर
अमोल ऋषि कहे ज्ञानध्यजी येही गुण दो सरस जो
जय रहो चौ संघकी सदा आनन्द मङ्गल वरतजो २

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी
श्री अमोलक ऋषिजी महाराज रचित सम्यक्त्वोत्सव-जय विजय चरित्र
का सम्यक्त्वाधिकार नामक उत्तरार्द्ध खण्ड समाप्तम्

❀ श्री सम्यक्त्वोत्सव-जय विजय चरित्र समाप्तम् ❀

લાગ્યો કેઃ—' અહા ! મારા દુષ્ટ ચેષ્ટિતને ધિક્કાર થાઓ. કારણ કે આ તો પૃથ્વીપાલ છે અને હું તો પશુ કરતાં પણ ક્ષુદ્ર છું, કે આવા અવસરે હું એને અનર્થમાં નાખું છું. મારે પોતાનું કાર્ય સાધવામાં પુનઃ ઘણા અવસરો મળી શકશે. ' આમ વિચારીને તે યુદ્ધને માટે તૈયાર થયો. પછી તેની સહાયતાથી રાજા તે શત્રુગણને જીતી અને ગોધન લઇને મહોત્સવપૂર્વક પોતાના નગરમાં દાખલ થયો. પછી ત્યાં રાજાએ વિચાર કર્યો કેઃ—' આ અશ્વની સહાયતાથીજ હું શત્રુઓને જીતી શકયો છું માટે એજ પટ્ટાશ્વ થાઓ, બીજાઓથી સર્યું. ' એમ કહીને રાજાએ તેને સુવર્ણના આભરણો પહેરાવ્યાં, એટલે તેવા પ્રકારનો આદર જોવાથી તે અશ્વે પણ કુમતિ તજી દીધી.

एवं स काणोऽपि तुरंगमो यथा,
बभूव मान्यो विनयादिभिर्गुणैः ।
संगृह्यतां भो भविकास्ततो गुण–
श्रेणिर्भवद्भिः कृपणैर्यथा धनम् ॥ १ ॥

આ પ્રમાણે તે કાણો અશ્વ પણ જેમ વિનયાદિક ગુણોથી માન્ય થયો. તો હે ભવ્ય જનો ! કૃપણ જેમ ધનનો સંઘરો કરે, તેમ તમે પણ ગુણોનો સંગ્રહ કરો, કે જેથી શિવસંપતિ સન્મુખ આવે.

॥ इति श्रीउपदेश सप्ततिकायां चतुर्थेऽधिकारे
सप्तम उपदेशः ॥ ७ ॥

—००:०:००—

અષ્ટમ ઉપદેશ.

ગુણવંત જનોના ગુણો જોઇને વિવેકી જનોએ તેનો મત્સર કરવો ઉચિત નથી. આ સંબંધમાં બ્રાહ્મણોનું દૃષ્ટાંત છે.

બ્રાહ્મણોની કથા.

કુમારપાલ પ્રમુખ અનેક રાજાઓને પ્રતિબોધ આપનાર ચિરકાલ પર્યંત શ્રી જિન શાસનની પ્રભાવના કરનાર, અનેક નવીન ગ્રંથોની રચના કરનાર તથા પોતાની કીર્ત્તિરૂપ કર્પૂરથી ભૂતલને સુગંધી કરનાર એવા શ્રી હેમચંદ્રસૂરિ હતા. એકદા તે ચોરાશી વર્ષ પ્રમાણ પોતાનું આયુષ્ય સંપૂર્ણ કરીને સ્વર્ગે ગયા. કયા મહાત્માઓને પણ દૈવે ગ્રસ્ત નથી કર્યા ? તે વખતે તેવા પુરૂષ રત્નના વિનાશથી રાજા વિગેરેને મનને સતાવનાર (સંતાપકારક) એવો શોક થયો. ' અહા ! પ્રથમ તો અશેષ ગુણોના સ્થાનભૂત અને વસુધાના અલંકારરૂપ પુરૂષરત્નને પેદા કરે છે, તોપણ તેને ક્ષણભંગુર બનાવી દે છે. અહો ! વિધાતાની અપંડિતતા ખરેખર ! ખેદ ઉપજાવે તેવી છે. પછી તેમનું વિમાન સદૃશ ઝંપાન (માંડવી પ્રમુખ) બહાર નીકળ્યું અને નગર વિશ્રામ કરીને પુનઃ તેને ભાવિક ભવ્યોએ ઉપાડયું. તે સ્થાનની ધૂલિ તીર્થભૂત હોવાથી પાટણવાસી જનોએ એવી કોઇ રીતે ગ્રહણ કરી, કે જેથી ત્યાં એક ખાડો પડી ગયો અને તેથી તે **હેમખડુ** એવા નામથી સમસ્ત લોકમાં પ્રખ્યાત થયો. પરંતુ કેટલાક વિરોધી બ્રાહ્મણો તેને વિપરીત રીતે સ્થાપન કરવા લગ્યા:—' અહીં હેમચંદ્ર ગુરૂને પ્રક્ષિપ્ત કર્યા છે તેથી એ

હેમખડુ કહેવાય છે' આ પ્રમાણે તે મૂર્ખ અને અધમ બ્રાહ્મણો પ્રતિપાદન કરતાં હતાં. જેમ તેમ પ્રલાપ કરનારા એવા તેમને યુક્તિ વિશારદ જનોએ આ પ્રમાણે પ્રત્યુત્તર આપવો કે:—'હે બ્રાહ્મણો! સાંભળો-જ્યારે શ્રી હેમસૂરિનું મરણ થયું, ત્યારે બધા વિપ્રો અંતરમાં અધિક આનંદ પામ્યા. કારણ કે ઘુવડને જેમ સૂર્ય, તથા દુર્જનોને જેમ સજ્જન રૂચે નહિ, તેમ તેમનો શ્રેષ્ઠ ઉદય તે બ્રાહ્મણોને રૂચતો ન હતો.' પછી પદ્માવતી દેવીએ તેમના મસ્તકમાં પીડા ઉપજાવી. તેથી અત્યંત પીડા પામતો તે અમંદ આક્રંદ કરવા લાગ્યા. શોકથી સંતપ્ત મનવાળા એવા હજાર બ્રાહ્મણોએ પોતપોતાની ગોત્ર દેવી વિગેરેને ભોગાદિક ધર્યા. એટલે દેવીઓએ પણ કહ્યું કે:—'અહીં અમારાથી કંઇ પ્રતિક્રિયા થઇ શકે તેમ નથી, પરંતુ તમે પદ્માવતી દેવીનું સ્મરણ કરો. એટલે તેમણે તેમ કર્યું. પછી પદ્માવતીએ પ્રત્યક્ષ થઇને તેમને કહ્યું કે:—'હે દુષ્ટો! આ અસ્થાને તમારે હર્ષ કેવો? ત્રૈલોક્યને પૂજ્ય એવા એમના પંચત્વથી દેવતાઓ પણ શોક-સંતપ્ત થયા અને તમને મૂર્ખાઓને કંઇ ન થયું.' આ પ્રમાણે તેમની તર્જના કરીને દેવીએ પુન: આ પ્રમાણે કહ્યું કે:—'આ સ્થાનની ધૂલિ જો તમે ગ્રહણ કરો, તો તમને નિરોગતા થાય.' આથી તેમણે તે પ્રમાણે કર્યું. કારણ કે સ્વકાર્યમાં એક-પરાયણ એવા આર્ત્તજનો શું શું કરતાં નથી? પછી તે ધુલિથી તે સર્વની શિરોવ્યથા વિલય પામી અને બીજા પણ કોઢ વિગેરે દુષ્ટ રોગો વિના વિલંબે વિલય પામ્યા. વળી તે ધૂલિના પ્રભાવથી તેમને પુત્ર, પૌત્રાદિક સંતતિ તથા લક્ષ્મી, શાંતિ અને માંગલ્ય અક્ષુણ પણ પ્રાપ્ત થયાં. પછી લોભલુબ્ધ તે બ્રાહ્મણોએ ત્યાંથી

ધૂલિ એવી રીતે ગ્રહણ કરી કે, કેટલાક વખત પછી અનુક્રમે ત્યાં એક મોટો ખાડો થઇ પડ્યો. એ પ્રમાણે તે હેમખડુ થયો, પણ હે વિપ્રો ! તમે વિપરીત શાથી પ્રરૂપો છો ? હૃદયમાં કંઇ વિચાર પણ કેમ કરતાં નથી ? જે ગુરૂના માહાત્મ્યથી અમાવાસ્યા પણ પૂર્ણિમા થઇ, પ્રભૂત ભાગ્યવંત એવા તેમની નિંદા કોણ કરે ? વળી બાલ્યાવસ્થામાં જેમના હસ્તસ્પર્શમાત્રથી પણ વ્યવહારીના ઘરમાં અંગાર (કોલસા) નો ઢગલો એક ક્ષણવારમાં સુવર્ણમય થઇ ગયો. તે વખતે તેમનું **હેમચંદ્ર** એવું પરમ નામ ચરિતાર્થ થયું, અને વ્યવહારિયાએ તેમનું ઉત્તમ સૂરિપદ કરાવ્યું.

तस्माद्विचार्य हृदये, विधेयो गुणिनां स्तवः ।
न तेषु मत्सरः कार्यो नरैः स्वहितमिच्छुभिः ॥ १ ॥

આ પ્રમાણે અંતરમાં વિચાર કરીને ગુણી જનોની સ્તુતિ કરવી, પણ સ્વહિતને ઇચ્છનારા જનોએ તેમના પર મત્સર કદાપિ ન ધરવો.

॥ इति श्रीउपदेशसप्ततिकायां चतुर्थेऽधिकारे
अष्टम उपदेशः ॥ ८ ॥

नवम उपदेश.

પ્રભૂત ભાગ્યવૈભવનો ઉદય થતાં માણસોને કોઇ અસાધારણ વચન કળા પ્રાપ્ત થાય છે, જેને લીધે વાગ્મી વચનપટુ–વાચાળ પુરૂષ કુરૂપમાન છતા ડામરદૂતની જેમ તે રાજાદિકને માન્ય થયા છે.

ડામરદુતની કથા.

પાટણમાં બહુ પરાક્રમી ભીમરાજા રાજ્ય કરતો હતો તેને અત્યંત કુરૂપવાન્ એવો ડામર નામે બ્રાહ્મણ દૂત હતો પરંતુ તે વચસ્વી હોવાથી સર્વત્ર સમયોચિત નિઃક્ષોભપણે જાણતો અને બોલતો હતો તેથી તે અંતરમાં ગર્વ રાખતો હતો તે વખતે માલવદેશમાં અભંગુર ભાગ્યવાન્, દાતા, ભોક્તા, ગુણી, શૂર, પ્રતાપી, વિનયી અને ન્યાયી એવો ભોજરાજા રાજ્ય કરતો હતો.

એકદા રાજાએ તે દૂતને ભોજરાજાની પાસે મોકલ્યો અને કહ્યું કે—'હે વિપ્ર ! ત્યાં જઇને તારે એવું એવું બોલવું.' આ પ્રમાણે લાંબો વખત તેણે કહેલ વિચાર સાંભળી તેની અવગણના કરીને ત્યાંથી ઉઠતાં તેણે વસ્ત્રના છેડા ખંખેર્યા એટલે રાજાએ કહ્યું કેઃ—'આ શું ?' તે બોલ્યો કેઃ—'તમારૂં કથન બધું અહીંજ નાખી દીધું.' આથી રાજા અત્યંત રૂષ્ટમાન થયો. 'હવે હું એવો પ્રપંચ રચું, કે જેથી મારી તરફ પ્રત્યનીક (વિરોધી) એવો આ પાપી ત્યાં જાય કે તરત ત્યાંનો રાજા એને વિડંબના પમાડે.' આ પ્રમાણે કોપને મનમાં ગુપ્ત રાખી રાજાએ રાખને રેશમી વસ્ત્રના બહુ રીતે વેષ્ટન પૂર્વક બાંધી તેને એક સુવર્ણની ડાબલીમાં નાખી, તેની ઉપર પોતાની મુદ્રા દઇને તે દૂતના હાથમાં આપીને રાજાએ તેને કહ્યું કેઃ—'હે દૂત ! મારૂં આ ભેટણું તે રાજાને તારે આપવું.' પછી દૂત ત્યાંથી ચાલ્યો અને ક્ષેમપૂર્વક ધારાનગરે પહોંચ્યો ત્યાં ભોજરાજાને મળ્યો, એટલે તેનું રૂપ જોઇને રાજાએ પણ તેને પૂછ્યું કેઃ—'હે દ્વિજ ! તારા રાજાના સંધી અને વિગ્રહના સ્થાને દૂતો કેટલા છે ?' તે

બોલ્યો કે:— ‘ હે માલવેશ ! મારા જેવા તો તે ઘણા દૂતો છે; પણ તેમાં તેમની યોગ્યતાના ક્રમથી અધમ, મધ્યમ અને ઉત્તમ બુદ્ધિવાળા—એવા ત્રિવિધ દૂતોને મોકલવામાં આવે છે.’ આ પ્રમાણે તેના સ્મિતભર્યા ઉત્તરથી ધારાપતિ રંજિત થયો અને અંતરમાં વિસ્મય પામીને રાજાએ સસ્નેહ તેને બોલાવ્યો એટલે તેણે પણ પોતાના રાજાએ આપેલ પ્રાભૃત તેની આગળ મૂક્યું એવામાં સભાસદો બધા ભેગા થઈ તે સુવર્ણ સમુદ્‌ગક (ડાબલી)ને જોઇને ‘ આમાં કંઇક અપૂર્વ ચીજ હશે ’ એમ ધારી તે જોવાને સમુત્સુક થયા, પછી જેવામાં સેંકડો મનોરથ કરી રાજાએ તેને ઉઘાડ્યું અને તેમાં રાખ જોઇ તેથી વિલક્ષ (ઝાંખુ) મુખ કરી ‘ આ શું ? ’ એમ તે બોલ્યો એટલે દૂતે વિચાર કર્યો કે:—‘ તે પાપી રાજાએ ખરેખર મને ઉખેડી નાંખવાનો ઉપાય આરંભ્યો છે તથાપિ મારે અહીં સમયોચિત બોલવું એમ ધારીને તેણે કહ્યું કે:—‘ હે દેવ! સાંભળો—અમારા સ્વામીએ અશ્વો અને રોગોથી પીડાતા માણસોની શાંતિ ને માટે લક્ષ હોમયજ્ઞ કર્યો તેની આ ઉત્તમ રાખ છે, સોનામહોર આપતાં પણ તેનો લવ માત્ર મળી ન શકે, વળી છ મહિનાનો રોગ-એનાથી નાશ પામે અને પુન: થાય નહિ. આ રાખને તિલમાત્ર પણ મેળવનારને ભાગ્યવંત સમજવો. હે રાજન્ ! વધારે શું કહું ? પણ એના પ્રભાવથી અંત:પુરને, અશ્વોને અને નગર જનોને એક ક્ષણવારમાં રોગોપશાંતિ થાય. અભીષ્ટ મિત્રતાથી તે રાજાએ તમને આટલું ભેટણું મોકલ્યું છે. માટે હે રાજેંદ્ર! તેનું બહુમાન કરો. ’ આથી સંતુષ્ટ થયેલ રાજાએ સર્વ સભાસદોને અને સ્ત્રીજનોને તે થોડી

થોડી આપી અને તે સપ્રભાવી હોવાથી તેમણે સ્વીકારી. પછી તે દૂતને રાજાએ પાંચસો શ્રેષ્ઠ સોનામહોર અને અશ્વ તથા પટ્ટકુલાદિ તેના માગ્યા પ્રમાણે આપ્યા. તે બધું લઇને તે પાટણમાં આવ્યો અને તે ભીમરાજાને બતાવ્યું. આથી રાજાએ સંતુષ્ટ થઇને તેને પૂછ્યું કે:—'હે વિપ્ર ! ત્યાં જઇને તેં શું શું કહ્યું, તે અત્યારે કહી સંભળાવ.' એટલે તેણે યથોક્ત પોતાનો વૃત્તાંત કહી બતાવ્યો. અને તેથી રાજા અત્યંત વિસ્મય પામ્યો.

હવે પુનઃ એકદા તેને ગર્વિષ્ઠ જોઇને રાજાએ કહ્યું કે:—'હે મૂઢ ! મારા પ્રસાદથી જીવીને ગર્વ શું કરે છે ?' તેણે કહ્યું કે:—'હે રાજન્ ! હું મારી વચનચાતુરીથીજ જીવું છું, તેમાં તારૂં શું છે ?' આ પ્રમાણે વિવાદ થતાં રાજાએ ફરી પણ તેને ત્યાં મોકલ્યો, અને રાજાએ એક લેખ મુદ્રિત કરીને તેને આપ્યો. એટલે અનુક્રમે તે દૂત જ્યાં ભોજભૂપ બેઠો હતો, ત્યાં જઇ પહોંચ્યો. તે વખતે સ્નાન પીઠપર બેઠેલ અને જળથી મસ્તકને જેણે આર્દ્ર કરેલ છે એવા રાજાએ તેને બોલાવ્યો કે:—'હે દૂત ! તને સ્વાગત છે.' વળી રાજાએ જરા હાસ્યથી તેને પૂછ્યું કે:—'પાટણમાં રહેનાર તારો સ્વામી ભીમડ નાપિત આજ કાલ શું કરે છે ?' તેણે કહ્યું કે:—'તે બહુ રાજાઓનાં મસ્તક મુંડે છે. પણ આર્દ્ર કરેલ આ તમારા મસ્તકનો તો અદ્યાપિ વારો પણ આવતો નથી.' આ વાક્યથી ધ્વનિત થયેલ રાજાએ તેને સુવર્ણની જીભ અપાવી. અથવા તો સમયોચિત વચન કોને ન રૂચે ? પછી તે લેખ ખોલીને જેટલામાં તે પોતે વાંચે છે, તેટલામાં ત્યાં 'દૂતને મારી નાખજો.' એવી પંક્તિ રાજાના જોવામાં આવી. પછી ક્ષણવાર વિચારીને રાજાએ તે

દૂતની આગળ યથાસ્થિત વૃત્તાંત જણાવ્યો. એટલે આકાર ગોપવીને દૂતે પણ રાજાને આ પ્રમાણે કહ્યું કેઃ—'હે રાજેંદ્ર! સાંભળો–મારી જન્મ પત્રિકા મને યાદ આવી. તેમાં હિતૈષી દૈવજ્ઞે એવું લખ્યું છે કે—'પચાશમે વર્ષે એની એક આવલિકા પણ વિપત્તિ કરનાર છે અને જ્યાં એનું મરણ થશે, ત્યાં બાર વરસનું દુર્ભિક્ષ પડશે. હે પ્રભો! તે ધુર્ત્તરાજાએ મને અહીં તમારી પાસે મોકલ્યો છે. માટે તેના પ્રાસના અનૃણપણાને ઇચ્છતા એવા મારૂં મરણ થાઓ.' આ પ્રમાણે કંઈક મગરૂરીથી કહીને જેટલામાં તે પોતાના ઉદરમાં છરી મારવા લાગ્યો, તેવામાં રાજાએ તેનો હાથ પકડીને અટકાવ્યો. છતાં 'હે દેવ! હું મરીશજ, મને શા માટે અટકાવો છો? જો સત્વર નાશવંત પ્રાણ સ્વામીના કાર્ય માટે જતા હોય, તો ભલે જાઓ.' આ પ્રમાણે બોલતા તેને અટકાવી એક હજાર સોના મહોર અને પાંચસો ઘોડા આપીને પોતાના દેશથી પણ તેને દૂર રવાનો કરી દીધો. પછી મોટા આડંબર પૂર્વક તેણે ભીમ રાજાને પ્રણામ કર્યા અને પોતાનો યથાસ્થિત વૃત્તાંત સવિસ્તર કહી બતાવ્યો. ત્યારથી તે પોતાની વચનકળાથી રાજા વિગેરેને માન્ય થઈ પડયો. માટે હે ભવ્યજનો! તમે પણ તે વાક્કલામાંજ મનને સ્થિર કરો, કે જેથી સંકટ સાગરના મોજાં તમને સતાવે નહિ અને બંને લોકમાં સુખ સત્વર પ્રાપ્ત થાય.

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां चतुर्थेऽधिकारे

नवम उपदेशः ॥ ९ ॥



દશમ ઉપદેશ.

ન્યાય નીતિ એ માણસોનું પરમ નિધાન છે, ન્યાય નીતિથી વિશ્વ સુખી થાય છે અને નદીઓ જેમ સમુદ્રનો આશ્રય કરે તેમ લક્ષ્મી ન્યાય સંપન્ન પુરૂષનો આશ્રય કરે છે. દરરોજ સવારે બધા લોકો રામનું નામ સંભારે છે, પણ રાવણને કોઇ યાદ કરતું નથી. તો રામે શું આપ્યું છે અને રાવણે શું લઇ લીધું છે ? પણ માત્ર અહીં સન્ન્યાય એજ કારણ છે. કહ્યું છે કે:—' ન્યાય માર્ગે ચાલનારને તિર્યંચો પણ સહાય કરે છે અને વિમાર્ગે જનારને ભાઇ પણ મૂકીદે છે. જે દિવસે દેવતાઓ પણ સેવા કરતા હતા, તેવા પણ રાવણના દિવસો હતા. અને જ્યારે દિવસો ફર્યા ત્યારે પત્થર પાણીમાં તરવા લાગ્યા. હે વીર ! જે પત્થરા દુસ્તર સાગરમાં પોતે ડુબી જાય અને બીજાઓને ડુબાડે, તેજ પત્થરા પોતે તરે છે અને વાનર સુભટોને તારે છે. એ પત્થરના, સમુદ્રના કે વાનરોના ગુણો નહિ, શ્રીમાન રામચંદ્રના પ્રતાપનો તે મનહર મહિમા ચળકતો હતો, વળી જેની આજ્ઞાથી પડતી ભીંતો પણ નિશ્ચલ થાય છે અને જેના નામના કીર્ત્તનથી ભૂતાદિક વશ થાય છે. તેનું સચ્ચરિત્ર તો દૂર રહો, પણ તેનો સેવક યશોવર્મા રાજા પણ જેવો ન્યાયી હતો, તેવો બીજો કોઇ ભાગ્યે હશે.

યશોવર્મા નૃપની કથા.

કલ્યાણકટક નગરીમાં રામચંદ્રની જેમ નીતિ–લતાને મેઘ સમાન એવો યશોવર્મા રાજા વિસ્તૃત રાજ્ય કરતો હતો. તેને પોતાના શરીરના મેલની જેમ દ્વિષ્ટ–દ્વેષી પુત્ર પણ ત્યાજ્ય હતો અને

પુષ્પની જેમ ગુણવાન પરકીય પણ માન્ય હતો. તેણે પોતાના રાજ મહેલના મુખ્ય દ્વાર આગળ એક ન્યાય ઘંટા બંધાવી હતી. જેને જ્યારે કામ પડે, ત્યારે તે પેલી ઘંટા વગાડે. અને રાજા તે વ્યક્તિની પોતાના ધનથી યા પ્રાણથી પણ કાલજી કરતો હતો. એ પ્રમાણે રાજ્ય પાળતાં તે વખત વ્યતીત કરતો હતો.

એકદા તેના ન્યાયની પરીક્ષા કરવા રાજ્યની અધિષ્ઠાય દેવી ગાયનું રૂપ લઇને રાજમાર્ગમાં બેઠી અને સૌંદર્ય તથા સુકુમાર પણાથી મનોહર તથા તરત જન્મેલ એવા એક વાછરડાને વિકુ- ર્વીને તેને પોતાની પાસે બેસાર્યું. એવામાં તે રાજાનો અતિ ઉદ્ધત પુત્ર રાજમહેલમાંથી એક શ્રેષ્ઠ વાહિની (ગાડી) પર ચડીને ત્યાં આવતો હતો અને અત્યંત વેગથી તેણે તે વાહિની પેલા વાછરડા પરથીજ ચલાવી તેથી તે બિચારો મરણ પામ્યો; આથી તે ગાય અત્યંત બરાડા પાડવા લાગી તથા અતિશય આંસુ પાડવા લાગી. આવી તેમની દુર્દશા (થયેલી) જોઇને લોકો હાહાકાર કરવા લાગ્યા. એવામાં કોઇએ તે ગાયને કહ્યું કે:—' હે ભદ્રે ! રાજમં- દિર આગળ જા અને ત્યાં જે ન્યાય ઘંટા બાંધી છે તે શીંગડાથી વગાડ કે જેથી રાજા આ તારા અન્યાયનો પ્રતીકાર (ઇલાજ) કરે. કારણ કે રાજા એ સર્વ સાધારણ પંચમ લોકપાલ છે' આ પ્રમાણે સાંભળીને તેણે ત્યાં જઇને ઘંટાને જોરથી વગાડી તે વખતે રાજા ભોજન કરવા બેઠો હતો ત્યાં અકાલે ઘંટાનો નાદ સાંભ- ળીને સસંભ્રમથી રાજાએ પોતાના સેવકને કહ્યું કે:—' અત્યારે ઘંટા કોણે વગાડી ? ' એટલે તેમણે પણ ત્યાં જોઇને કહ્યું કે:— ' અહીં ગાય વિના બીજું કોઇ નથી. ' ' અરે ! અકાલે અહીં

ગાય ક્યાંથી ? એમ બોલતાં રાજા પોતેજ ઉઠયો અને ત્યાં આવીને ખેદ સહિત રાજાએ તે ગાયને પૂછ્યું કે:—'અહા ! કયા પાપીએ તારો પણ પરાભવ કર્યો ? જેણે તારો પરાભવ કર્યો તે અત્યારેજ મને દેખાડ' તે બિચારી માનવભાષામાં બોલી તો ન જાણતી, પરંતુ આગળ થઇને પૂંઠે લાગેલા રાજાને તેણે પોતાના જીવિતવ્યની જેમ તે વત્સ દેખાડયો, એટલે રાજાએ હટ્ટાદિકપર બેઠેલા મહાજનને પૂછ્યું કે:—'આવું ક્રૂર કર્મ કયા પાપીએ કર્યું છે. તે જણાવો' બધા માણસો તે અન્યાય કરનારને જાણતા હતા, પણ તેના પુત્રના અનર્થની શંકાથી કોઇએ જવાબ ન આપ્યો એટલે રાજાએ વધારે આગ્રહથી પૂછતાં પણ જ્યારે કોઇએ જવાબ ન આપ્યો, ત્યારે ક્રોધાયમાન થયેલા રાજાએ ભ્રૂક્ષેપપૂર્વક આ પ્રમાણે કહ્યું કે:—'અહા ! તમે પણ પાપી છો. કે આવું અનુચિત કૃત્ય જોયા છતાં બોલતા નથી માટે પક્ષપાતી એવા તમને ધિક્કાર થાઓ. જ્યારે આ પાપકારી નરાધમ મારી આગળ પ્રગટ થશે,ત્યારેજ હું ભોજન કરીશ.' આવો તેણે અભિગ્રહ લીધો. પછી ન્યાયમાંજ એક નિષ્ઠ એવા તેને સંધ્યાપર્યંત રહેતાં તે દિવસે લાંઘણ થઇ. અહો ન્યાયની પ્રધાનતા ! એવામાં સાંજરે તે રાજાનો પુત્ર ઘરે આવ્યો અને પોતે કરેલ અન્યાય જણાવીને કહ્યું કે:—'હે પ્રભો ! મને દંડ કરો.' પોતાના પુત્રે કરેલ અન્યાય સાંભળીને રાજા દુભાયો. પણ જેનાથી કર્ણચ્છેદ થાય, તેવા સુવર્ણથી પણ શું ? પછી પ્રભાતે સભામાં રાજાએ નીતિવિશારદોને પૂછ્યું કે:—'એ પુત્રને શો દંડ કરવો ! તે કહો.' એટલે તેઓ બોલ્યા કે:—'હે પ્રભો એક લોચન સદૃશ રાજ્યને લાયક આ તમારે એકજ પુત્ર છે. માટે એને શો દંડ હોય ?' પછી રાજાએ કહ્યું '

કે:—' મારે ન્યાયજ પ્રધાન છે. અન્યાયી પુત્રથી શું ? જો એને શિક્ષા ન અપાય, તો બીજા પણ એ પ્રમાણે કરે. માટે હે વિચક્ષણો ! એને જે દંડ થાય, તે કહો. તમારે મારૂં દાક્ષિણ્ય લેશ પણ ન કરવું. કારણ કે તમને હું અભય આપું છું.' એટલે તેઓ બોલ્યા કે:—' હે દેવ ! મનોજ્ઞ કે અમનોજ્ઞ જે જેવું કરે, તેને તેવું કરાય—એવી શાસ્ત્રોક્તિ છે. માટે જેમ એણે વત્સ ઉપરથી વાહિની ચલાવી, તેમ એને પણ તેવો દંડ કરાય, પણ એને બીજો કોઇ દંડ ન થઇ શકે.' પછી વાહિની અણાવીને અને પુત્રને રસ્તામાં સુવાડીને રાજાએ માણસોને કહ્યું કે:—' હે પ્રજાજનો ! આને પુત્રના ઉપરથી ચલાવો.' આવા પ્રકારનો તેનો આદેશ જ્યારે કોઇ પણ ઉઠાવી શક્યો નહિ, ત્યારે રાજા સર્વ લોકોની સમક્ષ આ પ્રમાણે બોલ્યો કે:—' આ મારો દુષ્પુત્ર જીવિતથી ભલે વિનષ્ટ થાઓ. જેને ન્યાય વલ્લભ નથી, તેવા સ્વીયજનથી પણ શું ?' એમ કહીને સહસા પોતે ઉઠી તેના પર બેસી દયારહિત થઇ જેટલામાં તે રાજા પોતે પુત્રની ઉપરથી તે વાહિની ચલાવવા લાગ્યો, તેવામાં ત્યાં ગાય કે વત્સ કોઇ રાજાના જોવામાં ન આવ્યા, પણ દેવી આગળ આવીને તેની આ પ્રમાણે પ્રશંસા કરવા લાગી:—' હે સત્ત્વવંતમાં અગ્રેસર ! હે ન્યાય પરાયણ ! તું જય પામ. શ્રી રામની જેમ તારા સૌભાગ્યને કોણ સ્તવી શકે ? તારો પુત્ર આયુષ્માન્ થાઓ અને તું સામ્રાજ્યનું પરિપાલન કર. આ તો મેં તારી પરીક્ષા કરી.' એમ કહીને તે દેવી અંતર્ધાન થઇ ગઇ.

एवं न्यायः पालनीयो नृपाद्यै-
र्यस्मात्सर्वाः संपदो हस्तगाः स्युः ।

शस्यानि स्युः किं विना वारिवाहं,
प्रावृट्काले प्राच्यमासद्वयोत्थम् ॥ १ ॥

એ પ્રમાણે રાજા વિગેરેએ ન્યાય પાળવો, કે જેથી સર્વ સંપત્તિઓ હસ્તગત થાય. વર્ષાકાલમાં પૂર્વના બે માસના મેઘ વિના શું ધાન્ય ઉત્પન્ન થાય?

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां चतुर्थेऽधिकारे
दशम उपदेशः ॥ १० ॥

एकादश उपदेश.

ધર્મ સદા માણસોને ફળ તો આપેજ છે, પણ પર્વ દિવસે કરેલ ધર્મ વિશેષ ફલદ થાય છે. વર્ષાકાલનું બધું એ જળ ઇચ્છિત આપે છે, છતાં સ્વાતિ નક્ષત્રનું જળ મોતી ઉત્પન્ન કરે છે. 'આયુષ્યનો બંધ પ્રાયઃ પર્વ દિવસે થાય છે.' એમ જીનેશ્વરો કહે છે, માટે તે પર્વ દિવસે સૂર્યયશા રાજાની જેમ ધર્મમાં વિશેષે દ્રઢતા રાખવી જોઇએ.

સૂર્યયશા નરેંદ્રની કથા.

અયોધ્યા નગરીમાં પ્રથમ ચક્રવર્તીનો કુશાગ્ર એવો સૂર્યયશા ભૂપ પુત્ર હતો. જેના નામથી આ વસુધાતલ પર અત્યંત વિસ્તૃત એવો સૂર્યવંશ પથિત પ્રસિદ્ધ થયો. દશ હજાર રાજાઓ

સહિત તે પર્વના દિવસે પૌષધવ્રત કરતો હતો. તેની આજ્ઞાથી તે દિવસે બાળકો પણ ભોજન કરતાં નહિ, તો આસ્તિક જનો તો શેના કરે ?

હવે એકદા તેના ગુણથી રંજિત થઇ મસ્તકને ધુણાવતા એવા ઇંદ્રને ઉર્વશી કહેવા લાગી કેઃ—'હે સ્વામિન્ ! નિમિત્ત વિના કેમ આ મસ્તક ધુણાવ્યું ?' એટલે ગૌરવપૂર્વક તેને કહ્યું કેઃ' અયોધ્યાપુરીમાં સુશ્રાવક સૂર્યયશા નરેશ્વર વિશાલ રાજ્ય કરે છે. હે કમલાનને ! તેના વ્રતની દઢતા જોઇને મેં શિર હુલાવ્યું.' (અનુમોદન કર્યું) આ સાંભળીને તે બોલી કેઃ—' હે નાથ ! એક મનુષ્યમાત્રની આવી વૃથા સ્તુતિ કેમ કરો છો ? કે જે સાત ધાતુથી બંધાયેલ અને અન્નથી પોષાયેલ એવા શરીરને ધારણ કરે છે. જો તે મારી પરીક્ષામાંથી પસાર થાય, તો તમારૂં કથન સત્ય છે, અન્યથા વૃથા છે.' આ પ્રમાણે કહીને તેની પરીક્ષા કરવાને ઉત્સુક એવી તે રંભાની સાથે અયોધ્યા નગરીમાં આવી. ત્યાં શક્રાવતાર નામના જિનમંદિરમાં આવીને પોતાના કરકમળમાં વીણા લઇને તે બંને ગીત, નૃત્યાદિક કરવા લાગી. તે વખતે સમીપના વૃક્ષોમાં રહેલા પક્ષીઓ, ભુજંગ, ગૌ, અને હરણાદિક પણ તે નાદમાં લીન થઇ, તથા ઇતર જનો પણ તેમાંજ એકાગ્ર થઇ જાણે પત્થરપર આલેખ્યા હોય તેવા સ્થિર થઇ રહ્યા. એવામાં તે માર્ગથી જતાં રાજાએ તેમનો મનોહર ગીતનાદ સાંભળ્યો તે સાંભળતાંજ રાજા સ્તંભિત થઇ ગયો. અથવા તો ગીતનાદ કોને મોહક ન થાય ? વધારે શું કહેવું, પરંતુ તે વખતે અશ્વ અને પદાતિ પ્રમુખ તેની સેના પણ આગળ

જવાને અસમર્થ થઇને તન્મય થઈ ગઇ. ત્યાં આવી સ્થિતિ જોઇને રાજાને આશ્ચર્ય થયું. પછી 'મારાં બે કામ થશે.' એમ ધારી તેમાં મોહિત થઇને રાજાએ ચૈત્યમાં પ્રવેશ કર્યો, અને ત્યાં યુગાદીશજિનની સ્તુતિ કરીને તે રંગમંડપમાં બેઠો, અને પોતાના શ્રવણપુટથી તેમના વચનરૂપ સુધારસ પીતાં તથા લોચનથી તેમના શરીરના રૂપની શોભા જોતાં તે પોતાના ચિત્તમાં એક તૃતીય પુરૂષાર્થનેજ શ્રેષ્ઠ સમજવા લાગ્યો. પછી તેમના કુલાદિક જાણવાને રાજાએ અમાત્યને આદેશ કર્યો, એટલે તે પણ તેમની પાસે જઇને પૂછવા લાગ્યો કે:—'તમે કયાંથી આવ્યા છો? તમારૂં નામ અને કુળ શું? તે જણાવો.' પછી તેમાંથી એક મંત્રીને કહેવા લાગી કે:—'અમે શ્રીમણિચૂડ નામના વિદ્યાધર રાજાની પુત્રીઓ છીએ, અને નિરંતર વીણાવિનોદ તથા ગીતાદિકમાં ઉત્સુક અને સજ્જ રહીએ છીએ. એકદા અમારા પિતાએ 'આ કન્યાઓ હવે કયા વરને આપવી?' એવી જેટલામાં ચિંતા કરી, તેવામાં પોતાને અભીષ્ટ એવા તથાપ્રકારનાં પતિના અભાવને લીધે તે ચિંતાસાગરથી નિવૃત્ત થયો. અર્થાત્ તેણે ચિંતા મૂકી દીધી. જો પતિ સ્ત્રીઓને વશ થાય, તોજ તેમને સુખ છે, અન્યથા ગાઢ વિડંબના માત્ર છે. ત્યારથી હવે અમે સત્તીર્થ સેવાજ કરીએ છીએ. રોગની જેમ ભોગમાં હવે અમારૂં મન નથી.' આ પ્રમાણે સાંભળીને રાજાની અનુમતિથી મંત્રીએ પુનઃ તેમની આગળ આદરપૂર્વક કહ્યું કે:—'આ રાજા વૃષભસ્વામીના પૌત્ર, ચક્રવર્ત્તીના પુત્ર, કલાવાન્, બલવાન્, અને સદ્ગુણી છે, તથા તમારા વચનને અન્યથા કરતાં હું એને અટકાવીશ. માટે એને ત-

મારો શ્રેષ્ઠ પતિ કરો. જો તમારા મનમાં રૂચિ હોય, તો કોઇ ભવાંતરમાં પણ આવો પતિ મળવાનો નથી. આ કોલકરારમાં શ્રી જિનેશ્વરજ સાક્ષી, કે જે સમક્ષ બિરાજમાન છે. બીજા જનોને વચમાં નાખવાની કાંઇ જરૂર નથી.' ઈત્યાદિ ગાઢ આગ્રહથી તેમનું રાજાની સાથે સવિસ્તર વિવાહમંગલ થયું. પછી તે બંનેની સાથે તેમનામાંજ લીન થઇને રાજાએ કેટલાક દિવસો ભોગસુખો ભોગવ્યાં. કારણકે ગંગા (દેવી) ની સાથે ભરતરાજાએ શું હજાર વર્ષ પર્યંત ભોગો ન્હોતા ભોગવ્યા?

એવામાં એક દિવસે 'હે લોકો! સાંભળો, કાલે અષ્ટમી-પર્વ થશે.' એ પ્રમાણે અમંદ ખેદ ઉપજાવનાર અને સ્ફુટ સ્વરે વાગતો એવો પટહ તે દેવીઓએ સાંભળ્યો. પછી જાણે જાણતીજ ન હોય તેમ ઉર્વશીએ રાજાને કહ્યું કે:—'હે નાથ! આ પટહ શાને વાગે છે?' તે બોલ્યો કે:—'હે તન્વંગી! પર્વને માટે હંમેશા આ પટહ વગાડવામાં આવે છે. ત્રયોદશી અને સપ્તમીના દિવસે મારી આજ્ઞાથી એ પટહ વગાડવામાં આવે છે. જો એમ કરવામાં ન આવે, તો પ્રમાદી જનોને પર્વ અને ઈતર દિનની ખબર કેમ પડે? વળી પર્વ દિવસે અહીં મારી આજ્ઞાથી લોકો પૌષધ, ચતુર્થવ્રત, જ્ઞાન, તપ અને ક્રિયાદિક કરે છે તથા સ્નાન, શિરોગુંફન, અને ખંડન (ખાંડવું) વિગેરેનો નિષેધ કરે છે.' આ સાંભળીને રંભા બોલી કે:—'હે નરેંદ્ર! યૌવન, સહભોગનો યોગ અને સુખસંપત્તિ વિગેરે—એ હસ્તગત છતાં પરલોકની આશાથી વૃથા શા માટે હારી બેસો છો?' રાજાએ કહ્યું કે:—'હે સુંદરી! જિનેંદ્રભાષિત પર્વવ્રત મહા ફલદાયક

થાય છે, એમ તાતનું કથન છે. તો અલ્પ સુખના માટે હું તે વ્રતનો કેમ ત્યાગ કરૂં ? જેમનામાં શીલ, તપ, ક્રિયા, વિવેક અને વૈરાગ્ય પ્રમુખ ગુણો નથી, તેમનો જન્મ અહીં પશુઓની જેમ નિષ્ફળ છે અને પરલોકમાં તેમને ઘોર દુર્ગતિ પ્રાપ્ત થાય છે.' એટલે ઉર્વશી બોલી કેઃ—'હે ભલા ભૂપતિ ! તેં જિનેંદ્રની સમક્ષ પોતાની જીભથી જે અંગીકાર કર્યું છે કે—'તમારૂં વચન મારે ઓળંગવું નહિ., શું તે પણ તું ભૂલી ગયો ? જેના વચનમાં સ્થિરતા નથી, તેને ધિક્કાર થાઓ ! પુરૂષોમાં તે પણ એક મૂર્ખ શિરોમણિ ગણાય છે. અમે ભર્ત્તારને સ્વાધીન કરવા કુલાદિકનો ત્યાગ કર્યો અને સુખની ઇચ્છાથી તને પતિ કર્યો. પણ સુખ પ્રાપ્તિને બદલે અમને ઉભય ભ્રષ્ટતા પ્રાપ્ત થઇ. હે વિભો ! હવે અમારે ક્યાં જઇને પોકાર કરવો ? આ એક વખત તારી પરીક્ષા કરી, એટલે તારૂં વચન ગયું. પણ મારૂં શું જવાનું હતું ? માટે હવે તો અમે બળતી ચિતામાં પ્રવેશ કરીને મરણને શરણ થશું. માન વિનાના જીવિતથી શું ?' ઇત્યાદિ તપ્ત સીસા સમાન તેનું વચન સાંભળીને રાજાએ પુનઃ તેને કહ્યું કે—'હે અધમ અંગના ! તું વિદ્યાધરની સુતા નથી, પણ કોઇ દુષ્ટ ચંડાળના કુળમાં ઉત્પન્ન થયેલી લાગે છે. કસ્તૂરિકાની ભ્રાંતિથી અંજન અને સુરતરૂના ભ્રમથી મેં ધત્તૂરાનું ગ્રહણ કર્યું. વળી હે પ્રિયે ! તું ભંડાર લે, અથવા તો વસુધા લઇ લે, યા તો બીજું કાંઇ જે તને ઇષ્ટ હોય, તે કરૂં, પણ મને પર્વવ્રત ન તજાવ. જેના લોપથી અવશ્ય દુર્ગતિજ મળે છે.' એટલે પુનઃ તે બોલી કેઃ—'જેને વચનની પ્રતિષ્ઠા નથી, તે પુરૂષાધમ, સમજવો. તેના મોટા દાનથી પણ શું ?' વળી પુનઃ તે કપટાં—

ગના બોલી કે:—' જો તારે વ્રતભંગ ન કરવો હોય, તો શત્રુંજયાવતાર નામનું આ ઉન્નત આદિનાથનું મંદિર પાડી નાખ! આ સાંભળીને રાજા જાણે વજ્રથી ઘાયલ થયો હોય તેવો થઇ ગયો અને મૂર્છા ખાઇને તરત જમીનપર પડ્યો. પછી ક્ષણવારમાં સાવધાન થઈને તે બોલ્યો કે:—' હે પાપિની! હે દુષ્ટે! તું નિશ્ચય મ્લેચ્છકુળમાં ઉત્પન્ન થઇ છે, કે જેથી તું આવી દુષ્ટ વાણી બોલે છે. માટે હવે તમે બંને મારી પાસેથી ચાલી જાઓ.' આથી તે સાંત્વનપૂર્વક પુનઃ બોલી કે:—' હે નાથ! તને વારંવાર કહેવું, પણ તેં મારૂં એક વચન પણ ન રાખ્યું. તો હવે તારા પુત્રનું મસ્તક મને આપ! એમ કહેતાં ' મારા વિના મારો પુત્ર ન હોય, માટે મારૂં શિરજ લઇ લે. ' આ પ્રમાણે બોલતો રાજા તરવારથી પોતાના કંઠને જેટલામાં છેદે છે, તેટલામાં તે બંને પ્રગટ થઈ અને એ રીતે તેની વારંવાર પ્રશંસા કરવા લાગી કે:—' હે વસુધાપતિ! હે ચક્રીનંદન! હે સર્વ ઇંદ્રિયને શાંત કરનાર! હે સંગવર્જિત! રાજેંદ્ર, તું જય પામ. ' પછી પૂર્વ સંબંધ કહી અને પુષ્પ, સુવર્ણ અને રત્નની વૃષ્ટિ કરીને તે બંને સ્વર્ગમાં ગઇ અને રાજાએ પણ વિશેષ ધર્માચરણપૂર્વક ચિરકાલ પ્રાજ્ય (વિશાલ) સામ્રાજ્ય પાળ્યું, અને પ્રાંતે તાતની જેમ કેવલજ્ઞાન ઉપાર્જન કરીને તે ભરતસુત સૂર્યયશા રાજા પરમપદ પામ્યો.

આ પ્રમાણે હે ભવ્યજનો! જો તમારે સમસ્ત સુખ સંપત્તિને સ્વાધિન કરવી હોય, તો ધર્મમાં અતુલ દઢતાને ધારણ કરો.

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां चतुर्थेऽधिकारे
एकादश उपदेशः ॥ ११ ॥

દ્વાદશ ઉપદેશ.

હઠથી નહિ, પણ વિધિપૂર્વકજ આરાધન કરતાં ધર્મ ફળને આપે છે. વિધિ વિના વ્યય કરતાં પણ કામધેનુએ રાજાને દૂધ આપ્યું નહિ. તામલિ તાપસે સાઠ હજાર વર્ષ પર્યંત સ્વરૂચિપૂર્વક તપસ્યા કરી, છતાં વિવેકવિના તે અલ્પ ફળને પામ્યો. માટે બહુ કષ્ટ કે યોગથી શું ? વળી કૂરગડુમુનિ નિત્ય ભોજન કરતાં પણ વિવેકની સહાયતાથી કેવલજ્ઞાન પામ્યા અને અન્ય શ્રમણો તપસ્યા કરતાં છતાં પણ તે (જ્ઞાન) મેળવી ન શક્યા.

પ્રથમ શ્લોકમાં કહેલ દૃષ્ટાંત આ પ્રમાણે:—

ધનદશ્રેષ્ઠીની કથા.

પૃથિવીપુરમાં ધનદ નામે શ્રેષ્ઠી હતો. તેને પ્રાયઃ ગોરસ વધારે પ્રિય હતો. દધિ, દૂધ અને દૂધપાક–તે પોતે જમતો અને બીજા મિત્રોને જમાડતો હતો. તેથી તેનું ગોધન બહુ વધી પડ્યું. કોઈ દ્રોણ પ્રમાણ દૂધ આપનારી, કોઈ વંજુલા અને કોઈ સુવ્રતા એમ બહુ ધનનો વ્યય કરીને તેણે સેંકડો ગાયોનો સંગ્રહ કર્યો હતો.

હવે એકદા ધનાર્થી તે શ્રેષ્ઠી પાંચ છ સારી ગાયોને વહાણમાં લઈને અનુક્રમે રત્નદ્વીપમાં ગયો. ત્યાં સમુદ્રતટપર વહાણોને બાંધીને પોતાના સાર્થને સુસ્થાને બેસાર્યો. પછી સુગંધિ ઘી, સરસ સાકરના યોગથી શ્રેષ્ઠ એવા દૂધપાકના અનેક થાળ ભરીને તે શ્રેષ્ઠીએ શ્રેષ્ઠ છતાં રત્નોને ઢેફાની જેમ તજીને અપૂર્વ

પણાથી ત્યાંના રાજાને તેનું ભેટણું કર્યું. એટલે સર્વ ઇંદ્રિયોને સુખદ એવા તેનો ઇચ્છાપૂર્વક કંઠ સુધી આસ્વાદ લઇને ઉદ્‌ગાર કરી પ્રસન્ન થયેલ રાજાએ તેને કહ્યું કેઃ—'હે શેઠ! આ શું કહેવાય? એની નિષ્પત્તિ કેમ થાય? અથવા તો સ્વર્ગ કે પાતાલનું આ પીયૂષ (અમૃત) ભોજન છે?' શ્રેષ્ઠીએ કહ્યું કેઃ—'હે દેવ! એ દૂધપાક છે, તે ભાગ્ય વિના પ્રાપ્ત ન થાય. પરંતુ પ્રસન્ન થયેલ એક મારી કામધેનું મને દરરોજ તે આપે છે.' આથી સંતુષ્ટ થઇને રાજાએ તે શ્રેષ્ઠીની જકાત માફ કરી અને તેથી ક્રય વિક્રય કરતાં ત્યાં તેને બહુ લાભ થયો. પછી અવસરે પોતાના નગર તરફ જવાની ઇચ્છાથી તેણે રાજાને જણાવ્યું કેઃ—'હે દેવ! જો આપની આજ્ઞા હોય તો હું સ્વદેશમાં જાઉં.' રાજાએ કહ્યું કેઃ—'પરમ અન્નને આપનારી તારી પાસે જે કામધેનુ છે, તે મને આપ, કે જેથી આપણો પ્રેમ નિશ્ચલ થાય.' તેણે કહ્યું કેઃ—'હે પ્રભો! આપ પ્રસન્ન રહો. એમાં કહેવાનું શું હતું? ખુશીથી તે ગ્રહણ કરો.' એમ કહીને તે રાજાને આપી અને પોતે પોતાના નગરે ગયો. હવે રાજાએ તે કામધેનુને એક શ્રેષ્ઠ મકાનમાં રાખી અને આવી આવી રીતે તે તેની આરાધના કરવા લાગ્યો; ભોગના યોગથી અનેકવાર તેની વિવિધ પૂજા કરવામાં આવતી, તેને ચામરો વીંજવામાં આવતા, તેના પર છત્રો ધરવામાં આવતાં અને પાંચસો સોનામહોર અર્ચીને રાજા તેને ભોગ ધરતો અને બીજાઓપાસે તે ગીત તથા નૃત્યાદિક ઉત્સવો કરવતો હતો અને કહેતો કેઃ—'હે માત મને પરમાન્ન આપો.' પણ નિબિડ અજ્ઞાનથી પીડિત એવો તે બિચારો તેના ઉપાયને

જાણુતો ન હતો. પછી કેટલેક દિવસે ચારા, પાણી અને શુશ્રૂષાના અભાવથી તે બિચારી મરણ પામી. એટલે રાજા પોતાને પાપી સમજીને નિંદવા લાગ્યોઃ—' અહો ! આપણું અભાગ્ય, અહો ! આપણા પાપનો સમૂહ, કે હાથમાં આવેલ રત્નને પણ દૈવે એક ક્ષણવારમાં ઉડાડી દીધું.

હવે એકદા તેજ શ્રેષ્ઠી ત્યાં આવ્યો અને તેવીજ રીતે તેણે રાજાને ભેટણું કર્યું. એટલે રાજાએ તેને કહ્યું કેઃ—' હે ભદ્ર! અમારા હિતની ઇચ્છાથી તેં જે અમને કામધેનુ આપી, તેણે એક વખત સ્વલ્પ પણ પરમાન્ન અમને આપ્યું નહિ. વળી અમોએ તેની અનેક પ્રકારે ભક્તિ કરી, પરંતુ તેણે કોઇ વખત પણ અમને કંઈ પ્રત્યુત્તર પણ ન આપ્યો. પરમાન્ન તો દૂર રહો, પરંતુ તેણે તેની વાત પણ ન કરી. તો શું તેમાં અમારૂં અભાગ્ય હશે યા બીજું કંઇ કારણ છે ? ' શ્રેષ્ઠીએ કહ્યું કેઃ–' હે રાજેંદ્ર ! એને શુષ્ક તૃણાદિક અપાય, અને રોજ બે વાર દોહીને દૂધ લેવાય. તે દૂધ ચોખા સાથે રાંધવાથી દૂધપાક થાય–આવો તેનો વિધિ છે. ઇતર વ્યય કરવાથી શું ? ' પછી ઉપાય જાણવાથી રાજા દૂધપાક તૈયાર કરાવતો અને તેથી તે સુખી થયો. તથા તે વિધિ તેણે બીજાઓને પણ બતાવ્યો.

આ પ્રમાણે વિધિ પૂર્વક આરાધેલ ધર્મ પણ માણસોને સુખદાયક થાય છે, અને વિધિ વિના આરાધેલ છતાં તે અલ્પ ફલપ્રદ થાય છે. કારણ કે—

' નિર્વિવેકી અને વિવેકી જનોએ પૂર્વ ભવમાં ધર્મનું આરાધન કરેલ હશે, પણ વિધિ અવિધિના ભેદથી અવિવેકી

શ્રીપત્તિ (લક્ષ્મીનો દાસ) અને વિવેકી શ્રીપતિ (લક્ષ્મીનોસ્વામી) -એમ યથાક્રમે બંને આરાધક છતાં ફળમાં ભેદ જોવામાં આવે છે.

एवं भो भविकाः ! निपीय विधिना धर्मामृतं तात्त्विकं.
भुक्त्वा मानवदेवसेवितपदाः संसारसौख्यावलीः ।
निष्प्रत्यूहतयाप्रयास्यथ शिवं यूयं कुदेवादिकं,
मा तत्र क्षिपतोल्बणं तु गरलं चेद्वो विवेको हृदि ॥ १ ॥

આ પ્રમાણે હે ભવ્ય જનો ! વિધિથી તાત્ત્વિક ધર્મામૃતનું પાન કરીને અને માનવ અને દેવોથી સેવિત એવાં સંસાર સુખો ભોગવીને નિર્વિઘ્ન પણે તમે શિવ મંદિરમાં જઈ શકશો. પણ જો અંતરમાં વિવેક હોય, તો ઉગ્ર ગરલ સમાન કુદેવ, કુગુરૂ વિગેરેના સેવન રૂપ અતિ ઉગ્ર વિષ તે (સદ્ધર્મ—અમૃત) માં નાંખશો નહીં અર્થાત્ અમૃત સમાન સુદેવ—ગુરૂ—ધર્મનું સેવન કરી પછી અન્યથા આચરણ કરશો નહીં.

॥ इति श्रीउपदेशसप्ततिकायां चतुर्थेऽधिकारे
द्वादश उपदेशः ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीपरमगुरुतपागच्छनायकश्रीसोमसुंदरसूरिक्रमक-
मलमरालमहोपाध्यायश्रीचारित्ररत्नगणिविनेयपर-
माणुपंडितसोमधर्मगणिविरचितायां
श्री उपदेशसप्ततिकायां चतुर्थः सामान्यधर्माधिकारः





॥ गृहस्थधर्माधिकारः पंचमः ॥

प्रथम उपदेश.

શ્રી ધર્મજ સૌખ્ય લક્ષ્મીનું અક્ષય નિધાન અને ભવાંતરમાં પણ તે સ્વપરને હિતકારી છે. આ સંબંધમાં શ્રી ધર્મરાજના ચરિત્રને સમ્યક્ રીતે સાંભળીને તે ધર્મમાં કોણ મંદ આદર કરે ?

શ્રી ધર્મરાજની કથા.

આ ભરતક્ષેત્રમાં સર્વમંગલા નામે નગરી છે. ત્યાં શત્રુઓને ત્રાસ આપનાર એવો ભદ્રશેખર નામે રાજા હતો. તે રાજા એકદા પરિવાર યુક્ત સભા ભરીને બેઠો હતો. તે વખતે કોઈ ત્રિકાલજ્ઞ નિમિત્તિયો ત્યાં આવ્યો. એટલે રાજાએ આપેલ યથોચિત આસનપર તે બેઠો અને હાથ ઉંચો કરીને તેણે સર્વને આશીર્વાદ આપ્યો. પછી રાજાએ પૂછ્યું કે:—'હે નિમિત્તજ્ઞ ! ભવિષ્ય કેવું છે ? તે કહે' એટલે તે બોલ્યો કે:—'હે પ્રભો ! ભાવિ સ્વરૂપ હમણા મને પૂછો નહિં. આથી રાજાએ વિશેષ ઉત્સુક થઇને પૂછ્યું કે:—'શું કોઇ દૈવથી ઉત્પાત થવાનો છે ? શું થશે ? તેણે કહ્યું કે:—'બાર વર્ષનું દુર્ભિક્ષ પડશે ! આ

પ્રમાણે અકાંડે વજ્રપાત સમાન તેનું વચન સાંભળીને દુઃખિત થઇને રાજા બોલ્યો કેઃ— ' અરે ! જરા વિચારીને બોલ ! એટલે સર્વ સભાસદોની સમક્ષ પુનઃ નિમિત્તજ્ઞ બોલ્યો કેઃ—' જો મારૂં કથન અન્યથા થાય, તો મારી જીભ છેદી નાખવી ! આવી તેની દૃઢ પ્રતિજ્ઞા સાંભળીને તેને પોતાના નગરમાંજ રાખ્યો, પણ બીજે ક્યાંય જવા દીધો નહિ. તથા સર્વ લોકો પોતપોતાના કુટુંબ પ્રમાણે દેશાંતરમાં જઇને પણ આદરપૂર્વક ધાન્યનો સંગ્રહ કરવા લાગ્યા. પોતપોતાની ધનની દરકાર ન કરતાં તે વખતે લોકો ધાન્યજ મેળવવા લાગ્યા, કારણ કે માણસોના પ્રાણો અન્નના આધારે રહેલા છે.

હવે ઉષ્ણકાલ અતિક્રાંત થતાં. વર્ષાકાલ આવ્યો અને લોકો બધા ઉંચે જોવા લાગ્યા છતાં મેઘ વરસ્યો નહિ. એટલે ભાવિ દુર્ભિક્ષની શંકાથી લોકો બહુ ખેદ પામવા લાગ્યા. કારણ કે ધર્મ કર્મની વ્યવસ્થા સુભિક્ષને અનુસરીને થાય છે. એવામાં શ્રાવણ મહિનામાં કૃષ્ણ દ્વિતીયાના દિવસે ઉત્તર દિશામાં એક વાદળું ચડયું, એટલે લોકો તેની સન્મુખ જઇને વાદ્ય વગાડવા લાગ્યા તથા ગીત, નૃત્યાદિક કરવા લાગ્યા તે વખતે જાણે તેમના ભાગ્યથી આકૃષ્ટ થયો હોય તેમ મેઘ વરસ્યો એટએ રાજાએ નિમિત્તજ્ઞને કહ્યું કેઃ—' તારૂં વચન અન્યથા થયું. માટે જેમ તેમ બોલનાર એવા તારી જીભનો હવે છેદ કરૂં. ' પછી નિમિત્તજ્ઞ બોલ્યો કેઃ—' હે દેવ ! જેટલામાં મુને કોઇ જ્ઞાની મુનિ મળે, અને તેની પાસે હું શાસ્ત્રાર્થનો નિર્ણય કરૂં, ત્યાંસુધી કંઇક રાહ જુઓ.' પછી ખેડુતો હર્ષિત થઇને

કૃષિ કરવા લાગ્યા અને ધાર્મિક લોકો જેમ સુપાત્રે બીજ વાવે તેમ તેઓ ક્ષેત્રોમાં બીજ વાવવા લાગ્યા. તે વર્ષે અન્ય વર્ષની નિષ્પત્તિ કરતાં બમણી પેદાશ થઇ એટલે રાજા પણ પૌરજનો સહિત બહુ ઋદ્ધિવાળો થઇ ગયો.

એવામાં, કાર્તિકમાસ ઉતરતાં હેમંત સમયમાં એકદા કોઇ કેવલજ્ઞાની આચાર્ય ત્યાં પધાર્યા. એટલે તે દેવજ્ઞ તથા પૌરજનો સહિત રાજા તેમને વંદન કરવા ગયો, અને તેણે નૈમિત્તિકની ઉક્તિ અન્યથા થવાનું કારણ તેમને પૂછ્યું. આચાર્ય બોલ્યા કેઃ—'હે રાજન્! આજ તારા નગરમાં ધનદત્ત શ્રેષ્ઠી અને ધનેશ્વરી તેની ભાર્યા છે. તેમને એકદા સર્વને સુખકારી એવો પુત્ર ઉત્પન્ન થયો. જેના પ્રભાવથી તમારા જેવાઓના હર્ષને માટે મેઘ વરસ્યો. એ પૂર્વભવમાં એક ભિક્ષાચર રંક હતો. એકદા કોઇક મુનિને જોઇને તેણે હર્ષથી વંદના કરી. એટલે તે મુનિએ તેને કહ્યું કે—'હે ભદ્ર! કંઇક નિયમ લે. નહિ તો પણ અત્યારે તારી પાસે કંઇ તેવી સંપત્તિ નથી.' પછી તેણે તેમની પાસે દેવવંદન વિગેરે નિયમો લીધા, અને અનુક્રમે ભાગ્યયોગે તે પણ મહર્દ્ધિક થયો, એટલે પોતાની પૂર્વાવસ્થા સંભારીને તેણે પગલે પગલે અન્ન, પાનાદિકની સત્રશાળાઓ મંડાવી અને તે વખતે તેણે રંકથી માંડીને રાજા પર્યંત એક લાખ મનુષ્યોને તથા હજારો સાધુઓને પણ સંતોષ પમાડ્યા. પછી પોતાના જીવિત પર્યંત તેણે અખંડ દાન પુણ્ય કર્યું અને તેથી આ ભવમાં સર્વ પ્રાણીઓનો આધારભૂત થયો. જો એ બાળક જન્મ્યો ન હોત, તો દુષ્કાળ થાત. કારણ કે અન્ય

દેશોમાં અલ્પજ વરસાદ થયો છે. માટે આ નૈમિત્તિક યથાર્થ-વાદી છે, એની અવહીલના કરીશ નહિ.' આ પ્રમાણે સાંભળી વિસ્મિત થયેલો રાજા સૂરિમહારાજને નમસ્કાર કરીને ઘરે ગયો અને ત્યાં રાજાએ પેલા બાળકને અણાવીને તેનેજ રાજા બનાવ્યો. ઔચિત્યાચરણમાં શું સજ્જનો કદાપિ પ્રમાદ કરે ? વળી સ્મૃતિમાં પણ એવું કહ્યું છે કે—'જેના આધારે પ્રજા સૌખ્ય અને સમૃદ્ધિ પૂર્વક પ્રવર્તે, તેજ રાજા કહેવાય છે.' પછી રાજા પ્રમુખ જનોએ તેનું ધર્મરાજ એવું નામ રાખ્યું અને તે બાળરાજા તેજમાં બાળસૂર્યની જેમ દીપવા લાગ્યો. તેની આજ્ઞા જે દેશમાં ફરતી, ત્યાં દુર્ભિક્ષ થતું નહિ. વળી અન્ય દેશોમાં ધાન્ય વેચીને તેણે ધન મેળવ્યું. આ પ્રમાણે ધર્મકુશળ એવા તેણે ચિરકાલ પર્યંત શ્રીજિનશાસનની પ્રભાવના કરી અને અંતે પ્રવ્રજ્યા આદરી ઉત્કટ તપ તપી તે રાજા શિવસંપત્તિને પામ્યો.

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे

प्रथम उपदेशः ॥ १ ॥

द्वितीय उपदेश.

વધારે શું કહેવું, પણ જીવદયામાં તત્પર મનવાળા મનુષ્યો ભવોભવ, સામ્રાજ્ય, આરોગ્ય, પ્રધાનરૂપ શુભ અને લાંબુ આયુષ્ય તથા અનેક સંપત્તિઓને પામે છે. વેદ, સ્મૃતિ અને

પુરાણમાં પણ અનેક પંડિત પુરૂષો જેની પ્રધાનતા સ્વીકારે છે અને શ્રેષ્ઠતર એવા જિનાગમમાં જેનું વિશેષ રીતે પ્રતિપાદન છે, તે જીવદયાને કોણ ન માને ? વળી એમ પણ સાંભળવામાં આવે છે કે—કપોતે પોતાના મંદિરમાં આવેલ શત્રુને પણ દયાયુક્ત ચિત્તથી પોતાનું માંસ અર્પણ કરીને નિમંત્રિત કર્યો હતો.

કપોતની કથા.

મનોહર વૃક્ષોવાળા કોઈ જંગલમાં અન્યોન્ય અત્યંત અનુરાગી એવા કોઇ કપોતદંપતી વસતા હતા. એકદા તે વનમાં કોઇ જ્ઞાની સાધુ આવ્યા અને લાભ જાણીને તે દંપતિની પાસે તેમણે ધર્મદેશના આપી, તે મુનિનું વચન સાંભળીને તે વખતે તે કપોત યુગલ યથોચિત ધર્મ આચરતાં સમય ગાળવા લાગ્યું.

એકદા માઘ મહિનામાં યમ સમાન, ક્રૂરાત્મા અને હાથમાં પાશ તથા પંજર લઇને કોઇ શીકારી ત્યાં આવ્યો. તે પાપી, સ્થાને સ્થાને પક્ષીઓને બંધન કરતો જ્યાં પેલા કપોત દંપતી આનંદે રહે છે, ત્યાં આવ્યો. તે વખતે ખોરાક લેતી કપોતીને તે પાપીએ બાંધીને પાંજરામાં નાખી દીધી. અહા ! પાપીઓને શું અકૃત્ય હોય ? એવામાં હિમ સંસિક્ત અને પવનના ઝપાટાપૂર્વક થયેલ જળ વૃષ્ટિથી કંપતા શરીરે સાંજે તે પારાધીએ પેલા વૃક્ષનો આશ્રય લીધો. અસહ્ય અને અતિશય શીતથી શરીર વ્યાપ્ત થઇ જતાં અનુક્રમે તે તદ્દન મૂર્છા પામ્યો. અહો ! પાપનું ફળ કેવું ભયંકર હોય છે ? એવામાં પંજરમાં રહેલ કપોતીએ વૃક્ષની પોલમાં રહેલ પોતાના પતિ કપોતને કહ્યું કે:—'હે સ્વામિન્ ! તું મારૂં વચન સાંભળ—આ શિકારી તારો

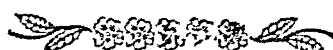
આવાસનો આશ્રય લઇને સુતો છે અને તે શીતાર્ત્ત તથા ક્ષુધાર્ત્ત છે. માટે એનું કંઇક હિત કર. 'મારી પ્રિયાને એણે બંધનમાં નાંખી છે.' એમ ધારીને એના પર વૃથા રોષ ન કર. કારણ કે હું તો સ્વકૃતપૂર્વના કર્મમર્મથીજ બંધન પામી છું. કહ્યું છે કે-'દારિદ્રય, રોગ, દુઃખ, બંધન અને વ્યસન-એ આત્માના અપરાધરૂપજ ફળો પ્રાણીઓને મળે છે.' માટે મારા બંધન-નિમિત્તના દ્વેષનો ત્યાગ કરીને અને ધર્મમાં મનને સ્થિર રાખી તું એને જીવાડ અને ભોજન કરાવ.' પછી તે અગ્નિના સ્થાન આગળ જઇને બળતા કાષ્ઠ અને તૃણાદિકને પોતાની શકત્યનુસારે ચંચુથી લઇને જ્યાં લુબ્ધક શીતથી મૂર્ચ્છિત થઇ પડ્યો હતો, ત્યાં તરત આવ્યો અને શુષ્ક પાંદડામાં તેણે તે અગ્નિ સત્વર જગાડ્યો તથા તે લુબ્ધકને તેણે કહ્યું કે—'અહીં નિરાંતે તારૂં અંગ તપાવ.' અહો! પક્ષીઓમાં પણ કેવી લોકોત્તર ઉપકારબુદ્ધિ હોય છે! પછી તે કંઈક સાવધાન થયો, એટલે પોતે તેને કહ્યું કે-'મારી પાસે કંઇ સાધન નથી, કે જેથી તારી ક્ષુધાને હું દૂર કરૂં. આ જગતમાં કેટલાક હજારોનું પોષણ કરે છે કેટલાક લાખોનું પોષણ કરે છે અને મારા જેવા દુર્ભાગી ક્ષુદ્રને પોતાનું પોષણ કરવું પણ ભારે થઇ પડે છે. જે એક અતિથિને ભોજન આપવા પણ સમર્થ નથી, તો બહુ કલેશવાળા તેના ઘરમાં રહેવાથી ફળ શું? માટે દુઃખના જીવિતરૂપ આ શરીરને એવી રીતે સાધું કે જેથી યાચકનો સમાગમ થતાં 'કંઈ નથી' એ શબ્દો બોલવાનો ફરીવાર વખત ન આવે. માટે હે ભદ્ર! મારૂં સેકાઇ ગયેલું માંસ તારે લઈ લેવું.' એમ કહીને તે અગ્નિમાં પડયો અને ક્ષણવારમાં

ભસ્મીભૂત થઈ ગયો. આ જોઈને લુબ્ધકે વિચાર કર્યો કેઃ—‘ અહો ! આ કપોત કોઈ મહા દયાલુ લાગે છે, કે જેણે મારા માટે પોતાનું શરીર અગ્નિને સ્વાધીન કર્યું. જે મનુષ્ય પાપ કરે છે, તેનો આત્મા ખરેખર તેને પ્રિય નથી. કારણ કે પોતે કરેલ પાપ પોતાનેજ ભોગવવું પડે છે. અહો ! એ કપોત મહાત્માએ પોતાનું માંસ આપતાં ક્રુર એવા મને એક પ્રકારનો પ્રતિબોધ આપ્યો છે. માટે ખરેખર હું નિષ્કરૂણ (નિર્દય) જનોમાં અગ્રેસર અને એ કપોત દયાલુ જનોમાં અગ્રેસર થયો. આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તેણે પાપના મંદિરરૂપ એવા તે પંજરને ભાંગી નાખ્યું, અને તે બિચારી કપોતીને મુક્ત કરીને લુબ્ધકે પોતાના ઘરે આવી કુટુંબનો ત્યાગ કરીને તાપસવ્રત અંગીકાર કર્યું, અને તીવ્ર તપ તપતાં એકદા વનમાં દવાનલ લાગતાં નિર્ભય થઇને ધ્યાનમાં રહેલ એવો તે દવથી દગ્ધ થઇને મરણ પામ્યો. તથા કપોતી પણ કપોતથી વિયોગ પામતાં સંસારથી વિરક્ત થઇ દયાધર્મમાં આસક્ત રહીને આયુ પૂર્ણ થતાં મરણ પામી. એ પ્રમાણે દયા-ધર્મમાં તત્પર એવા તે ત્રણે જીવો સ્વર્ગમાં દેવ થયા. અહો ! દયાનું ફળ તો જુઓ !

દયાના સંબંધમાં આ પુરાણ સંબંધી સંબંધ લખવામાં આવ્યો છે. માટે સર્વ ભવ્યોએ સર્વ જંતુઓ પર અનુકંપા રાખવી.

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे

द्वितीय उपदेशः ॥ २ ॥



તૃતીય ઉપદેશ.

જેમની ધર્મપર દૃઢતા હોય, તેમનો વ્યંતરાદિક પણ પરાભવ કરી શકતા નથી. પોતાની શુદ્ધ બુદ્ધિથી તે મહાશ્રેષ્ઠીએ શું દેવી અને દેવને ન્હોતા છેતર્યા ?

શ્રેષ્ઠીરાજની કથા.

દેવપુરમાં કુળને આનંદ આપનાર, કુળમાં ઉત્તમ, જિનધર્મમાં દૃઢ અને દેવતાઓથી પણ અક્ષોભ્ય એવો એક કોટિધ્વજ શેઠ હતો. પરંતુ પુત્રના અભાવથી કંઇક ચિંતાતુર થયેલા એવા તેને લોકો કહેવા લાગ્યા કેઃ—'નગરની અધિષ્ઠાયક દેવી સાચા પરચાવાળી છે, તેની પાસે માનતા કેમ નથી માનતો ? આ બહુ ધનથી શું ? ઈત્યાદિ લોકોના કહેવાથી શેઠ તેમને જવાબ આપતો કેઃ—'હે મૂર્ખ જનો ! યક્ષાદિકની જો એકવાર ભક્તિ કરવામાં આવે તો તે વસ્તુ મેળવવાની ઇચ્છાથી તેમની વારંવાર માનતા કરવા જતાં આત્માને તેથી શું સુખ મળે ? કારણ કેઃ—'વેષને વંદન કરનારા એવા બ્રાહ્મણો વિગેરેના તથા યક્ષ, રાક્ષસોના ભક્ષ્યસ્થાન એવા ભક્તો વિરત જનોથી દૂરજ ભાગતા ફરે છે. ઇત્યાદિ તત્ત્વ વાર્ત્તાથી પોતાના મનને દૃઢ કરતો તે શ્રેષ્ઠી બહુજનો એ કહ્યા છતાં સમ્યક્ત્વમાં દૃઢજ રહ્યો, પણ તેની પત્ની મુગ્ધ સ્વભાવની હોવાથી લોકકથન સાંભળીને તે દેવીના ભવનમાં આવીને ભક્તિપૂર્વક આ પ્રમાણે કહેવા લાગીઃ—'હે માત ! જો તમારા પ્રસાદથી મને પુત્રપ્રાપ્તિ થશે, તો હું ત્રણ લક્ષની તારી

પૂજા કરીશ, પછી અનુક્રમે તેને પુત્ર થયો, તેણે પોતાની માનતા ભર્તારને જણાવી અને તેના કદાગ્રહથી તેણે પણ તેનું વચન માન્ય રાખ્યું. પછી શ્રેષ્ઠીએ ત્રણ લાખના રત્નજડિત સુવર્ણનાં ત્રણ પુષ્પ કરાવીને પોતાના કુટુંબ તથા પૌર જનો સહિત દેવીનાં ભવનમાં આવીને સવિસ્તર પૂજા પૂર્વક તેના ભાલ તથા બે ભુજ-પર ત્રણ પુષ્પ રાખીને તેની પૂજા કરી, અને પછી શેષાને માટે તે ત્રણે પુષ્પ લઇ પોતાની પત્નિ તથા પુત્રને આપીને દૃઢ સમ્યક્ત્વી એવો તે પોતાના ઘરે આવ્યો આ તેનું શઠ ચરિત્ર જોઇને વિલક્ષ થયેલી વ્યંતરીએ એકાંતમાં પોતાના મિત્ર સીહ-ડને પોતાનું દુઃખ જણાવ્યું કે:—'શું કરૂં ? આ શઠ શ્રેષ્ઠીએ પુષ્પોની પૂજા કરી અને તે યુક્તિપૂર્વક લઇ લેવાથી મને છેતરી.' આ સાંભળીને દુઃખિત એવી તેને સીહડ કહેવા લાગ્યો કે:—'તું તો સારી રીતે છુટી ગઇ પણ મારી જે એણે કદર્થના કરી, હે મૂર્ખે ! તે ચરિત્ર તો સંભાળ—

પૂર્વે એકદા એના વહાણો ગત પ્રાય થઇ ગયા તેની બહુ તપાસ કર્યા છતાં કયાંય પત્તો નજ મળ્યો એટલે તેના બંધુએ છાની રીતે મારી માનતા કરી કે:—'જો વહાણો સહી સલામત ઘરે આવશે તો તને એક મહિષ (પાડો) આપીશ પછી મેં પણ પોતાની શક્તિ સમુદ્રનું મથન કરીને તે વાહાણો લાવી આપ્યા, એટલે બધાના મનમાં હર્ષ થયો વળી તેમાં રહેલ વસ્તુઓનો ક્રય વિક્રય કરતાં જે મોટો લાભ થયો તે પણ મારોજ પ્રતાપ સમજવો પછી અવસરે એના ભ્રાતાએ પણ પોતાની માનતા શેઠની આગળ કહી એટલે તે ધુર્તે તેને કહ્યું કે:—માનેલું હું કરીશ.'

એમ કહી એક તરૂણ મહિષ મારા મંદિરમાં લાવીને તે બોલ્યો કે:—'હે યક્ષ ! મારા ભાઇએ જે તારી માનતા કરી છે, તે આ તારૂં ભક્ષ્ય ગ્રહણ કર.' આ પ્રમાણે કહેતાં તે દુરાશયે તેના કંઠમાં રહેલ દોરડી નિબિડ ગાંઠ દઇને મારા ગળામાં બાંધી દીધી, અને ભક્તિના મિષથી વિવિધ રીતે પૂજાદિક કરાવી તથા તેણે મારી આગળ ભેરી પ્રમુખ વાદ્યો વગડાવ્યા, એટલે તેનોજ અવાજ સાંભળતાંજ ત્રાસ પામતા તે મહિષે મારી એવી કદર્થના કરી કે જેથી મારૂં સર્વાંગ ખરડાઇ ગયું. એક બાજુ પાપી પાડો મને ઢેફાની જેમ ખેંચવા લાગ્યો અને બીજી બાજુ કૌતુકી લોકો તાળીઓ દઇને હસવા લાગ્યા. એવા અવસરમાં હાહાકાર કરતાં સેંકડો બ્રાહ્મણો દોડ્યા અને બોલ્યા કે:—'હે શ્રેષ્ઠિરાજ ! અમારા દેવની શામાટે કદર્થના કરો છો ? હવે તરત એને મૂકી દો, વિલંબ અમારાથી સહન થઇ શકે તેમ નથી.' ઇત્યાદિ બ્રાહ્મણોના બહુ કહેવા ઉપરથી તે શ્રેષ્ઠી બોલ્યો કે:—'હે લોકો ! અમૃતનું ભોજન કરનારા દેવતાઓ અભક્ષ્યનું ભક્ષણ કરતાં નથી. આવી જીવ હિંસા કરાવવી એ તેમની ક્રીડામાત્ર છે.' આ પ્રમાણે કહીને લોકો અને બ્રાહ્મણોના કદાગ્રહથી તેણે યમમુખના જેવા તે મહિષથી મને છોડાવ્યો અને પછી કેટલાક ઉત્તમ બ્રાહ્મણોએ પ્રાસાદમાં મારી મૂર્ત્તિ સ્થાપન કરી. એ પ્રમાણે આ દુરાત્માએ મારો બધો મહિમા ધ્વસ્ત કરી દીધો. માટે કંઇ ખેદ કરીશ નહિ, પણ મૌનજ પકડી બેસ. કારણકે મનુષ્ય જ્યારે નિઃશૂક અને નિર્દય થાય, ત્યારે તેની આગળ દેવતાઓ પણ નિર્બળ બની જાય છે.'

આ પ્રમાણે કહીને સીહડ વ્યંતર તથા તે દેવી સ્વસ્થાન

ગયા, અને તેના કુટુંબનો દૂરથીજ ત્યાગ કરીને તે અન્યત્ર પોતાની ઇચ્છાનુસાર રહેવા લાગ્યા.

એ રીતે ચિરકાલ સમ્યકત્વનું પાલન કરતાં, ભદ્રક જીવોને પ્રતિબોધ આપતાં આર્હત શાસનની પ્રભાવના કરતા અનુક્રમે તે શ્રેષ્ટી બંને લોકોના અદ્‌ભુત સૌખ્યનું ભાજન થયો.

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे

तृतीय उपदेश ॥ ३ ॥

चतुर्थ उपदेश,

તે ધર્મમાં પણ વિચક્ષણ પુરૂષોએ યતનાને પ્રધાન કહી છે, પરંતુ તે ગૃહસ્થોને દુર્લભ છે. તથાપિ તે યતનામાં પ્રયત્ન કરતાં આસ્તિક ભવ્ય મૃગસુંદરીની જેમ સુખભાજન થાય છે.

મૃગસુંદરીની કથા.

શ્રીપુરમાં રામચંદ્ર જેવો જનવત્સલ એવો શ્રીષેણ નામે રાજા હતો. તેને જાણે બીજો ઇંદ્રજ હોય તેવો દેવરાજ નામનો પુત્ર હતો. જન્મથી તેના અંગમાં દુષ્ટ કોઢરોગ થયો હતો, તેના અનેક પ્રતિકાર કર્યા, પણ તે બધા વિફલ ગયા એમ કરતાં સાત વર્ષ થઇ ગયા, એટલે એક દિવસે રાજાએ નગરમાં બધા લોકોને પટહ ઘોષણાથી જાહેર કર્યું કેઃ—' પંડિત કે અપંડિત–જે કોઇ મારા પુત્રનો રોગ દૂર કરશે, તેને અર્ધ રાજ્ય આપવામાં આવશે.

હવે તે નગરમાં યશોદત્ત વ્યવહારીની લક્ષ્મીવતી નામે

સુતા હતી. તે ધર્મમાં તથા વિશેષરીતે શીલમાં બહુ તત્પર હતી. તેણે પોતાના શીલની પરિક્ષા કરવા પટહને અટકાવીને પોતાના હસ્તસ્પર્શ માત્રથી કુમારને સ્વસ્થ કર્યો. પછી હાથી, અશ્વ અને રથના દાન પૂર્વક કુમારની સાથે તેનો વિવાહમહોત્સવ થયો, અને અવસરે તે કુમારને રાજ્યાસનપર બેસારીને રાજાએ પ્રવ્રજ્યા અંગીકાર કરી. કારણ કે ઉત્તમ જનો અવસરને જાણનારા હોય છે. પછી સ્વર્ગના રાજ્ય સમાન સામ્રાજ્ય ભોગવતાં દેવરાજે એકદા ત્યાં પધારેલા પુટ્ટિલાચાર્યને વંદન કરીને પૂછ્યું કે:—'હે પ્રભો! મને સાત વર્ષ વ્યાધિ શાથી થયો અને તે એ રાણીના માત્ર કર સ્પર્શથી શી રીતે નાશ પામ્યો,' એટલે ગુરૂ બોલ્યા કે:-

'હે રાજન્! પૂર્વ ભવમાં તું દેવદત્ત નામે શ્રેષ્ઠિ હતો. તેને ગોપા, દેપા, સિવા અને શૂરા એવા નામના તથા મિથ્યાત્વથી વાસિત એવા ચાર પુત્રો હતા, તેમાં કપટી શ્રાવક થયેલ એવા ચોથા પુત્રને તેં મૃગસુંદરી નામની શ્રાવકસુતા પરણાવી. તે મૃગસુંદરીને બાલ્ય વયથી એવો અભિગ્રહ હતો કે:—'જિનેશ્વર દેવને પૂજીને અને સંયતોને પ્રતિલાભીને એક (વખત) ભોજન કરવું, અને રાત્રે કદાપિ ન જમવું.'

એકદા તે બધા એકત્ર થઇને ક્રોધથી તે નવોઢાને કહેવા લાગ્યા કે:—'અરે! પાખંડને છોડીને ગૃહાચાર પ્રમાણે ચાલ. જિનની તારે પૂજા ન કરવી, સાધુઓને દાન ન દેવું અને રાત્રે તારે ભોજન કરવું, જો એમ ન કરે, તો અમારા ઘરમાંથી ચાલી જા.' આમ કહ્યા છતાં તે પરમ શ્રાવિકા તેવું મનથી પણ કદી ઇચ્છતી ન હતી. એમ કરતાં તેને ત્રણ ઉપવાસ થયા, એટલે તેણે શ્રીગુરૂને પૂછ્યું કે:—'હે વિભો! હું શું કરૂં? એમનાથી હું ધર્મ (સાધન) કરી શકતી નથી.' આથી શ્રીસિદ્ધાંતમાં જોઇને

શ્રીગુરૂએ તેને કહ્યું કે:—‘ હે ભદ્રે ! પાંચ તીર્થ અને પાંચ સાધુઓને વંદન તથા પ્રતિલાભતાં જેટલું પુણ્ય થાય, તેટલું પુણ્ય ચુલાપર છિદ્રરહિત વિશાલ વસ્ત્રનો ચંદરવો બાંધવાથી પ્રાપ્ત થાય થાય છે.’ આ પ્રમાણે સાંભળીને તે ઘરે ગઈ અને તેજ પ્રમાણે કરવા લાગી.

એવામાં એકદા તે ચંદરવો જોઇને સસરાએ તે મૃગસુંદરીને કહ્યું કે:—‘ હે પાપે ! પોતાના કુળનો નાશ કરવા આ શું કાર્મણ માંડયું છે ? ’ તે બોલી કે:—‘ જીવદયા પાળવાનોજ આ પ્રયત્ન છે.’ પણ તેનું વચન ન માનતાં તેના પતિએ તે ચંદરવો બાળી નાખ્યો. એટલે પુન: તેણે તે બાંધ્યો અને તેણે તેવીજ રીતે બાળી નાખ્યો. એમ સાત વાર તેણે બાંધ્યા અને તે દુરાત્માએ તેવીજ રીતે તે બાળી નાખ્યા. પછી ક્રોધ લાવીને સસરાએ તેને કહ્યું કે:—‘ તું તારા પિતાને ઘેર જા.’ એટલે તે બોલી કે:—‘ હું તમારે ઘેર કુટુંબની સાથે આવી છું, માટે તેવીજ રીતે જો મને મોકલો, તો હું જાઉં. અન્યથા હું શી રીતે જાઉં ? ’ આથી તેને મોકલવા માટે બધા તૈયાર થયા, અને માર્ગમાં એક પોતાના સંબંધીએ તેમને જમવાને નોતર્યા. પણ રાત્રે વહુના ન જમવાથી સસરો વિગેરે પણ ન જમ્યા. એટલે તૈયાર થયેલ રસોઇ તેનાજ કુટુંબે વાપરી, અને તે વિષમિશ્રિત આહાર હોવાથી તે સમસ્ત કુટુંબ મરણ પામ્યું. પછી પ્રાત:કાલે સસરો વિગેરે સસંભ્રમ થઇને જેટલામાં જુએ છે, તેટલામાં તેમાં પતિત થઇ મરણ પામેલ સર્પ તેમના જોવામાં આવ્યો. આથી તેમણે નિશ્ચય કર્યો કે:—‘ ખરેખર ! ઉંચે ભ્રમણ કરતાં એ ધૂમાડાથી વ્યાકુલ થઇને ધાન્યની થાળીમાં પડયો હશે. અહા ! ચંદ્રવાના અભાવથી આ મોટો અનર્થ થયો. માટે આ વહુના પ્રસાદથીજ આપણે નવો અવતાર

પામ્યાં. આ પ્રમાણે ભક્તિથી નમ્ર થઇને વધૂને એક દેવી સમાન માની અને તેનો સત્કાર કરી પોતાના ઘરે તેને લઇ ગયા. અને તે બધાએ શ્રાવકપણું અંગીકાર કર્યું. એટલે મૃગસુંદરીએ તેમને શિખામણ આપી કે:—'હે ભદ્રે ! પાંચ સો વ્યાધ જેટલું પાપ કરે, તેટલું પાપ ચંદ્રવો ન બાંધવાથી ગૃહસ્થોને લાગે છે- એમ જ્ઞાનીઓ કહી ગયા છે.' ઇત્યાદિ તેની શિક્ષા (પાળવા) માં તે ચિરકાલ સાવધાન રહ્યા.

હવે મૃગસુંદરીનો જે પતિ હતો, તે તું અહીં રાજા થયો છે, અને મૃગસુંદરીનો જીવ હતો, તે આ તારી પત્ની થઇ છે, જેના પ્રભાવથી તારો સાત વર્ષનો વ્યાધિ ચાલ્યો ગયો. સાતવાર ચંદ્રવો બાળવાથી તને સાત વર્ષ કોઢ રોગ રહ્યો. કારણ કે પૂર્વે જે કર્મ કર્યું હોય, તે અન્યથા ન થાય.'

આ પ્રમાણે સાંભળીને તે દંપતી જાતિસ્મરણ પામ્યા અને પોતાના પુત્રને રાજ્યપર બેસારી દીક્ષા લઇ અનુક્રમે સદ્ગતિના ભાજન થયા.

इति जीवदयाफलं बुधाः । अवधार्य स्वहृदि स्पृहा यदि ।
शिवशर्मणि तद्विधीयतां, स्वमनस्तत्र कठोरतोज्झिताः ॥१॥

હે બુધજનો ! આ પ્રમાણે જીવદયાનું ફળ પોતાના અંતરમાં અવધારીને જો તમારે શિવસુખની ઇચ્છા હોય, તો તમે સરલ થઇ તેમાંજ મનને જોડી દ્યો.

॥ इति श्रीउपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे
चतुर्थ उपदेशः ॥ ४ ॥

पंचम उपदेश.

સજ્જન પુરૂષોએ હિતકર અને જરૂર પડતું વચન પણ વિચારીનેજ બોલવું, કર્કશ વાક્ય તો કદાપિ બોલવુંજ નહિ. માત્ર એકવાર કઠોર વચન બોલવાથી પણ માતા અને પુત્રની કેવી માઠી દશા થઈ ? 'તારા હાથ પગ છેદી નાખું અને લોચન કહાડી લઉં. અરે ! તું મરતો કેમ નથી ?' ઇત્યાદિ વાક્યો દુર્ગતિના માર્ગમાં લઇ જનારાં છે, માટે તે ત્યાજ્ય છે.

માતા અને પુત્રની કથા.

તામ્રમય કિલ્લાથી સુશોભિત એવી તામ્રલિપ્તી નગરીમાં રતિસાર નામે શેઠ હતો, તેની બંધુલા નામે પત્ની હતી. તેમને સ્વભાવે ઉદ્ભટ વેષ–રાખનારી અને સર્વ સુવર્ણના આભરણ પહેરનારી એવી બંધુમતી નામની સુતા હતી, તે શેઠને અત્યંત વલ્લભ હતી. એકદા શ્રેષ્ઠીએ તેને કહ્યું કે:—"હે વત્સે ! ઉદ્ભટ વેષ ન રાખ. આપણ વણિકોને તેવો વેષ શોભે નહિ.' આમ કહ્યા છતાં તે માનતી ન હતી.

એકદા ભૃગુપુરથી ત્યાં વ્યાપાર કરવા આવેલ બંધુદત્ત મોટા ઉત્સવપૂર્વક તેને પરણ્યો. અને વધારે લાભને માટે તેને ત્યાંજ મૂકીને વહાણપર બેસીને તેણે રત્નદ્વીપતરફ સમુદ્રમાં પ્રયાણ કર્યું. પછી કેટલોક માર્ગ અતિક્રાંત કરતાં કલ્લોલથી આઘાત પામી તેનું વહાણ એક ક્ષણવારમાં ભાંગી ગયું. એવામાં બંધુદત્તના હાથમાં એક ફલક (પાટીયું) આવી જવાથી તે સમુદ્ર તરવા લાગ્યો અને વાયુથી પ્રેરાઇને તટપર પહોંચ્યો. અને ત્યાં ઉદ્ભ્રાંત

લોચનથી જેટલામાં દિશાઓને જુએ છે, તેટલામાં તેજ નગરના ઉદ્યાનમાં પોતાને પ્રાપ્ત થયેલો જોયો. અને વિચારવા લાગ્યો કે:– ‘ અહો ! દૈવની ગતિ કેવી વિચિત્ર છે ? જ્યાં માણુસો લજ્જા પામે, તે શ્વશુર ભવનમાં આવી સ્થિતિથી હું કેમ જઇ શકીશ ? કહ્યું છે કે:—

“ स्त्री पीहर नर सासरउ, संजमीयां सहवास ।
ए त्रिएहइ अलखामणां, जइ को करइं तपास ” ॥१॥

અહો ! પ્રાણીઓ પર અણુધાર્યાં સુખ અને દુઃખ આવી પડે છે. માટે ક્લેશાના હેતુભૂત આવી ચિંતા કરવાથી સર્યું.’ આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તે એક દેવકુલમાં રહ્યો અને કોઇ માણુસ દ્વારા પોતાના સસરાને ઘેર આગમનના ખબર જણાવ્યા. મનને સંતાપ કરનારી પોતાના જમાઇની તેવી વાત સાંભળીને ‘ અહા ! એ શું ? ’ એમ ઉંચા અવાજે બોલતો શ્રેષ્ઠી તરત ઉઠ્યો, અને જેવામાં તેની પાસે જવા ચાલ્યો, તેવામાં સૂર્ય અસ્ત થયો, એટલે અસુર થઈ જવાથી કુટંબીઓએ જતાં અટકાવ્યો, તેથી પોતાના ઘરેજ રહ્યો. પછી બ્રાહ્મમુહૂર્ત્ત થતાં અવસરને ઉચિત વસ્ત્ર, આભરણાદિક લઈને તે પોતાના જમાઇને મળવા ચાલ્યો; અને સુવર્ણ-કંકણના સમૂહથી ભુજલતાને સુશોભિત કરી પોતાના પતિને જોવાને બંધુમતી પણ તેની સાથે નીકળી. તે વખતે તે શ્રેષ્ઠીની પાછળ જતી હોવાથી કોઇ લુબ્ધ ચોરે તેના બંને હાથ કાપી નાખ્યા. પૂર્વકૃત કર્મ અન્યથા થતું નથી. એવામાં ત્યાં કોલાહલ થયો, એટલે કોટવાલ વિગેરે આવ્યા અને ખબર મેળવીને તેઓ ચોરની પાછળ દોડ્યા. પછી શ્રેષ્ઠી ત્યાંથીજ પાછો ઘેર ગયો, ત્યાં લોકો એકત્ર થયા અને ‘ કર્મની દશા ન્યારી છે ’ એવી શોકકથા કરવા લાગ્યા.

હવે ચોર પણ રાજપુરૂષોને પાસે આવેલા જોઈને વ્હાવરો બની જ્યાં પ્રથમથી જ પેલો શેઠનો જમાઇ સુતો છે તે દેવકુલમાં આવ્યો. ત્યાં દાગીના તેની પાસે મુકીને મુઠી વાળીને નાઠો. એવામાં તે વસ્તુઓ જોવાથી સુભટોએ જાણ્યું કે–' આજ ચોર છે.' એમ ધારીને વિલંબ અને વિચાર વગર તેઓએ તેને શૂળી-પર ચડાવી દીધો. અહા ! કર્મથી કયા જંતુઓ વિડંબના નથી પામતા ? પછી શ્રેષ્ઠી પુત્રીનો શોક કરીને જેવામાં તેની પાસે આવ્યો, તેવામાં જેમ પેલા ખલોએ તેને મૂકી દીધો, તેમ પ્રાણોએ પણ તેને મૂકી દીધો. તેને તેવી અવસ્થામાં જોઈને શ્રેષ્ઠીએ દુઃખિત થઈ રાજપુરૂષોને કહ્યું કે:–' અરે ! તમોએ આ શું કર્યું ? મારા જમાઇનેજ તમે મારી નાખ્યો. પછી તેનું સ્વરૂપ જાણવામાં આવતાં તેના દુઃખથી દુઃખિત થતા અને ભવસ્થિતિનો વિચાર કરતા તેઓ સર્વે પોતપોતાના ઘરે ગયા. ત્યારથી પોતાની પુત્રી અને જમાઇની તેવી કર્મ વિચિત્રતા (વિષમતા) જોઈને રતિસાર શ્રેષ્ઠી ધર્મપરાયણ થયો.

એકદા ત્યાં સુયશા નામના ચતુર્જ્ઞાની પધાર્યા. તેમની દેશના સાંભળીને શ્રેષ્ઠીએ તે બંનેનો પૂર્વભવ પૂછયો. એટલે જ્ઞાની બોલ્યા કે:—

પૂર્વે શાલિગ્રામમાં કુટંબાદિકથી રહિત કોઇ દરિદ્ર સ્ત્રી પોતાના પુત્ર સાથે રહેતી હતી. તે સ્ત્રી કોઇ શ્રેષ્ઠીના ઘરે ઉદર નિર્વાહને માટે ઘરકામ કરતી અને તેનો પુત્ર વાછરડાં ચારતો હતો. એકદા તે પુત્ર વાછરડાં ચારીને ઘરે આવ્યો, તે વખતે તેની માતા ક્યાંક કાર્યવ્યગ્ર હોવાથી ઘરે આવી ન શકી. એવામાં બહુ વાર થઈ અને તે બાલક બહુ ક્ષુધિત હતો. તેથી તે દેર

આવી કે તરત તે આવેશમાં આવીને કહેવા લાગ્યો કે:—'અરે ! રંડા ! શું આટલો બધો વખત તું શૂળીપર ચડી હતી ? હે મૂર્ખે ! ક્ષુધાપીડિત મને શું તું જાણતી ન હતી ?' એટલે તેજ પ્રમાણે તે પણ સામે કહેવા લાગી કે:—'શું તારા બંને હાથ કપાઇ ગયા હતા ? કે અહીં સીકાપર તારા માટે તૈયાર કરીને રાખેલ ભોજન પણ તું લઈ ન શકયો. હે મૂર્ખ ! એમાં પરવશ પણામાં રહેલી એવો મારો શો દોષ છે ?' આ પ્રમાણે તે વખતે તે બંનેએ મોટો કલહ મચાવી મૂકયો. તે પાપકર્મને આલોવ્યા વિના તે માતા અને પુત્ર મૃત્યુ પામી તારી પુત્રી અને જમાઈ થયા. એ બધું સંસારનું નાટક છે. જે જેવું વચન બોલે તે તેવું ફળ ભોગવે છે. માટે હે શ્રેષ્ઠિન્ ! કહેવાનો સાર એ છે કે—વચનનો સંવર કરવો.' વગર વિચાર્યું સહસા બોલી નહીં નાંખવું.

આ પ્રમાણે સાંભળીને તે સાધુની પાસે વ્રત લઇ રતિસાર શ્રેષ્ઠી સુખભાજન થયો અને તે બંને અનંત સંસાર ભમ્યા. એમ સમજીને મધુર અને પરિમિત વચન પણ વિચારીનેજ બોલવું.

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमऽधिकारे
पंचमे उपदेशः ॥ ५ ॥



षष्ठ उपदेश.

જે ત્રિકાલ પૂજા અને બેવાર પ્રતિક્રમણ એમ દરરોજ પાંચ વેળાને લગ્નની જેમ ચરિતાર્થ (સાર્થક) કરે છે તે ઉત્તમ પ્રાણી જગતસિંહની જેમ બુધ જનોને પ્રશંસનીય થાય છે.

જગતસિંહ શ્રેષ્ઠીની કથા.

યોગિનીપુરમાં શ્રી પીરોજ પાદશાહની સભાના શૃંગાર રૂપ એવા જગતસિંહ નામે શ્રેષ્ઠી હતો. સમસ્ત નગરમાં સત્યવાદીઓમાં તે એકજ પ્રખ્યાત હતો. કારણ કે અસત્યવાદી પ્રાયઃ પ્રતિષ્ઠા પામતો નથી. કદાચ અગ્નિ શીતલ થાય અને પવનમાં સ્થિરતા આવે, તથાપિ તેમાં અસત્યવાદિતા કદાપિ સંભવે નહિ. આવી તેની ખ્યાતિ સાંભળીને પરીક્ષા કરવાના ઈરાદાથી રાજાએ તેના મર્મને જાણનારા દુર્જનોને એકાંતમાં પૂછ્યું કે:— ‘ અરે ! કહો, એ શ્રેષ્ઠી પાસે કેટલું ધન છે. ’ એટલે દ્રોહતત્પર એવા તેઓ બોલ્યા કે:—‘ સિતેર લક્ષ છે. ’ હવે કેટલાક દિવસ પછી રાજાએ તેને પુછયું કે:— ‘ તારી પાસે કેટલું ધન છે ? ’ એટલે તે બોલ્યા કે—‘ વિચાર કરીને જવાબ આપીશ, પછી બીજે દિવસે ઘરવખરી સંભાળીને તેણે કહ્યું કે:—‘ હે રાજન્ ! મારે ચોરાશી લક્ષ પ્રમાણ ધન છે. પૂર્વોક્ત સંખ્યાથી અધિક કહેતાં તે સત્યવાદીજ ઠર્યો. કારણ કે પોતાના દ્રવ્યની સંખ્યામાં સ્તોક શબ્દ સત્ય સૂચક થાય છે. પછી સંતુષ્ટ થયેલ રાજાએ સોળ લક્ષ ધન આપીને તે શ્રેષ્ઠીને કોટીધ્વજ બનાવ્યો. અહો ! સત્યનું કેટલું બધું ફળ ?

એકદા રાજાએ પોતાના ભંડારમાંથી મંગાવીને સૂર્ય સમાન ચળકતું એક રત્ન તેને બતાવ્યું અને કહ્યું કે:—' આ રત્ન જેવું બીજું રત્ન શું પૃથ્વી પર હશે ? ' એટલે તે બોલ્યો કે:—શુ વસુધા ઉપર બે પાદસાહ હોય ? ' આવા તેના વચનથી રંજિત થઈને તે ઉત્તમ રત્ન તેને થાપણને માટે આપ્યું. કારણ કે જ્યાં બંનેની પ્રીતિ સ્થિર હોય, ત્યાં ભેદ ન હોય. આ પ્રમાણે પ્રીતિપૂર્વક તે બંનેનો કેટલોક કાળ ગયો, એવામાં એકદા કોઈક કારણથી રાજા તેના પર રૂષ્ટમાન થયો. કારણ કે સંપત્તિ અને આપત્તિ મહંતજનોને હોય છે. પણ ચંદ્ર અને ગુરૂના દૃષ્ટાંતથી નીચ જનો સદા તેવીજ સ્થિતિમાં હોય છે. મસ્તક પર પુષ્પાભરણ અને મુંડન પણ કરવામાં આવે છે, પરંતુ ભ્રૂકુટીના કેશમાં કદી ચય કે અપચય થતો નથી; પછી રાજાએ તે શ્રેષ્ઠીને કેદખાનામાં રાખ્યો અને તેની રક્ષા કરવા પોતાનો એક સેવક ત્યાં નીમ્યો તે વખતે શ્રેષ્ઠીને પાંચ વેળા ધર્મનો વ્યતિક્રમ થાય એજ દુભાવા જેવું હતું, પણ રાજાના નિગ્રહની પરતંત્રતાથી તેને કંઈ ખેદ ન હતો. પછી તે સેવકને એકાંતમાં સુવર્ણનો ટકો અપાવીને તે પોતાની ધર્મવેળા સાધતોહતો. કારણકે ભવની વૃદ્ધિ કરનાર લક્ષ્મી તો ભવોભવ પ્રાપ્ત થાય છે, પણ જેનાથી સંસારનો ક્ષય થાય એવી ધર્મસામગ્રી મળવી દુર્લભ છે. એ પ્રમાણે એકવીશ દિવસ સુવર્ણના ટકા અપાવીને તેણે પોતાની ધર્મસાધના કરી. કારણ કે ધર્મનો આદર એ ખરેખર લોકોત્તર હોય છે. પછી બાદશાહ પ્રસન્ન થયો એટલે પોતાના અંગના વિભૂષણો અને પંચ વર્ણના વસ્ત્રો તેને પાંચ વાર પહેરાવ્યા. પછી વિવિધ વાદ્યો અને ઘણા લોકો સહિત શ્રેષ્ઠી અર્થી જનોને ઇચ્છિત દાન આપતો પોતાના ઘરે આવ્યો પછી અનુક્રમે ત્યાં કારાગૃહમાં શૂન્યતા થઈ,

એટલે તે રક્ષક પણ રાજા વિગેરેથી ભય પામીને સુવર્ણટકા 'આ લ્યો' એમ કહીને આપવા લાગ્યો. એટલે શ્રેષ્ઠીએ તેને કહ્યું કે:—'હે ભદ્ર ! એ તને મેં સમર્પણ કર્યા છે માટે યથેચ્છ તેનું દાન કર, ભોગવ અને સુખી થા. કારણ કે તારા પ્રસાદથી મેં ધર્માનુષ્ઠાન કર્યું. કોટી સુવર્ણ આપતાં પણ ધર્મ સંબંધી એક ક્ષણ પણ દુર્લભ છે. વળી તેમાં પણ મેં એક ટકો આપતાં પાંચ વેલા કૃતાર્થ કરી, તેથી તને અધિક દ્રવ્ય આપવું જોઇએ, પણ લેવાય કેમ ?' એમ કહી પુનઃ દાનપૂર્વક તેને વિસર્જન કર્યો. સજ્જનો શું ઉચિતાચારમાં કદી પ્રમાદ કરે ?

હવે એકદા સેવાને માટે આવેલ સપાદલક્ષ રાજાએ બાદશાહની આગળ ચંદનનો કટકો અને બે નિર્મલ મોતી આ બે વસ્તુ ભેટ મૂકી:—તે સ્વલ્પ જોઇને રાજા ક્ષણ ભર રૂષ્ટમાન જેવો થઇ ગયો. તે વખતે સભાસદો પણ બધા જોવા લાગ્યા પણ કોઇ પરીક્ષા કરનાર ન હતો, એટલે સપાદલક્ષ પણ વિચારવા લાગ્યો કે:—'અહો ! આ લોકો મૂર્ખ લાગે છે.' એવામાં જગતસિંહ બોલ્યા કે:—આ બંને વસ્તુ અમૂલ્ય છે. તેમાં પ્રથમ આ ચંદનના કટકાનું માહાત્મ્ય સાંભળો—અગ્નિમાં તપાવતાં એ સોમણના પ્રમાણ જેટલું થાય છે તથા એના મધ્યસ્થ ખંડમાં પણ હિમકણ જેવું તેલ છે. વળી છ માસના જ્વરથી પીડાતા માણસને આ ખંડ ઘસીને પીવરાવવામાં આવે તો તે પ્રાણી નિરોગી થાય છે. હે દેવ ! હવે આ બે મોતીનું પણ કૌતુક સાંભળો એ બંનેમાંથી ગમે તે એક વેચીને બીજાને ગાંઠમાં બાંધેલ હોય, તો ઉત્સુક મિત્રની જેમ તે સંધ્યા થતાં અવશ્ય આવીને ભેગા મળે છે.' આ પ્રમાણે સાંભળીને રાજાએ વિસ્મય પામીને પરીક્ષા કરી. પછી શ્રેષ્ઠીને તેણે પૂછયું કે:—'આ બધું તેં શી રીતે'

જાણ્યું ?' તેણે કહ્યું કે:—'બાલ્ય વયથી વસ્તુપરિક્ષાનો મેં અભ્યાસ કર્યો છે. આ પ્રમાણે પુણ્યના વિષયમાં પણ સજ્જનોએ પરીક્ષા કરવી ઉચિત છે. બાહ્ય વસ્તુ પરીક્ષામાં મારૂં મન પ્રસન્ન થતું નથી.' આવા તેની ઉક્તિથી પ્રસન્ન થયેલ રાજા સપાદલક્ષીય ભૂપ પર અત્યંત પ્રસન્ન થયો.

એ રીતે યાવજ્જીવ ધર્મની પાંચ વેલા આરાધતાં અને સત્ય ભાષા બોલતાં જગતસિંહ શ્રેષ્ઠીએ ચિરકાલ પર્યંત શ્રી જિન-શાસનનો ઉદ્યોત કર્યો.

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे

षष्ठ उपदेश ॥ ६ ॥

सप्तम उपदेशः

જગતસિંહનો પુત્ર ધન્ય, કે જેને શ્રેષ્ઠીએ અટકાવ્યા છતાં જેણે પોતાના પિતાના શપથ (સમ) ન ખાધા. કારણ કે મહ-ત્કાર્યમાં પણ શ્રી દેવ, ગુરૂ, રાજા, અને માતા પિતા વિગેરેના શપથ ન લેવા જોઇએ.

મદનસિંહની કથા.

જગતસિંહનો ચતુર એવો મદનસિંહ નામે પુત્ર હતો, તે પણ લોકમાં તેવીજ ખ્યાતિ પામ્યો હતો. ખુરસાણની સભામાં રહેનાર કોઇ ધનદ નામના વસ્તુપતિની સાથે તેના પિતાની મિત્રાઇ હતી. તે એકદા જગતસિંહ સ્વર્ગે ગયા પછી યોગિનીપુર (દિલ્હી) માં વ્યવસાયને માટે આવ્યો અને તેના ઘરે પણ ગયો. ત્યાં કુટું-

બના ક્ષેમ, નિર્વાહ અને વ્યવસાદિ પૂછતાં તેની જેમ તેના પુત્રની સાથે પણ તેવો વ્યવહાર (મિત્રાઇ) કરવાની તેની ઇચ્છા થઈ. પરંતુ તેની પરીક્ષા કરવા તેણે આવો ઉપાય કર્યો. કારણ કે ઐહિક અને આમુષ્મિક કાર્યમાં સજ્જનોને પરીક્ષા કરવી ઘટિત છે. કહ્યું છે કેઃ—

"सोनउं चंदन सप्पुरिस, आपण पीड खमंति ।
कुलक्कसवट्टइं जाणीयइ, जइ उपकार करंति" ॥ १ ॥

ઇત્યાદિ વિચાર કરી માયાથી કૃત્રિમ આદર બતાવીને તેણે મદનસિંહને કહ્યું કેઃ—'મારૂં તારા પિતાપાસે જે લેણું છે તે આપ. કારણ કે તારા પિતા સાથે મેં ઘણા વરસ સુધી વ્યવહાર ચલાવ્યો, તેથી લેણદેણ પણ બહુ થતી હતી. તેમાં સો ઘોડા આપીને પહેલાં લેણું તેણે વાળ્યું એટલે હું આનંદથી સ્વસ્થાને ગયો, પરંતુ શેષ લેણું અહીં રહી ગયું છે.' આ સાંભળીને તે બોલ્યો કેઃ—'કેટલુંક લેણું છે?' એટલે તે બોલ્યો કેઃ—'જુના નાણાનું બત્રીશ હજારનું લેણું રહ્યું છે. જો યોગ્ય લાગે, તો આપો.' તે પુત્ર બોલ્યો કેઃ—'પિતાનું દેવું અલ્પ કે બહુ વહીમાં જોઇને મેં તેમના નામ પ્રાણે બધાને ચૂકવી દીધું છે. પરંતુ ત્યાં તમારૂં નામ ક્યાંય પણ મારા જોવામાં ન આવ્યું. તો લિખિત મળ્યા વિના મારે તમારૂં લેણું પણ શી રીતે દેવું?' એટલે પુનઃ શ્રેષ્ઠી અંતરમાં પ્રસન્ન છતાં રૂષ્ટમાન થઇને બોલ્યો કેઃ—'અરે! પિતાનું લેણું પુત્ર આપે, તેમાં વિચાર શો કરવાનો હતો?' તેણે કહ્યું કેઃ—'હે શ્રેષ્ઠિન્! તમે આ વૃથા પ્રયાસ શાને કરો છો? સાક્ષી કે લિખિત વિના લેણું મળશે નહિ.' એટલે શ્રેષ્ઠી પાદ-

શાહની સભામાં ગયો અને પાદશાહ પાસે તેણે અરજ કરી કે:— 'હે દેવ! જો અહીં એકાંત થાય તો, કંઇક વિજ્ઞપ્તિ કરવાની છે.' પછી રાજાએ સહુને દૂર કર્યા, એટલે તે બોલ્યો કે:—'મદનસિંહની પરીક્ષા કરવા મેં તેની સાથે કૃત્રિમ કલહ મચાવ્યો છે. માટે જેમ તેમ બોલતાં મને તમારે દોષ ન દેવો.' આ પ્રમાણે ખાનગી કહીને પછી તે સર્વ સમક્ષ બોલ્યો કે:—'હે રાજન્! જગતસિંહની પાસે મારૂં પ્રથમનું કંઇક લેણું રહી ગયું છે, તે આ તેનો પુત્ર આપતો નથી, માટે શું કરવું? તે ફરમાવો.' એટલે રાજાએ બોલાવેલ મદનસિંહે સભામાં આવી પોતાનું સ્વરૂપ નિવેદન કર્યું અને તે શ્રેષ્ઠીએ પણ પોતાનું સ્વરૂપ નિવેદન કર્યું, એટલે બંનેનો વિવાદ ચાલ્યો. પછી ધનદ નામના વસ્તુપતિએ કહ્યું કે:—'જો તારા પિતાની પાસે મારૂં લેણું ન હોય, તો બધાના દેખતાં તું શપથ લે.' આથી તે ધૈર્ય પૂર્વક બોલ્યો કે:—'પિતાના શપથ હું લેવાનો નથી. ભલે તમે તમારૂં લેણું યા મારૂં સર્વસ્વ લઇ લ્યો. બત્રીશ હજારમાં હું મારા પિતાને કેમ વેચું? કે જે કોટી ઉપકારોથી પણ દુષ્પ્રતિકાર્ય (બદલો ન વાળી શકાય તેવા) છે. કેટલાક મૂર્ખ જનો પોતાના પિતાના ગળા અને રૂધિરના શપથ લે છે, તેમની ગતિ કેવળી જાણે કહ્યું છે કે:—

"सच्चेणावि अलीएणावि, चेइअसम्मं करेइ जो मूढो ।
हणिऊण बोहिबीयं, अणंतसंसारिओ होइ" ॥१॥

'જે મૂઢ પ્રાણી ચૈત્યના સાચા કે ખોટા શપથ કરે છે, તે પોતાના સમ્યક્ત્વને હણીને અનંત સંસારી થાય છે.

આ પ્રમાણે તેનું કથન સાંભળીને સર્વ સભાસદો વિસ્મય પામીને તેની પ્રશંસા કરવા લાગ્યા અને તે વસ્તુપતિ પણ બોલ્યા કે:— હે વત્સ ! તું ભાગ્યવંતમાં મુગટ સમાન છે. જેનું આવું તો સાહસ છે. મારૂં લેણું કંઇપણ નથી, માત્ર મારે પરીક્ષા કરવી હતી. કારણ કે સિંહનું બચ્ચું સિંહ જેવુંજ થાય. સૂર્યથકી અંધકારની વૃષ્ટિ ન થાય અને ચંદ્ર થકી અંગારાની વૃષ્ટિ ન થાય.' આ પ્રમાણે તેની પ્રશંસા કરીને તેને જગતસિંહના શ્રેષ્ઠ સ્થાને સ્થાપીને તે તેની સાથે પણ પૂર્વ મિત્રની જેમ વ્યવહાર ચલાવવા લાગ્યો. આ પ્રમાણે મદનસિંહ પણ રાજા વિગેરેને વલ્લભ થઇ પડયો. કારણ કે જ્યાં જ્યાં ગુણાદર છે, ત્યાં ત્યાં પ્રતિષ્ઠા વધે છે.

એકદા મેદપાટથી આવેલ કોઇ પોલાક નામના મહાવૈદ્યે ખિન્ન થયેલ પાદશાહને સ્વસ્થ કર્યો. ત્યારથી રસાંગ વેદી, શાસ્ત્રજ્ઞ અને વિવિધ ઓષધોના યોગને જાણનાર એવો તે વૈદ્ય રાજા વિગેરેને માન્ય થઇ પડયો. તે બલિષ્ઠ નવ શ્રીફળને એકી સાથે ભાંગતો હતો અને સોપારીને તેની અંદર તે પોતાના અંગુઠા વતી દાબી દેતો હતો. તેજ પ્રમાણે જાનુ (ઢીંચણ) ના મધ્યમાં સોપારી રાખી તથા બે ખભા પર તે રાખીને ચિબુક (દાઢી) ના ભાગથી દબાવીને તેને ચુર્ણ કરી નાખતો હતો.

એકદા તે મહાજનની સાથે શાળામાં ગયો. ત્યાં કોઈ બ્રહ્મચારીનું વ્યાખ્યાન ચાલતું હતું, એટલે તે બેઠો. તે અધિકારમાં કયાંક તેણે તપાગચ્છની અવહીલના કરી અને પોતાની સ્તુતિ કરી. એવામાં પોલાક બોલ્યો કે:—' અરે ! બોકડાનું

શું બોલે છે ? આ મહાજનને જોતો નથી ?' એમ કહી તરત ઉઠીને તેને એક લપડાક ચોપડાવી દીધી. એટલે તે વેષધારી રોષરક્ત થઇને પાદશાહની સભામાં ગયો અને વૈદ્ય પણ ત્યાં પહોંચ્યો તથા બંનેએ પોતપોતાનો વૃત્તાંત નિવેદન કર્યો. હવે તે બંને માન્ય હોવાથી જેટલામાં રાજા વિચાર કરતો હતો, તેવામાં મદનસિંહ બોલ્યો કેઃ—' હે દેવ ! અહીં વિચાર શો કરવાનો છે ? કારણ કે એકે પોતાની જીભ વાપરી અને બીજાએ પોતાનો હાથ વાપર્યો, માટે એકને દંડ કરતાં બીજાને પણ થશે, તેથી બંનેની સમાનતા હોવાથી કોઇને પણ દંડ ન થાય.' આ પ્રમાણે સાંભળીને અંતરમાં હાસ્ય કરતાં રાજાએ તે બંનેને કોમળ વચનથી શાંત કરી પોતપોતાના સ્થાને મોકલ્યા.

एवं यथा मदनसिंहमहेभ्य एषः
प्राणात्ययेऽपि शपथं स्वपितुर्न चक्रे ।
तेनार्हदादिविपये शपथो न कार्यः
सत्योऽप्यसत्य इह भव्यजनैर्विधिज्ञैः ॥ १ ॥

આ પ્રમાણે જેમ તે મદનસિંહ શ્રેષ્ઠીએ પ્રાણ સંકટમાં પણ પોતાના પિતાના શપથ ન કર્યા (સોગન ન ખાધા), તેમ અન્ય ભવ્ય જનોએ અહીં દેવાદિક સંબંધમાં સત્ય કે અસત્ય શપથ ન કરવા.

इति श्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे

सप्तम उपदेश ॥ ७ ॥



અષ્ટમ ઉપદેશ.

સુજ્ઞ જનો 'પ્રાણનો વિયોગ કરવો' તેને હિંસા કહે છે, અને દ્રવ્ય એ પ્રાણીઓના બાહ્ય પ્રાણ છે. તેથી જેણે પરદ્રવ્યનું હરણ કર્યું, તે તેણે તેના પ્રાણ હણ્યા સમજવા. આ સંબંધમાં સૂતારની સ્ત્રીનો પ્રબંધ સાંભળવા લાયક છે.

સૂત્રધાર-પત્નીની કથા.

તામલિપ્ત નગરમાં સૂદા, સૂરા, સૂંટા અને સોના—એવા નામના અને મહિમાવંત એવા ચાર ચતુર શ્રેષ્ઠીઓ હતા. તે બહોળા કુટુંબવાળા, ધનવંત, પરસ્પર પ્રીતિવાળા, સમાન વયના અને રાજસભાના એક શૃંગારરૂપ હતા. તે બધા સરલ સ્વભાવી અને ધર્મ–કર્મમાં પ્રેમાળ હતા. એકદા એકાંતમાં સાથે મળીને તેમણે પરસ્પર વિચાર કર્યો કે:—'આપણે ધન મેળવ્યું, ભોગ ભોગવ્યા, પુત્ર વિગેરે થયા અને રાજા વિગેરેથી પણ સન્માન પામ્યા, પરંતુ આપણે આત્મસાધન કંઈ કર્યું નથી. કહ્યું છે કે— 'જ્યાંસુધી આ શરીર સ્વસ્થાવસ્થામાં હોય, ત્યાંસુધી ચતુર જનોએ ધર્મ સાધી લેવો. કારણ કે ઘર સળગે ત્યારે કુવો કોણ ખોદે ?' આ પ્રમાણે વિચાર કરી પોતાના પુત્રોને ઘરની ચિંતા ભળાવીને સંન્યાસી થઇને તેઓ તીર્થયાત્રા કરવા ચાલ્યા. તે વખતે જુદા જુદા લક્ષ મૂલ્યના રત્નને પોતપોતાની ઝોળીમાં નાખી તેને ખભે લટકાવીને તેઓ શનૈ: શનૈ: માર્ગ કાપવા લાગ્યા. એવામાં કોઇ નગરમાં પહોંચ્યા, ત્યાં એક સૂત્રધારના ઘરે ભોજન કરી અને તેની પત્નીને તે ઝોળીઓ ભળાવીને તેઓ ચતુષ્પથ

(ચૌટા) માં ગયા. ત્યાં રાજાની આગળ કુશળ નાટકીયા નાટક કરતા હતા, તે તેમણે જોયું. તે વખતે એકાંત સમજીને સૂત્રધારની સ્ત્રીએ સૂરની ઝોળીમાંથી તેના જીવિત જેવું કિંમતી રત્ન કહાડી લીધું, પછી ત્યાં નાટકમાં દિવસ ગાળીને તેઓ પણ સાંજે ઘરે આવ્યા અને રાતભર ત્યાં રહ્યા. અને પ્રભાતે ઉઠી પોતપોતાની ઝોળી સંભાળ્યા સિવાય તેને ખભે લટકાવીને આગળ ચાલ્યા તથા અનુક્રમે તેઓ ગંગા નદી આગળ આવી પહોંચ્યા. ત્યાં સ્નાનાદિ પુણ્યકર્મ કરીને શ્રાદ્ધ કરવાની ઇચ્છાથી પોતપોતાનું રત્ન વાપરવાને તે ઝોળીમાંથી કહાડવા લાગ્યા. એવામાં પોતાના રત્નને ન જોવાથી સૂર તેમને કહેવા લાગ્યો કે:–' હે બંધુઓ! કોઇ પાપીએ મારા તે રત્નનું હરણ કર્યું લાગે છે. આ ઝોળીઓને પ્રાય: સર્વદા આપણે આપણી પાસેજ રાખતા આવ્યા છીએ, માટે અહીં કોનાપર વ્હેમ લાવવો ? ' પછી પરસ્પર વિચાર કરતાં તેમાંથી એક બોલ્યો કે:—' સાંભળો, જ્યારે આપણે આ ઝોળીઓ સૂત્રધારના ઘરે મૂકીને ત્યાં નાટકમાં વ્યગ્ર થઇ ગયા, તે વખતે તે સૂત્રધારના ઘરે તેની સ્ત્રીજ એકલી હતી, તેથી તેણેજ આ કામ કર્યું લાગે છે. " પછી તે ત્રણે બોલ્યા કે–' એ વાત સાચી છે. ' એવામાં સૂર બોલ્યો કે–' અહો ! પાતક કરવાની તેની ચતુરાઇ કેવી ? હા નિષ્કારણ વૈરિણી એવી તેણે મને કેટલો બધો ઉદ્વેગ ઉપજાવ્યો. ' આ પ્રમાણે તેણે છાતીને તપ્ત કરનાર બહુ વિલાપ કર્યો. પુન: તે સખેદ બોલ્યો કે:—' હવે મારે શ્રાદ્ધવિધાન કેમ કરવું ? અને ત્યાગ (દાન), યાગાદિક કેમ કરવા ? બીજાં પુણ્યકર્યો. પણ ધન વિના શી રીતે કરી શકાય ? ' પુન: તે મનમાં વિચારવા લાગ્યો કે:—' જો તેણે મને આવું દુ:ખ ઉપજાવ્યું,

તો હું પણ એને પ્રચંડ દુઃખ આપીશ.' આ પ્રમાણે વિચારીને સૂર તેમને કહેવા લાગ્યો કે:—'હે બંધુઓ! સાંભળો–હું અહીં કરવત મૂકાવીને મરીશ. અને નિદાન (નિયાણુ) કરી સુરૂપધારી તેનો પુત્ર થઈશ. તે ભવમાં પણ બાર વરસનો થઇને મરીશ. એમ કરતાં તેને મોટું દુઃખ થશે. અન્યથા ઉપાય નથી. શાસ્ત્રમાં પણ એવું કહ્યું છે કે–જે જેવું કરે, તેની સામે તેવો પ્રતીકાર કરવો.' પરંતુ તે સમયે હે બાંધવો! તમારે પણ ત્યાં આવીને એ વ્યતિકર તેને સવિસ્તર સંભળાવવો, તેની પાસેથી તે રત્ન લઇને અહીં આવી તમારે તેનો વ્યય કરવો. આ સંબંધમાં તમે મને જમણા હાથનો કોલ આપો.' પછી તેના કહેવા પ્રમાણે કરવાનો સ્વીકાર કરીને તે ત્રણે પોતાને ઘેર ગયા અને તે વખતે સૂરે પણ ત્યાં તેવી રીતે મરણ સાધ્યું, એટલે તેનો જીવ તે સ્ત્રીના કુક્ષિમાં પુત્રપણે અવતર્યો. કરેલ કષ્ટના અનુમાનથી નિદાન વૃથા થતું નથી. વખત થતાં તે જન્મ પામ્યો. તેનું માણિક્ય એવું નામ રાખવામાં આવ્યું. લાલન પાલન કરી તેને ઉછેરી મોટો કર્યો અને ભણાવ્યો. પછી તેને પ્રૌઢ કુળમાં જન્મ પામેલી એવી રૂપવતી કન્યા પરણાવી અને અનુક્રમે કુટુંબનો ભાર ઉપાડી શકે એવો તે બાર વરસની અવસ્થાનો થયો.

હવે પૂર્વના સંકેત પ્રમાણે તે ત્રણે વ્યવહારીયા પ્રથમની જેમ યાત્રા કરવા નીકળીને તે નગરમાં આવ્યા. અને તે સૂત્રધારના ઘરે તે કુમારને જોઇને 'તેજ આ' એમ પરસ્પર કહીને હસવા લાગ્યા. એવામાં તે બાળકને દારૂણ જવર ચડયો, એટલે ઘણા વૈદ્યો બોલાવ્યા અને ઘણા ઉપાયો કર્યા. તથાપિ તે બાળક મરણ પામ્યો. કારણ કે કરેલ નિદાન શું અન્યથા થાય? એટલે બધાને ઉદ્વેગ થયો અને તેની માતાને વિશેષ રીતે ખેદ થયો. તે અવસરે

તેમણે તેને કહ્યું કે:—'હે ભદ્રે ! પોતે કરેલ કર્મનું ફળ તને આ ભવમાંજ પ્રાપ્ત થયું' એટલે તે બોલી કે:—'મેં શું કર્યું ?' તેઓ બોલ્યા કે:—'અમુક વર્ષે તારા ઘરે કેટલાક યાત્રાળુઓ આવ્યા હતા, તેમાં એકનું રત્ન તેં ચોર્યું હતું કે નહિ ? પછી તેમનાથી ભય પામીને તેણે યથાર્થ વાત કહી. એટલે તેઓ બોલ્યા કે:—'તેને દુઃખ આપવાથી તેના જીવે તને દુઃખ આપ્યું છે.' આથી પશ્ચાત્તાપ પરાયણ એવી તેણે તેમને તે રત્ન આપી દીધું. એટલે તેમણે પણ તેના કલ્યાણની ઇચ્છાથી તીર્થમાં જઇને તે રત્નનો વ્યય કર્યો.

પછી અનુક્રમે તેમણે પણ પોતાના ગેહ અને દેહનો તપોવિધાનથી ત્યાગ કરી આ સંસારને અલ્પ કર્યો (અલ્પ સંસારી થયા.) માટે હે ભવ્ય જનો ! બીજાને પ્રિય એવા પરધનનું તમે હરણ ન કરો, પણ સંતોષ રૂપ સૌધ (મહેલ) માં રહી આત્માને આનંદ રસનો રસિક બનાવો.

આ વાર્ત્તા પુરાણ સંબંધી છે અને તે મિથ્યાદૃષ્ટિ જનોને ઉચિત છે. કારણ કે તત્ત્વજ્ઞ જૈનો તો પરથી થયેલ અપરાધમાં પણ અવિકારી (મધ્યસ્થ) રહે છે. (પોતે વૈર લેવા પ્રયત્ન કરતા નથી.)

॥ इति श्रीउपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे

अष्टम उपदेशः ॥८॥



નવમ ઉપદેશ.

વિષયરૂપ આમિષમાં લંપટ થયેલ માણુસ આ ભવમાંજ વિડંબના પામે છે. યજમાનથી અવગણના પામેલો તાપસ જેમ લઘુતા પામ્યો હતો.

તાપસની કથા.

પૂર્વે ચંપકપુરમાં શ્રેષ્ઠ ગુણસંયુક્ત અને ચકોરના જેવો ચતુર એવો ચકોર નામે શ્રેષ્ઠી હતો. તે ધર્મકૃત્યમાં તત્પર છતાં તાપસોનો સદા અત્યાદર કરતો હતો. ખરેખર ! ધર્મપરીક્ષા દુર્લભ છે. એકદા તેણે કોઇ તાપસને પોતાને ઘેર ભોજનને માટે નોતરીને તેને જમાડ્યો. માત્ર પોતાનુંજ ઉદર ભરનાર એવા તે દુરાત્માએ જમતાં જતાં ગૌરવર્ણવાળી અને લાંબા કર્ણવાળી એવી શ્રેષ્ઠીની બે સુતા જોઇ. પગથી મસ્તક પર્યંત તેમનું રમ્ય રૂપ જોતાં તેને કામવાસના જાગ્રત થઇ, કારણ કે તેવાઓને વિવેક હોતો નથી. ભોજન કર્યા પછી પોતાના શિષ્યોથી છાની રીતે અને લજ્જાને દૂર કરીને તે તાપસે યજમાનની આગળ કહ્યું કે:—' આ કન્યાઓ કોની છે ? ' તે બોલ્યો કે—' હે ભગવન્ ! તે મારી છે. ' એટલે તેણે કહ્યું કે:—' એ મને આપ. કારણકે તું ગુરૂભક્ત છે. વળી જે વસ્તુ પોતાને વલ્લભ હોય, તેનો મનમાં વિચાર કર્યા વિના અક્ષય સુખને ઇચ્છનારા યજમાને એકાંતે ગુરૂનેજ આપવી.' આ સાંભળીને શ્રેષ્ઠી બોલ્યો કે:—' હે ભગવન્ ! તમારે આવો વિચાર કરવો પણ ઉચિત નથી, તો મુખથી એવું કેમ બોલાય ? ' એટલે તે રૂષ્ટમાન થઇને બોલ્યો કે:—' અરે ! મારી પણ તું

અવગણના કરે છે. જો મારૂં વચન નહિ માને, તો તને બૂરૂં પરિણામ ભોગવવું પડશે.' પછી અંતરમાં ક્રોધ છતાં બહારથી કંઇક સામપૂર્વક પુનઃ શ્રેષ્ઠી આ પ્રમાણે બોલ્યો:—'હે ભગવન્! આપના જેવાઓને તો વિશેષે કરીને મારે અદેય (ન દેવાય એવું) કંઇ છેજ નહિ, પરંતુ પ્રકટ રીતે જો એ કન્યાઓ તમને આપું તો તમારે અને મારે પણ ભવિષ્યમાં લજ્જાસ્પદ છે. માટે તમે હમણાં જાઓ. પછીથી હે પ્રભો! અહીં જે નદી છે, તેમાં પેટીના ઉપાયથી આ બે કન્યાઓ તમને ભેટ કરીશ, આ સંબંધમાં તમે સંશય કરશો નહિ.' આ પ્રમાણે સાંભળીને બુંઠી મતીવાળો તે તાપસ પોતાના મઠમાં ગયો અને તે દુરાત્માએ તેજ વિચારમાં ને વિચારમાં તે રાત્રિ ગાળી. પછી તે યજમાને વનમાંથી બે વાંદરી મંગાવીને પેટીમાં નાખીને તે નદીમાં વહેતી મૂકી દીધી. એવામાં તાપસ પોતાના શિષ્યોને આ પ્રમાણે કહેવા લાગ્યો કે:—'આજ રાત્રે કોઇ દેવ મારાપર તુષ્ટમાન થઇને આ પ્રમાણે બોલ્યો કે:—'પ્રભાતે નદીમાં વહેતી જે પેટી આવે તે તારે મઠમાં લઇ જવી અને તેમાં રહેલ સાર તારે હિતકર હોવાથી તે લઇ લેવું.' આ પ્રમાણે સાંભળીને શિષ્યો ખુશ થઇ ગુરૂની પ્રશંસા કરવા લાગ્યા:-'અહો! તમે ધન્ય છો, કે જેને દેવો પણ આ પ્રમાણે વશવર્ત્તી છે.' પછી પ્રભાતે તે મંજૂષા મઠ પાસે આવી, એટલે તેને શિષ્યો પાસે લેવરાવીને તેણે મઠમાં રખાવી અને તાપસે તે શિષ્યોને એકાંતમાં શિક્ષા આપી કે:—'અરે! આમાં કંઇક રહસ્ય હશે, માટે તમે મારૂં વચન સાંભળો:—'એને મઠમાં કપાટ બંધ કરી અને સ્થિર ધ્યાન ધરીને વિધિપૂર્વક ઉઘાડવી પડશે, માટે મારા કહ્યા વિના હે શિષ્યો! તમારે કપાટ ઉઘાડવા નહિ. કારણકે

અવિધિ યોગીઓને પણ અનર્થકારી થઇ પડે છે.' આ પ્રમાણેનું તેનું વચન શિષ્યોએ કબૂલ રાખ્યું. એટલે તાપસ મઠમાં ગયો અને મોટા મનોરથથી તેણે તે પેટી ઉઘાડી. એવામાં અત્યંત ક્ષુધિત અને ચંચલ થયેલ અને ક્રૂર નખવાળી એવી તે બન્ને મર્કટી તરત છલંગ મારી બહાર નીકળીને તેની સન્મુખ આવી અને તેની સરલ તથા ઉન્નત નાસિકાને પ્રથમ તેઓએ કરડી ખાધી, પછી બંને વિપુલ ગાલ છેદી નાખ્યા અને ભાલને ભેદી નાખ્યું. વળી પરના અન્નથી પીવર થયેલ તેના ઉદરને પણ તરત ચીરી નાખ્યું. એટલે તે પોકારવા લાગ્યો કે:—'હે શિષ્યો! હું ભક્ષિત થઇ ગયો, હું ભક્ષિત થઇ ગયો.' તે વખતે કષ્ટને સહન કરનાર તે બિચારો એક હતો, અને તે બંને વાંદરી અત્યંત ક્ષુધિત હતી, તથા શિષ્યોએ કપાટ ન ઉઘાડ્યા. તો દુઃખનો પાર કેમ આવે? એવામાં બહાર રહેલા તે શિષ્યો તો વિચારવા લાગ્યા કે:—'ખરેખર! આ કોઇ પણ દેવ ગુરૂને નિશ્ચય ઉપસર્ગ કરે છે.' છેવટે બહુ વખત પછી દ્વાર ઉઘાડતાં ઝરતા રક્તના પ્રવાહથી સાક્ષાત્ રક્તગિરિ જેવો તે તાપસ પેલી બંને મર્કટી સાથે બહાર નીકળ્યો, એટલે શિષ્યોએ પૂછ્યું કે:—'હે ભગવન્! પૂજ્ય એવા તમને પણ આ શું થયું? આથી તેણે પોતાનો યથાર્થ વૃત્તાંત કહી સંભળાવ્યો, પછી ઉપહાસ, કારૂણ્ય અને દૈન્ય સહિત શિષ્યો બોલ્યા કે:—'યજમાને ગુરૂને અનુરૂપ ભક્તિ કરી, પોતાના આચારને મૂકતા એવા પ્રત્યે એને આવું કરવું ઉચિતજ છે. કારણ કે રૂદ્રની ભસ્મથીજ પૂજા થાય, પણ ચંદનથી તે ન થાય. પછી બહુ વખત જતાં તે સ્વસ્થ થયો, એટલે યજમાને તેને બોધ આપ્યો કે:—'હે ભગવન્! આવું કર્મ તાપસ જનોને ઉચિત ન હોય! આ પ્રમાણે તેને શિખામણ આપીને '

યજમાન પોતાના ઘરે ગયો અને તાપસે પણ ચિરકાલ પર્યંત તાપસી દીક્ષાનું પરિપાલન કર્યું.

यदि शिवनगरयियासा,
भवे जिहासा च वो भवेद् भव्याः ।
तदमी विषमा विषयाः ,
किंपाकफलोपमास्त्याज्याः ॥ १ ॥

હે ભવ્ય જનો ! જો તમારે સંસારનો ત્યાગ કરવાની અને શિવનગરમાં જવાની ઇચ્છા હોય, તો કિંપાકના ફલ સદૃશ આ વિષમ વિષયોનો ત્યાગ કરો.

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे
नवम उपदेशः ॥ ९ ॥



दशम उपदेश.

પરિગ્રહરૂપ ભારે શિલાનું અવલંબન કરનારા માણસો સંસારરૂપ મહાસાગરમાં પતન પામે છે, પણ વિદ્યાપતિની જેમ બુદ્ધિમાનો સંતોષરૂપ વજ્રથી તેને ભેદીને સંસાર સાગરને તરી જાય છે.

વિદ્યાપતિ શ્રેષ્ઠિની કથા.

પોતનપુરમાં પરાક્રમોથી શૂરવીર એવો શૂર નામે રાજા હતો. ત્યાં વિદ્યાપતિ શ્રેષ્ઠિ અને તેની શૃંગાર સુંદરી નામે ભાર્યા હતી. એકદા લક્ષ્મીએ સ્વપ્નમાં તેને કહ્યું કેઃ—"હે વત્સ ! હું હ

દસમે દિવસે ચાલી જઈશ, માટે ચિરકાળથી તું છુટો થઈશ.' પછી તે શ્રેષ્ઠિએ જાગૃત થઈને તે વૃત્તાંત પોતાની સ્ત્રીને નિવેદન કર્યો અને 'હવે લક્ષ્મીનો નાશ થતાં શું થશે ?' એવી તે ચિંતા કરવા લાગ્યો. એવામાં વિશુદ્ધ બુદ્ધિવાળી એવી તે શેઠને કહેવા લાગી કે:—'હે સ્વામિન્ ! જો એમ હોય તો તે બધી સુપાત્ર દાનમાં વાપરી નાંખો, કારણ કે નહિ તો પણ તે જવાનીજ છે.' પછી તે શ્રેષ્ઠિ બધું ધન વાપરવા લાગ્યો. તથાપિ કુવાના જળની જેમ તે પ્રતિદિન વધવા લાગ્યું જેમ જેમ તે વ્યય કરતો ગયો તેમ તેમ તેના ઘરમાં વૃદ્ધિ થતી ગઇ. શું ભારતીનો ભંડાર વાપરતાં કદી ક્ષીણ થાય ? પછી જીનમંદિરમાં જિનેશ્વરની આગળ તે દંપતિએ પરિગ્રહપરિમાણવ્રતમાં પરસ્પર આ પ્રમાણે પ્રમાણ કરી લીધું કે:—'ત્રિકાલ જિન પૂજા, બે વાર પ્રતિક્રમણ, દાનપૂર્વક ભોજન, બે બે જોડી વસ્ત્રો, એક શૃંગાર સુંદરીજ પત્નિ, મહિનામાં વીશ દિવસો આપણે ઉત્તમ શીલ પાળવું, એક કચ્ચોલું ભોજન પરંતુ તે બંને કચ્ચોલા સુવર્ણના હોય, દિવસમાં એક વાર ભોજન પર્વ દિવસે ચાર પ્રકારના આહારનો ત્યાગ અને પૌષધ, રાત્રીએ આહારનો સર્વથા ત્યાગ, જુના નાણાના એકસો ટકા, ઘરમાં એક માસ ચાલે તેટલુંજ ધાન્ય, દ્વિપદાદિકમાં નિયમ, એક સચિત્તને મૂકીને અન્ય સચિત્તનો આપણે નિયમ, પરંતુ આપણને પૂજાના ઉપકરણમા સર્વ સચિત્તની છૂટ—આ પ્રમાણે સમ્યકત્વમૂલ બાર વ્રતનો સ્વીકાર કરીને ઘરે જઇ તે દંપતિ પોતાની સમસ્ત લક્ષ્મીનો વ્યય કરવા લાગ્યા. પછી દશમે દિવસે બધું ધન વાપરીને શ્રેષ્ઠિ નિશ્ચિંત થઈને સુતો એવામાં રાત્રે લક્ષ્મીએ આવીને તેને કહ્યું કે:—'હે વત્સ ! હું તારે ઘેર રહી છું. તારાં પુણ્યરૂપ દામ (દોરી) થી બંધાએલી હું હવે ક્યાંય પણ જવાને સમર્થ નથી

તને વિઘ્ન પ્રાપ્ત થયા છતાં પુણ્યના પ્રભાવથી તેનો વિલય થઇ થઇ ગયો. પુણ્ય એ ખરેખર ! શૃંખલા (સાંકળ) સમાન છે અને લક્ષ્મી એ મર્કટી સમાન છે. તે સાંકળથી બંધાએલ ચંચલ છતાં ક્યાં જઇ શકે તેમ છે ?

એકદા તે લક્ષ્મીને પણ સુપાત્રે વાપરી, ઘરનો ત્યાગ કરી અને જ્ઞાતિવર્ગથી મુક્ત થઇ મસ્તકપર જિનપૂજાનો ખુમચો લઇને ધાર્મિક અને સાક્ષાત્ પુણ્યના સમૂહ સમાન તે શ્રેષ્ઠિ નગરની બહાર નિકળ્યો અને જેટલામાં નગરના મુખ્ય દ્વાર આગળ આવ્યો તેટલામાં તે નગરના અપુત્રીયા રાજાનું અકસ્માત્ મરણ થયું એટલે અધિકારી જનોએ પાંચ દિવ્ય તૈયાર કર્યા અને તે પાંચ દિવ્યોએ પણ તેજ શ્રેષ્ઠિને સામ્રાજ્ય આપ્યું એટલે તે બોલ્યો કે:—'હું રાજ્યને લાયક નથી અને મારે અભિષેકથી સર્યું.' એવામાં દિવ્ય વાણી થઇ કે:—'અહો ! તારૂં ભાગ્ય મોટું છે. માટે તેનો પ્રતિષેધ (ન કાર) ન કર, કારણ કે ભવિતવ્યતા અન્યથા થવાની નથી એટલે શ્રેષ્ઠિએ કહ્યું કે:—'જો એમ હોય તો મારૂં વચન સાંભળો:—'પ્રથમ શ્રી જિનબિંબનો અભિષેક અને પછીથી મારો અભિષેક કરો.' આથી હર્ષપૂરિત એવા તેઓએ પણ એ પ્રમાણે કર્યું. આ પ્રમાણે સામ્રાજ્ય પ્રાપ્ત કરીને નગરની સ્ત્રીઓના મંગલપૂર્વક તે શ્રેષ્ઠિ પરિવાર સહીત રાજમહેલમાં આવ્યો ત્યાં મુખ્ય સિંહાસન પર જિનેંદ્ર પ્રતિમાને સ્થાપીને અને પોતે તેની પાદપીઠપર બેસીને રાજકાર્યો સાધવા લાગ્યો. તે વખતે સમ્યગ્દૃષ્ટિ દેવોએ રત્નવૃષ્ટિ કરી. અને તે શ્રેષ્ઠિ જિનનુંજ એક છત્ર રાજ્ય કરવા લાગ્યો. ધર્મકર્મમાં તત્પર એવા લોકોને તેણે કરમુક્ત કર્યા અને સર્વત્ર જિનાજ્ઞા પ્રવર્તાવી કારણ કે 'યથા રાજા તથા પ્રજા' એવું નીતિવાક્ય છે. તેણે પાંચ સો જિન ચૈત્યો કરાવ્યા અને તેમાં

સુવર્ણ રત્નની પ્રતિમાઓ સ્થાપન કરાવી. પોતાના નિયમને અખંડિત રાખી જિનાજ્ઞાને અખંડરીતે પાળતાં તેણે જિનનિશ્રાથી ચિરકાલ પર્યંત અખંડ રાજ્ય ભોગવ્યું.

આ પ્રમાણે પરિગ્રહ સાગરને નિયમિત કરીને તે રાજા જેમ અક્ષય પદને પામ્યો, તેમ હે :ભવ્ય જનો ! જો તમે પણ તેવા સુખને ઇચ્છતા હો તો સત્વર પરિગ્રહનો સંક્ષેપ કરો.

॥इति श्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे
दशम उपदेशः ॥ १० ॥



एकादश उपदेश.

અંત્ય (નીચ) જનોને ઉચિત, સ્વપર શાસ્ત્રવચનથી વિવર્જિત, અલ્પ ગુણકર અને બહુ દોષથી પરિપૂર્ણ એવા રાત્રિભોજનનો જિનમત રસિક શ્રાવકો ત્યાગ કરે છે. યોગ શાસ્ત્રમાં કહેલ રાત્રિભોજનના દોષો સાંભળીને કયો તત્ત્વજ્ઞ પુરૂષ રાત્રે ભોજન કરે ? રાત્રિભોજનના નિયમની આરાધના અને વિરાધનાના સંબંધમાં ત્રણ મિત્રોનો પ્રબંધ સાંભળવા લાયક છે.

ત્રણ મિત્રોની કથા.

કોઇક ગામમાં પૂર્વે ત્રણ વણિક મિત્રો હતા. તે અનુક્રમે શ્રાવક, ભદ્રક અને મિથ્યાદૃષ્ટિ હતા. એકદા તેઓ જૈનાચાર્ય પાસે ગયા એટલે ગુરૂ મહારાજે તેમની આગળ સુશ્રાવકોને ઉચિત એવી ધર્મદેશના આપી. તે સાંભળી શ્રાવકકુળમાં ઉત્પન્ન

થયેલ હોવાથી તેમાંના શ્રાવકે કંદમૂળ રાત્રિભોજન વિગેરેના નિયમો તરત હર્ષપૂર્વક લીધા, અને ભદ્રકને તો બહુ કહેવામાં આવતાં પણ અન્ય નિયમ સિવાય માત્ર રાત્રિભોજનનોજ તેણે એક નિયમ લીધો તથા મિથ્યાદૃષ્ટિએ કંઇ નિયમ ન આદર્યો. આથી શ્રાવક અને ભદ્રકનું કુટુંબ પણ ધાર્મિક થયું. કારણ કે ગૃહવ્યવસ્થા બધી ગૃહસ્વામીને અનુસરતી હોય છે. પછી અનુક્રમે પ્રમાદની બહુલતાથી અને તેવા પ્રકારના કાર્યમાં વ્યગ્ર હોવાથી શ્રાવક પોતાના નિયમમાં શિથિલ આદરવાળો થઇ ગયો. તેથી તે ત્યાજ્ય બે ઘડીની અંદર તથા કોઇવાર સૂર્ય અસ્ત થતાં પણ ભોજન કરી લેતો હતો. સવાર સાંજને જાણતાં છતાં તે અજાણ્યા જેવો થઇ ગયો, આમ કરતાં તેનું કુટુંબ પણ શિથિલ થઇ ગયું. અને ભદ્રક પોતાના નિયમને સમ્યક્ પ્રકારે આરાધવા લાગ્યો.

એકદા રાજકાર્યમાં વ્યગ્ર થવાથી ભદ્રક અને શ્રાવક બહુ અસુરા ઘેર આવ્યા, તે વખતે સૂર્યાસ્ત થઇ જવાથી ભદ્રકે ભોજન ન કર્યું અને કુટુંબની પ્રેરણાના વશથી શ્રાવકે તો જમી લીધું. તે વખતે ભોજન કરતાં શ્રાવકના ભાણામાં પોતાના મસ્તક પરથી એક જૂ પડી અને તે અજાણતાં ભોજન સાથે ખાઇ ગયો. આથી જલોદરના રોગથી તે અત્યંત બાધિત અને વ્યાકુળ થઇ ગયો. આવી રીતે નિયમની વિરાધના કરી મરણ પામીને તે બિલાડો થયો. તે ભવમાં પણ દુષ્ટ શ્વાનથી કદર્થના પામી મરણ પામીને તે પ્રથમ નરકમાં ગયો અને ત્યાં બહુ દુઃખ પામ્યો. હવે પેલો મિથ્યાત્વી પણ રાત્રિ ભોજનમાં આસક્ત થઇ કોઇવાર વિષમિશ્ર આહાર જમવાથી શનૈઃ શનૈઃ તેના આંતરડા તૂટવા લાગ્યા અને તે નિબિડ પીડાથી ચિરકાલ પછી મરણ પામીને તે બિલાડો થયો.

અને ત્યાંથી પૂર્વ મિત્રની જેમ પ્રથમ નરકમાં નારક થયો. અને ભદ્રક તો પોતાના નિયમને પાળીને સૌધર્મ દેવલોકમાં પ્રૌઢ દેવ થયો. અહો ! તેમને કેવું ભિન્ન ભિન્ન ફળ મળ્યું. પછી શ્રાવકનો જીવ ત્યાંથી કોઇએક દરિદ્ર બ્રાહ્મણનો શ્રીપુંજ નામે પુત્ર થયો અને મિથ્યાત્વીનો જીવ તેનો લઘુ બંધુ થયો. તે કુળમાં પણ રાત્રિભોજન વિગેરે કર્મમાં આસક્ત હોવાથી તેઓ જૈન ધર્મના લેશ મર્મને પણ જાણી શકયા નહિ.

હવે એકદા ભદ્રક દેવે ઉપયોગ દઇને એકાંતમાં તેમને પોતપોતાના પૂર્વભવ અને સ્વરૂપ નિવેદન કર્યાં. આથી પ્રતિબોધ પામીને પૂર્વ પ્રમાણે તેમણે રાત્રિભોજનનો નિયમ લીધો એટલે તે મિત્ર દેવતાએ તેમને વધારે દૃઢ કર્યા. કહ્યું છે કેઃ—

" पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदंति धीराः " ॥ १ ॥

'જે પાપથી અટકાવે છે, હિતમાં જોડે છે, ગુપ્ત વાત છાની રાખે છે, ગુણોને પ્રગટ કરે છે, આપત્તિમાં દૂર જતો નથી અને અવસરે સહાય આપે છે—આ સન્મિત્રનાં લક્ષણો છે—એમ ધીર પુરૂષો કહે છે.' પછી પોતાના વ્રતમાં દૃઢ થયેલા એવા તેમને જનક વિગેરેએ બહુ કહ્યું છતાં રાત્રિભોજન ન કરતાં ત્રણ લાંઘણ થઇ. હવે તેમના નિયમના માહાત્મ્યને વધારવા તે દેવતાએ ત્યાંના રાજાના જઠરમાં મોટી પીડા ઉત્પન્ન કરી અને જેમ જેમ પ્રતીકારો કરવામાં આવે, તેમ તેમ ઘીથી અગ્નિ-જવાળાની જેમ તેનો વ્યાધિ અધિક અધિક વધતો જાય.

એટલે સમસ્ત રાજવર્ગ કિંકર્ત્તવ્યતાથી મૂઢ થઇ ગયો—એવામાં આ પ્રમાણે દિવ્ય વાણી થઇ કેઃ—'હે લોકો! સાંભળોઃ—'પોતાના નિયમમાં એકાગ્ર એવા શ્રીપુંજ બ્રાહ્મણના માત્ર હસ્તસ્પર્શથીજ એ રાજાનો વ્યાધિ જશે, અન્યથા નહિ જાય.'' એ શ્રીપુંજ કોણ?' એમ બધા સ્તબ્ધ થઇને બોલ્યા, એટલે તેમાં એક બોલ્યો કેઃ—'એક દરિદ્ર બ્રાહ્મણનો દૃઢ નિયમવાળો એક પુંજ નામે પુત્ર છે. જે કુટુંબના કલહથી ત્રણ લાંઘણ થતા પણ પોતાના સદ્વ્રતમાં અક્ષુબ્ધ (નિશ્ચળ) છે. ખરેખર તેજ પુંજ હોવો જોઈએ.' એમ સંભાવના માત્ર થતાં અતિશય બહુમાનથી સચિવાદિકોએ શ્રીપુંજને બોલાવ્યો, એટલે તે પણ તરત ત્યાં આવ્યો, અને બોલ્યો કેઃ—'જો રાત્રિભોજનનો મારો નિયમ દૃઢ હોય, તો અત્યારેજ રાજાની ઉદર વ્યથા શાંત થાઓ.' એમ બોલવાપૂર્વક પોતાના માત્ર હસ્તસ્પર્શથી એક ક્ષણવારમાં સર્વ નગરજનોની સમક્ષ તેણે રાજાને સ્વસ્થ કર્યો આથી સંતુષ્ટ થઇને રાજાએ તેને પાંચસો ગામ આપ્યા અને તેણે પણ રાજા વિગેરેને જૈન ધર્મી બનાવ્યા.

આ પ્રમાણે શ્રીપુંજ વિપ્ર તથા તે મિથ્યાત્વીનો જીવ તેનો લઘુ બંધુ રાજા વિગેરેને માન્ય થઇ પડ્યા, અને અનેક પ્રકારે ધર્મ સાધનાર તથા જિનમતમાં તત્પર એવા તે બંને અને તે દેવ (તે ત્રણે) પણ અવસરે ચવીને અનુપમ સુકૃતથી સિદ્ધિ સુખને પામ્યા. માટે હે ભવ્ય જનો! જો તમારે ભવને ભસ્મ કરવાની ઇચ્છા હોય તો રાત્રિભોજનનો ત્યાગ કરો.

॥ इति श्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे एकादश उपदेशः ॥ ११ ॥



દ્વાદશ ઉપદેશ.

હે ભવ્ય જનો ! જો સમતા રહિત સામાયિક કરવામાં આવે તો તે નિરર્થક છે. માટે કેસરીની જેમ તમે સામાયિકની આરાધના કરો કે જેથી સમસ્ત સુખ પ્રાપ્ત થાય. સમભાવથી બે ઘડી વાર સામાયિક કરતાં શ્રાવક પણ (૯૨૫૯૨૫૯૨૫) એટલા પલ્યોપમ પ્રમાણ દેવતાનું આયુ બાંધે. વળી સમતા રહિત જે સામાયિક આચરે, તે મૂઢબુદ્ધિ પરમાન્નમાં ક્ષારક્ષેપ જેવું કરે છે.

કેસરીની કથા.

શ્રી નિવાસપુરમાં રિપુમર્દન નામે રાજા હતો. ત્યાં ધર્મ કર્મમાં તત્પર એવો **સમરસિંહ** નામે એક શ્રેષ્ઠી રહેતો હતો. તેનો કેસરી નામે પુત્ર હતો. તે સ્વભાવે ઇર્ષ્યાલુ, ઉદ્ધત, વ્યસની, દુર્વિનીત અને કુલાંગાર જેવો હતો. તેથી તેના પિતાએ સર્વ જનોની સમક્ષ તેને ઘરથી બહાર કહાડી મૂકયો. એટલે તે નિરંકુશ થઇને બધાના ઘરમાં ચોરી કરવા લાગ્યો. એ પ્રમાણે તે ચોરી કરતો હતો, એવામાં એકદા રાજાએ સભામાં સવાલ કર્યો કે:—‘ એ કોણ ? અને કોનો પુત્ર છે ? ’ તે વખતે તેનો પિતા ત્યાં બેઠો હતો, તે અંજલિ જોડીને બોલ્યો કે:—‘ હે સ્વામિન્ ! એ મારો કુપુત્ર છે અને ઘરથકી એને મેં કહાડી મૂકયો છે. વળી ‘ ચોરી કર્યા વિના મારે જમવું નહિ. ’ એવો એનો અભિગ્રહ છે અને હે નાથ ! વળી એનો આ વિશેષ સંબંધ સાંભળો:— ‘ એકદા સરોવરના કાંઠે બેસીને જેટલામાં એ દુષ્ટ બુદ્ધિ વિચાર કરતો હતો, તેવામાં આકાશમાર્ગે પગમાં બે પાદુકાને ધારણ

કરતો કોઈક યોગી ત્યાં આવ્યો અને તે પાદુકા ત્યાં મૂકીને જેવામાં તે સ્નાનાદિક કરે છે, તેવામાં તે પાદુકા લઈને એ આકાશમાં ઉડી ગયો. તે પાદુકાના પ્રભાવથી એ પોતે એક છતાં અનેક તસ્કરનું કામ કરે છે અને હે વિભો! દુષ્ટ રોગની જેમ નગરને એ અસાધ્ય થઇ પડ્યો છે. વળી તે નગરની અધિષ્ઠાયક દેવી આગળ આ પ્રમાણે સ્તુતિ કરે છે કે—'હે દેવી! ચોરીમાંથી અર્ધ ભાગ તને ભોગ આપીશ અને અર્ધ ભાગ હું વાપરીશ, પણ જો તારા પ્રસાદથી તે ચોરી મને સફલ થશે, તો આ મારો નિયમ હું પાળીશ એટલે તે દેવીએ તેને અનુજ્ઞા આપી, ત્યારથી એ સિદ્ધચોર થયો' પછી તેના મર્મને સમજી સારા સુભટો લઇને રાજા દેવીના ભવનમાં આવીને ત્યાં ક્યાંક છુપાઈ રહ્યો. એવામાં તે તસ્કર કોઈનો વિશ્વાસ ન કરતાં પાદુકાને હાથમાં લઇને માતાની જેમ તે દેવીને પૂજવા આવ્યો. એટલે રાજા જેટલામાં પ્રગટ થઈ તેનો આક્રોશ કરે છે, તેવામાં પાદુકા પહેરીને પક્ષીની જેમ તે ઉડી ગયો. 'અરે! આ ચોર જાય છે, જાય છે.'—એમ રાજાથી પ્રેરિત થયેલા સર્વ સુભટો કોલાહલ કરીને તેની પાછળ દોડવા લાગ્યા. એવામાં તે ચોર વિચારવા લાગ્યો કે:—'આજે ખરેખર મારા અભિગ્રહનો ભંગ થશે. કારણ કે આજનો મારો દિવસ ચોરી વિના જાય છે.' ઇત્યાદિ ચિંતવતાં તે ચોર આગળ ચાલ્યો જતો હતો, તેવામાં નીચે પૃથ્વીપર પર્ષદામાં આ પ્રમાણે બોલતા કોઇ જ્ઞાનીને તેણે જોયા:—'હે ભવ્ય જનો! રત્નઆણની જેમ મનુષ્ય જન્મ પામીને કોટી દ્રવ્યથી પણ દુર્લભ એવા એક રત્નને સ્થિર કરવું' આ સાંભળીને સ્તબ્ધ થઇને તેણે વિચાર્યું કે:—'એવું રત્ન મેં અદ્યાપિ ચોર્યું નથી, તો કર્યું શું?'

એમ વિચારે છે, એવામાં પુનઃ મુનિ બોલ્યા કેઃ—' દેવતાઓને પણ દુર્લભ એવા એક સામાયિક રત્નનું રાગ, દ્વેષાદિક ચોરોથી પ્રયત્ન પૂર્વક રક્ષણ કરવું. અંતર્મુહૂર્ત્ત પર્યંત ચિત્તની સમતા, તે સામાયિક કહેવાય છે, કે જેમાં કષાયો તદ્દન દૂર કરવાના હોય છે. અને જેમાં દાનાદિક પુણ્યની જેમ બાહ્ય આડંબર કરવાની જરૂર નથી. માટે શ્રાવકોએ અહોરાત્રમાં યથાવસરે તે કરવું જોઇએ ' આ પ્રમાણે સાંભળીને તે સામાયિકમાં સ્પૃહા કરતા એવા તે કેસરી ચોરે પોતાના મનની સાક્ષીએ સામાયિકવ્રત લઈ લીધું અને દ્વેષરહિત શુદ્ધ ભાવથી અને રાજાદિકથી પણ નિર્ભય થઇને મુનિના કહ્યા પ્રમાણે તે અનુષ્ઠાન કરવા લાગ્યો. કારણ કે —વ્યાપારોમાં જિનેશ્વરોએ મનોવ્યાપાર સર્વોત્કૃષ્ટ કહેલ છે. જે સાતમા નરકે અથવા તો મોક્ષે પણ લઈ જાય '

હવે લઘુકર્મપણાથી તે વખતે તે ચોરને કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું અને ઇંદ્રોએ તેનો મહિમા કર્યો. પછી દેવતાએ આપેલ વેષ ધારણ કરીને હજાર પત્ર વાળા સુવર્ણ કમળ પર બેસીને તે કેવલી ભગવંત ત્યાં દેશના દેવા લાગ્યા. એવામાં રાજા ત્યાં આવ્યો અને તેમનું તેવું વર્ત્તન જોઇને તે અત્યંત વિસ્મય પામ્યો. અહો ! કર્મની કેવી વિચિત્રતા છે ? પછી કેવલી બોલ્યા કેઃ—' હે રાજેંદ્ર ! સામાયિકવ્રત જો, કે જેનાથી મને એક ક્ષણવારમાં પણ લોકોત્તર ફળ પ્રાપ્ત થયું. ' આ પ્રમાણે રાજા વિગેરેને પ્રતિબોધી અને ચોરીનો માલ બધો બતાવીને લોકોપર ઉપકાર કરવા તેમણે વસુધાતલપર વિહાર કર્યો.

એ રીતે ચિરકાલ લોકોને પ્રતિબોધીને અખિલ કર્મ જાળનો ક્ષય કરી તે કેસરીમુનિ પરમપદ પામ્યા. માટે હે સજ્જ-

નો ! આવા સામાયિકવ્રતના ફળનો વિચાર કરી તેમાં પરમ આદર કરો.

॥ इति श्री उपदेश सप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे
द्वादश उपदेशः ॥ १२ ॥

त्रयोदश उपदेश.

ભવ્ય જનોએ આ પ્રતિક્રમણનો આદર કરવો. કે જેને જિનવરોએ જગતના હિતાર્થે પાંચ પ્રકારે કહેલ છે. અને પાપથી નિવૃત્તિ તથા સુકૃતમાં વારંવાર પ્રવૃત્તિ—આ પ્રમાણે બુધ જનોએ જેનો અભિધાર્થ કહ્યો છે. કહ્યું છે કે:—' મિથ્યાત્વથી પાછા હઠવું, તથા અસંયમથી કષાયોથી અને અપ્રશસ્ત યોગોથી પાછા હઠવું એમ આનુપૂર્વીથી ચાર પ્રકારે સંસારનું પ્રતિક્રમણ થાય છે અને અનાગત કાલમાં તેનો પ્રતિરોધ કરવામાં આવે છે.' વળી ' સ્વસ્થાન (ગુણ) થી પ્રમાદના વશે પરસ્થાને (અતિચારમાં) જવાયું, તો પુનઃ ત્યાંજ આવવું—તે પ્રતિક્રમણ કહેવાય છે. એક પ્રતિક્રમણમાં પણ જો પાપાદિકથી ઉપયોગ પૂર્વક નિવર્તવાનો આ પ્રકાર હોય, તો તે ભાવ પ્રતિક્રમણ કહેવાય છે. જે ભવ્ય જનો દિવસે દિવસે આવું પ્રતિક્રમણ કરે છે, તેમને સજ્જનની જેમ આ લોક અને પરલોકમાં પણ સુખ પ્રાપ્ત થાય છે.

સજ્જનની કથા.

શ્રી પાટણ નગરમાં (૧૨૩૫) મા વર્ષે ભાગ્યવંત ભીમદેવ નામે ગ્રથિલ (ઘેલો- ભોળો) રાજા હતો તેણે

સહસ્રકલા નામની એક વેશ્યાને પોતાની અંતેઉરી (રાણી) બનાવી હતી અને તેથી સમ્યક્ત્વપૂર્વક બાર વ્રતથી વિભૂષિત અને રાજ્યમાં અધિકારી એવો શ્રીમાલજ્ઞાતિનો **સજ્જન** નામે દંડનાયકજ રાજાની જેમ રાજ્યની અને દેશ વિગેરેની કાલજી રાખતો હતો 'જિનેશ્વરને પૂજીને જમવું અને પ્રતિક્રમણ કરીને સુવું.' આ બે તેને દૃઢ નિયમ હતા.

એકદા પાટણપર યવનોની સેના ચડી આવી તેથી આ બાલવૃદ્ધ સર્વ લોકો ભયાકુલ થઇ ગયા એટલે સૈન્યને લઈને સજ્જનની સાથે દેવી સન્મુખ ગઇ અને રણક્ષેત્રની ભૂમિકા તરત તૈયાર કરી. તે વખતે ચોવીશ હજાર અશ્વો, બત્રીશ હજાર માણસો અને અઢારસો હાથીઓ તૈયાર થઇ ગયા તથા સુભટોને ગજ, અશ્વ. શસ્ત્ર અને બખ્તર ભિન્ન ભિન્ન આપીને દેવીએ સજ્જનને સેનાપતિના સ્થાને સ્થાપ્યો. પછી બ્રાહ્મ મુહૂર્ત્તમાં સજ્જન પોતે હાથી પર આરૂઢ થયો અને સમસ્ત સૈનિકોને તેણે યુદ્ધને માટે સજ્જ કર્યાં અને હાથીના કુંભસ્થલપર બેસીનેજ અક્ષમાલિકા નોકારવાળી સ્થાપનાચાર્ય તરીકે સ્થાપિને તેણે પ્રતિક્રમણ કરી લીધું, કારણ કે તેવા પુરૂષો સમયજ્ઞ હોય છે એવામાં પાસે રહેનારા આ પ્રમાણે ચિંતવવા લાગ્યા કે:—' આ સ્વામી શું યુદ્ધ કરશે ? કારણકે આ તો ધાર્મિક છે અને યુદ્ધ તો નિર્દય મનવાળા માણસો કરી શકે.' પછી બે ઘડી થતાં સમાધિપૂર્વક પ્રતિક્રમણ કરી અને સામાયિક પારીને તેણે બધું સૈન્ય ચલાવ્યું. તે વખતે હાથીપર રહીને પણ યતનાપૂર્વક પ્રતિક્રમણ કર્યું, તે પણ પોતાના સૈન્યને એકત્ર થવા માટેજ અન્યથા તે શિથિલ થઈ જાય અથવા પ્રતિક્રમણ વેલાનો વ્યતિક્રમ થાય—એ હેતુ પણ સંભવે છે, કારણકે અવસરે કરવામાં આવેલ બધું કાર્ય ઉપયોગી થાય છે.

પછી બંને સૈન્ય વચ્ચે મહાયુદ્ધ શરૂ થયું અને હાથી, અશ્વ. રથ અને પદાતિ (પાળા) વિગેરે બધા યથાક્રમે હાજર થયા, એટલે તે વખતે સજ્જને એવી રીતે યુદ્ધ કર્યું કે જેથી યવનોનું સૈન્ય એક ક્ષણવારમાં કાકપક્ષીની જેમ ભાંગી ગયું પણ તે વખતે સજ્જનના શરીરમાં દશ ઘા વાગ્યા તેથી તેને ઉપાડીને સૈનિકો દેવીપાસે લઈ ગયા અને તે પણ તેનો પ્રતીકાર કરવા લાગી. પોતાના દુકુલના છેડાથી તેને પવન નાખવા લાગી અને મોટા વૈદ્યોને તેણે બોલાવ્યા એટલે તેઓએ પણ પ્રતિક્રિયાઓ કરી એવામાં સુભટોએ દેવીની આગળ કહ્યું કે:—'હે સ્વામિની ! એ રાત્રે 'एगिंदिया वेइंदिया' ઇત્યાદિ બોલતો અને પ્રભાતે એવું યુદ્ધ કર્યું કે જેવું કોઈ પણ ન કરે એ શું કહેવાય ? એટલે દેવીએ સજ્જનને કહ્યું કે:—' આ શું તમે વિરૂદ્ધ કર્યું ? તે બોલ્યો કે:—' હે સ્વામિની ! રાત્રે મેં પોતાનું કાર્ય કર્યું અને પ્રભાતે તમારૂં કાર્ય કર્યું, કારણકે આ મારૂં શરીર તમારે આધીન છે, વળી મન મારે સ્વાધીન છે તેથી મેં મારૂં કાર્ય કર્યું. આ પ્રમાણે સાંભળી તેઓ તેની પ્રશંસા કરવા લાગ્યા કે:—' અહો ! એની ધર્મમાં દૃઢતા કેટલી છે ' પછી દેવી પાટણ ગઈ અને સજ્જનને પણ વૈદ્યોએ અનુક્રમે સાજો કર્યો. એટલે તે રાજકાર્ય અને ધર્મકાર્ય કરવા લાગ્યો.

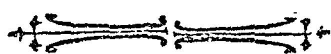
આ પ્રમાણે સંકટમાં પડતાં પણ જેઓ પોતાના નિયમને છોડતા નથી, મોક્ષસુખ તેમના હાથમાં જ છે. વળી બીજી રીતે બુધજનો દિવસનું, રાત્રિનું, પક્ષનું, ચાતુર્માસનું અને સંવત્સરનું —એમ પ્રતિક્રમણને પાંચ પ્રકારે કહે છે. કહ્યું છે કે:—" પ્રથમ અને અંતિમ તીર્થંકરના સાધુઓનો અવશ્ય પ્રતિક્રમણ કરવાનો આચાર

છે અને મધ્યમ જિનોના સાધુઓ કારણવશાત્ પ્રતિક્રમણ કરે છે. પ્રથમઅને છેલ્લા તીર્થંકરોના સાધુઓ અને શ્રાવકોને અવશ્ય કરવાનું હોવાથી તેનું આવશ્યક એવું નામ છે.

इत्थं प्रतिक्रमणमप्यनणुप्रमाद-
मुत्सृज्य भव्यनिवहाः ! क्रियतां भवद्भिः ।
यस्मिन्कृतेऽथ भवभारवियुक् शरीरी,
भारप्रमुक्त इव भारवहो लघुः स्यात् ॥ १ ॥

આ પ્રમાણે લેશ માત્ર પ્રમાદનો પણ ત્યાગ કરીને હે ભવ્ય જનો ! તમે પ્રતિક્રમણ કરો. જે પ્રતિક્રમણ કરવાથી પ્રાણી સંસારના ભારથી રહિત થઇ ભારમુક્ત ભારવહુ-મજૂરની જેમ હલવો થાય છે.

॥ इतिश्री उपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे त्रयोदश उपदेशः ॥१३॥



चतुर्दश उपदेश.

જે દાનાદિક ધર્મના વિશેષ પોષણને ધારણ કરે છે, માટે મહાજનો તેને પૌષધ કહે છે. સુદત્ત વ્યવહારીની જેમ કોઇ ભાગ્યવંત જનોજ તે પૌષધને આરાધી શકે છે. કહ્યું છે કે:-'પૌષધ અને સામાયિકમાં રહેલા જીવનનો જે કાલ જાય છે, તે સફળ છે; અને શેષ કાલ સંસારના ફળનો હેતુ છે.'

સુદત્ત વ્યવહારીની કથા.

કુસુમપુરમાં સૂર્યયશા નામે રાજા હતો. તેનો જિનધર્મથી વાસિત એવો મિત્રાનંદ નામે મંત્રી હતો. એકદા સભામાં રાજા અને મંત્રીનો વિવાદ થયો. તેમાં રાજાએ કહ્યું કે:—' અહીં વ્યવસાયજ પ્રમાણ કરવા લાયક છે. પુણ્યોથી શું ? વ્યવસાયીને બધું ફલદાયક થાય છે. કારણ કે સુતેલાના મુખમાં ક્યાંય ફલાદિક આવીને પડતા નથી. ' એટલે મંત્રી બોલ્યો કે:–' પુણ્યજ પ્રમાણ કરવા લાયક છે, અંધક્રિયાની જેમ અફલ એવા વ્યવસાયથી શું ? વળી શાસ્ત્રમાં પણ એમ સાંભળવામાં આવે છે કે:—

" नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं,
विद्यापि नैव नच यत्नकृता पि सेवा ।
भाग्यानि पूर्वतपसा किल संचितानि
काले फलंति पुरुपस्य यथैव वृक्षाः ॥ १ ॥

' કુળ, શીલ, આકૃતિ વિદ્યા અને યત્નથી કરવામાં આવેલ સેવા પણ ફળતી નથી. પરંતુ પૂર્વ તપથી સંચિત કરેલ ભાગ્યજ પુરૂષને અવસરે વૃક્ષની જેમ ફળે છે ' એટલે રાજા બોલ્યા કે:—' જો એમ હોય તો તું વ્યાપારને તજીને હમણાંજ ક્યાંક ચાલ્યો જા, ઘરે પણ તારે જવું નહિ. ' આથી પુણ્યને પ્રમાણ કરનાર મંત્રી સર્વ પરિજનને મૂકીને તેજ વખતે અને તેજ પગલે નગરની બહાર નીકળ્યો પછી આગળ જતાં ક્યાંક સરોવરમાં સ્નાન કરીને વિશ્રાંત થઇ જેવામાં ક્ષણભર વૃક્ષની નીચે બેઠો, તેવામાં એક દિવ્ય પુરૂષને તેણે જોયો એટલે તે દિવ્ય પુરૂષ બોલ્યો કે:—' હે મંત્રિન્ ! તું પ્રસન્ન થઇને વાંછિતસિદ્ધિને

આપનાર આ ચિંતામણિને ગ્રહણ કર અને મારાપર અનુગ્રહ કર' એમ કહી તે ચિન્તામણિ તેને સોંપીને પોતાનું સ્વરૂપ કહ્યા વિનાજ તે અદૃશ્ય થઇ ગયો. આથી અમાત્ય અત્યંત હર્ષિત થઇ 'રાજાને હવે પુણ્યપ્રભાવ દર્શાવું' એમ ચિંતવતાં તે મણિની અર્ચા કરીને તેણે તેની પાસે ચતુરંગ સૈન્ય માગ્યું. એટલે તેના પ્રભાવથી ચતુરંગ સેના સમન્વિત થયેલ મંત્રીએ હાથમાં લેખ આપીને દૂતને પોતાના નગરમાં રાજાની પાસે મોકલ્યો. અને તે દૂતે ત્યાં જઇને રાજાને કહ્યું કે:—'હે રાજન્! પુણ્યથી સૈન્યને પ્રાપ્ત કરી મંત્રી આવ્યો છે. માટે જો પરાક્રમ હોય તો તેની સાથે યુદ્ધ કરવા બહાર આવ.' આ પ્રમાણે દૂતે જણાવેલ તેવા પ્રકારના સૈન્યના યોગને સાંભળીને રાજાએ સમસ્ત સભાસદોની સમક્ષ આ પ્રમાણે કહ્યું કે:—'હે સભ્યજનો! આ જગતમાં પુણ્યજ કેટલું શ્રેષ્ઠ છે, તે જુઓ. એ મંત્રી એકાકી નીકળ્યો હતો છતાં અત્યારે આવી સંપત્તિને પામ્યો.' પછી રાજાએ સન્મુખ જઇ માન મૂકીને તેને આલિંગન કર્યું અને પ્રમોદ તથા વિસ્મયથી વિકસ્વર થઇને તેને નગરમાં પ્રવેશ કરાવ્યો. પછી તે બંનેએ લોકોને ધર્મમાં દૃઢ કર્યા. એવામાં એકદા ચતુર્જ્ઞાનધર એક આચાર્ય ત્યાં પધાર્યા એટલે રાજા અને પ્રધાન પરિવાર સહિત તેમને વંદન કરવા ગયા અને સાવધાન થઇને તેમણે ધર્મદેશના ત્યાં સાંભળી. પછી અવસરે રાજાએ પૂછ્યું કે:—'હે ભગવન્! આ મંત્રીને જેણે ચિંતામણિરત્ન આપ્યું તે કોણ? એ જણાવો.' એટલે ગુરૂ બોલ્યા કે:—

'પૂર્વે પદ્માપુરીમાં સમ્યક્ત્વ અને બાર વ્રતથી વિભૂષિત એવો સુદત્ત નામે પરમ શ્રાવક શ્રેષ્ઠી હતો. એક દિવસે તેણે

અહોરાત્રનું પૌષધ વ્રત લીધું અને વિધિપૂર્વક યોગ નિદ્રા કરતો રાત્રે તે સુતો એવામાં તે વખતે તેના ઘરમાં કોઇ ચોર નિર્ભય થઇને પેઠો. ઘરનું સર્વસ્વ ચોરીને પાણીના પૂરની જેમ ચાલ્યો ગયો. શ્રેષ્ઠી તે વખતે જાગતોજ હતો અને તેને જાણતાં છતાં પાપભીરૂ અને વ્રતાંતિચારની શંકાથી તે ધર્માત્માએ તે ચોરને પકડવા કોઈને પ્રેરણા પણ ન કરી, પછી પ્રભાતે તેણે પોષધ પારીને પારણું કર્યું પણ તે વૃત્તાંત તો તે ગંભીરે પોતાના પુત્રાદિકને પણ જણાવ્યો નહિ. એવામાં એક દિવસે તેજ ચોર હાર લઈને સુદત્તના કોઈ હાટે વેચવા આવ્યો, એટલે તેના પુત્રે તે જેયો. અને તે હાર પોતાનો સમજીને તે ચોરને રાજપુરૂષોને હવાલે કર્યો, એટલે તેઓ સર્વની સમક્ષ તે ચોરને વધભૂમિ તરફ લઇ ગયા. એવામાં શ્રેષ્ઠીએ તેને તેવી અવસ્થામાં આવેલો જોઇને દયાની લાગણીથી તે રાજપુરૂષોને કહ્યું કે:—'અરે! એને છોડી મુકો. મેંજ એને હાર આપ્યો હતો, તે પુત્રો વિગેરે જાણતા નથી.' આથી 'શ્રેષ્ઠી મિથ્યાવાદી નથી' એમ ધારીને તેમણે ચોરને મુક્ત કર્યો. પછી શ્રેષ્ઠીએ એકાંતમાં ચોરને શિખામણ આપી કે:—'હે ભદ્ર! અકાર્યમાં તારે મતિ ન કરવી. કારણ કે આ મનુષ્યભવ દુર્લભ છે.' આ પ્રમાણે તેની સુજનતા અને ઉપકારને સ્મરણમાં લાવતાં તે તસ્કર દીક્ષા અને અનશન લઇને સાૈધર્મદેવલોકમાં દેવ થયો. અને ચિરકાલ નિરતિચારપણે પૌષધવ્રત પાલવાથી તે શ્રેષ્ઠી ધર્મવાન્ અને ભાગ્યવંત આ સચિવ થયો છે. દેવતાએ અવધિજ્ઞાનથી પૂર્વભવના ઉપકારને જાણીને તારા સંકટમાં પડેલા એને તે વખતે તરત ચિંતામણી રત્ન આપ્યું.' એવા અવસરમાં તે દેવ પણ ત્યાં આવીને તે મંત્રીને કહેવા લાગ્યો કે:—'હે ભદ્ર! તારૂં શું ઇષ્ટ કરૂં?' તે બોલ્યો કે—'સર્વત્ર યાત્રા કરાવ.' પછી તે દેવની સાથે નંદીશ્વરાદિક તીર્થોની યાત્રા કરીને પાછા વળતાં લવણસમુદ્રપર

આવતાં કર્મ ક્ષય થવાથી તેને ઉજ્વલ કેવલજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું અને તરત આયુ ક્ષય થતાં મુક્તિ પ્રાપ્ત થઈ.

આ પ્રમાણે પૌષધવ્રતપર પણ પ્રગટરીતે દૃષ્ટાંત કહેવામાં આવ્યું. માટે હે ભવ્ય ભવિકો ! તે વ્રતમાં કેમ આદર કરતા નથી ?

॥ इति श्रीउपदेश सप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे
चतुर्दश उपदेशः ॥ १४ ॥



पंचदश उपदेश.

હે ભવ્ય જનો ! તમારે સંસારની વાસના ન હોય, તો સુપાત્રે વિત્ત વાપરો. કારણ કે અસાર સંપત્તિનું દાન સિવાય બીજું તેવું અક્ષીણ ફળ જોવામાં આવતું નથી.

ભદ્રક શ્રેષ્ઠીની કથા.

પૂર્વ અવનિપુરમાં નામ અને પ્રકૃતિથી સમાન એવો ભદ્રક નામે રાજમાન્ય શ્રેષ્ઠી હતો. તેને સ્ત્રી પણ તેના સદૃશ ગુણવાળીજ હતી. એકદા ગુરૂના મુખથી ધર્મ સાંભળીને તે દંપતીએ તેમની પાસે કેટલાક અકૃત્રિમ અભિગ્રહ લીધા–ત્રિકાલ જિનપૂજા, બેવાર પ્રતિક્રમણ, એકાંતરે ભોજન, સુપાત્રે દાન, અને સચિત્તનો ત્યાગ–એ વિગેરે નિયમો શ્રેષ્ઠીએ લીધા અને સ્ત્રીએ પણ તે બધા નિયમો લીધા. પછી ગુરૂમહારાજને નમસ્કાર કરીને તે બંને ઘરે ગયા અને કેટલાક કાલપર્યંત તેમણે ધર્મની આરાધના કરી.

હવે એકદા પૂર્વ કર્મના યોગે તેનું ધન ક્ષીણ થઇ ગયું.

એટલે તેને કોઇ વાનર જેવો પણ ગણતા ન હતા. તેથી સ્ત્રીએ તેને કહ્યું કે:—' તમે માતા પિતાના ઘરે જાઓ, ત્યાં મારા ભાઇઓ ધનાઢ્ય છે. માટે તે તમને કંઇક દ્રવ્ય આપશે. હે પ્રભો ! તે દ્રવ્યથી વ્યવસાય કરીને તમે સ્વસ્થ થાઓ.' આમ કહેતાં પણ ત્યાં જવાનો તેને લેશ પણ ઉત્સાહ ન વધ્યો. ખરેખર ! સસરાને ઘેર જવું એ માણસોને લજ્જાસ્પદ છે. પછી તેણે અતિ પ્રેરણા કરી એટલે તે સાથવાનુંજ ભાતું સાથે લઇને ચાલ્યો. બીજે દિવસે કોઇ પ્રદેશમાં શ્રી જિનપૂજન કરીને પારણાની ઇચ્છાથી તે સાથવાને ઝરણાના જળથી પલાળ્યો. તે વખતે તેના ભાગ્ય યોગે પ્રેરાયેલા કોઇ સંયત ત્યાં આવ્યા, તેમને તે આપીને શેષ પોતે જમ્યો. પછી તે પાત્રદાનથી પ્રમોદ પામતો તે ચોથે દિવસે કંઇક લજ્જિત થઇ સસરાને ઘેર ગયો. પરંતુ તેમણે સ્વાગતાદિ પણ કર્યું નહિ અને તેને ધન રહિત જોઇને તેઓ તેનો અત્યંત અનાદર કરવા લાગ્યા. તથાપિ પોતાના નિર્વાહને યોગ્ય તેણે કંઇક યાચના કરી એટલે તે સસરો વગેરે પણ તેને એમ કહેવા લાગ્યા કે:—' હે શ્રેષ્ઠિન્ ! તમારા જેવાને અદેય શું છે ? પણ હાલ તેવો વ્યાજ કે વેપાર ચાલતો ન હોવાથી તેવો યોગ નથી. છતાં પણ જો કુળદેવી કહેશે, તો તેટલું ધન તમને આપીશું. કારણ કે તે અમારે કામધેનુ સમાન છે.' પછી તેમણે કુળદેવીને પૂછ્યું એટલે તે બોલી કે:—' અત્યારે રસ્તામાં એણે જે દાનપુણ્ય કર્યું છે, તેનો છઠ્ઠો ભાગ જો એ તમને આપે, તો છ લક્ષ સોનામહોર એને આપો.' આ પ્રમાણે દેવીનું વચન સાંભળીને તેમણે તેની આગળ તે નિવેદન કર્યું. એટલે તે બોલ્યો કે:—' હું મારા પુણ્યનો લેશ પણ તમને આપવાનો નથી. તમારા બધા દ્રવ્યની કીંમત, મારા દાનના કોટીમા ભાગમાં પણ થઇ શકે તેમ નથી.'

પછી તે સત્વને અવલંબીને પોતાના નગર તરફ ચાલ્યો અને અનુક્રમે પોતાના નગરની પાસે આવેલ નદી પર આવીને તે વિચારવા લાગ્યો કે:—' અહો! જૈનધર્મની પ્રાપ્તિથી સદા સંતુષ્ટ રહેનાર મારે ધનથી શું? પરંતુ શું કરૂં કે મારી સ્ત્રી ખેદ કરે છે. જેણે મોટા મનોરથ કરી મને ત્યાં મોકલ્યો, અને હવે આવી સ્થિતિમાં મને જોઇને તે મૃત તુલ્ય થઈ જશે. માટે આ ઉજ્વલ અને ગોળ નદીના કાંકરાની પણ ગાંસડી બાંધીને ઘરે જાઉં કે જેથી તે પ્રસન્ન થાય.' એમ વિચારી તેનો એક મોટો પોટલો માથે લઇને શ્રેષ્ઠી ઘરે આવ્યો, એટલે તે પણ સન્મુખ આવી. અને ' અહો, મારો ભર્ત્તાર બહુ ધન લઇને આવેલ છે.' એમ મુખને વિકસિત કરતી એવી તેણે તેના મસ્તકપરથી ગાંસડી ઉતારીને ક્યાંક ખુણામાં રાખી. એવામાં પૂજા અને સત્પાત્રદાનાદિ ધર્મના માહાત્મ્યથી તે કાંકરા બધા જાત્યરત્ન થઇ ગયા. પછી બીજે દિવસે તેમાંના એક રત્નમાંથી પોતાના ભર્ત્તારને માટે સારી સારી વસ્તુઓ મેળવીને તેણે શ્રેષ્ઠ ભોજન તૈયાર કર્યું અને ભોજનાવસરે પતિને રત્નનું સ્વરૂપ પૂછ્યું. એટલે ' અરે! આ શું?' એમ સંભ્રાંત થઇને તેણે પણ પોતાનો વૃત્તાંત નિવેદન કર્યો. પછી ' આ ખરેખર આપણા ધર્મનોજ પ્રભાવ છે.' એમ ધારીને તે દંપતી ધર્મમાં અધિકતર નિશ્ચલ થયા.

इत्थमेष पुनरद्भुतसंप-
त्प्राप्तितोऽजनि नृपादिषु मान्यः ।
पात्रदानजिनपूजनमुख्यं,
पुण्यमेव भविकाः क्रियतां तत् ॥ १ ॥

આ પ્રમાણે પુન: અદ્‌ભુત સંપત્તિની પ્રાપ્તિથી તે રાજા વિગેરેમાં માનનીય થયો. માટે હે ભવ્યજનો! સુપાત્રદાન અને જિનપૂજન વિગેરેજ પુણ્ય કરો. કે જેથી શિવસુંદરી તમારા પર પ્રસન્ન થાય.

॥ इति श्री उपदेशसप्तिकायां पंचमेऽधिकारे
पंचदश उपदेशः ॥ १५ ॥

षोडश उपदेश

ગુણવંત જનોમાં ગુણાનુરાગ કરતા સાધર્મિ બંધુઓનું શ્રી દંડવીર્યની જેમ શ્રાવકોએ પ્રફુલ્લિત મનથી વાત્સલ્ય કરવું ઉચિત છે.

શ્રી દંડવીર્યની કથા.

શ્રી ભરતના વંશમાં અયોધ્યામાં તેજ અને યશના નિધાનરૂપ **દંડવીર્ય** નામે આઠમો રાજા થયો. ત્રણ ખંડ વસુધાના મંડનરૂપ એવો તે શ્રાદ્ધભોજન રૂપ ભરતના આચારને સારી રીતે સાચવતો હતો. એકદા અત્યંત ભક્ત એવા સોળ હજાર રાજાઓની હાજરીમાં તે રાજસભામાં શ્રેષ્ઠ સિંહાસનપર બેઠો હતો એવામાં ભરતેશ્વર પછી છ કોટી પૂર્વ ગયા ત્યારે સૌધર્મેંદ્ર સભામાં બેસીને ભગવંતના ગુણોનું સ્મરણ કરતો હતો અને તેમના સેંકડો શાખાયુક્ત વંશમાં તેવા પ્રકારના પુરૂષરત્નની સ્તુતિ કરતાં સભામાં બેઠેલા સૌધર્મેંદ્રે પોતાની જ્ઞાનચક્ષુથી જગતના આલંબન

રૂપ, બલિષ્ઠ અને આર્હત ધર્મનો આદર (પ્રભાવ)કરતા એવા દંડવીર્યને જોયો. પછી દેવેંદ્ર શ્રાવકનો વેષ લઇને અયોધ્યામાં આવ્યો અને હાથ ઉંચે કરીને રાજાને તેણે આશીર્વાદ આપ્યો. એટલે ભરત રાજાએ બનાવેલ ચાર વેદને બોલતા, દૃષ્ટિથી જોઇને જમીનપર ચરણ મૂકતા બ્રહ્મચારી, બાર વ્રત ધારણ કરેલ હોવાથી તેટલાજ તિલકને ધારણ કરતા અને હૃદયમાં પહેરેલ સુવર્ણની જનોઇથી સુશોભિત એવા તેને જોઇને દંડવીર્ય તેનાપર પ્રસન્ન (રાગી) થયો. કારણકે ક્રિયાના આડંબર પ્રમાણેજ લોકાદર હોય છે. પછી રાજાએ પૂછ્યું કે:—'હે ભદ્ર! આપ ક્યાંથી આવ્યા? અને ક્યાં જવા ધારો છો?' એટલે તે માયાથી બોલ્યો કે:—'હે નરાધિપ! શ્રાવકવેષધારી એવો હું અમરાવતી નગરીથી તીર્થયાત્રા કરતાં આજે અહીં આવ્યો છું. અહીં શક્રાવતાર નામના ચૈત્યમાં શ્રીઋષભ પ્રભુને સ્તવીને અને આપને જોઇને મેં મારા આત્માને પવિત્ર કર્યો.' પછી તેના ભોજનને માટે રાજાએ રસોયાઓને આજ્ઞા કરી. એટલે તે બોલ્યા કે:—'આજ તીર્થોપવાસ કરવાની ઇચ્છા છે.' પરંતુ રાજા વિગેરેએ ઉપવાસ કરતાં અટકાવ્યો, એટલે તે દૃષ્ટિપૂર્વક ચાલતાં દાનશાળામાં આવ્યો. ત્યાં કેટલાક ઉદ્યમ કરી વેદાદિક શાસ્ત્ર ભણતા, કેટલાક ધ્યાન કરતા, કેટલાક આચાર શીખવતા, કેટલાક ત્રિશુદ્ધિથી ત્રિકાલ દેવપૂજાને માટે સ્નાન કરતા એવા શ્રાવકોને અનુક્રમે જોઇને તે પરમ હર્ષ પામ્યો. એવામાં 'હે શ્રાદ્ધ! તમને નમસ્કાર છે' એમ ઉભા થઇને બોલતા એવા તેમની સાથે તે પાવન જળથી આચમન કરીને ગૃહમાં ગયો. ત્યાં કોટી શ્રાવકોને માટે તૈયાર કરેલ રસોઇ તે કપટ શ્રાવક દિવ્ય પ્રભાવથી એક ક્ષણવારમાં ઉઠાવી ગયો. અને બોલ્યો કે:—'અરે! ક્ષુધાથી વ્યાકુળ થયેલા મને ભોજન પિરસો. હે

સૂપકારો ! દંડવીર્યને શામાટે લજ્જાપાત્ર કરો છો ? ' આ સ્વરૂપ ચરપુરૂષોએ રાજાને જણાવ્યું એટલે તેણે પોતે આવીને માસોપવાસીની જેમ તેને ક્ષીણકુક્ષિવાળો જોયો પછી તે માયાવી શ્રાવક પણ શ્રદ્ધાસંયુક્ત તે રાજેંદ્રને જોઇને દીનભાવને પ્રકાશતાં કઠિન ભાષામાં બોલ્યો કે:—' હે રાજન્ ! તેં શ્રાવકોને ઠગવા માટે આ રસોયા રાખ્યા છે. કારણકે બુભુક્ષિત ભૂખ્યા એવા મને એકને પણ એઓ સંતોષ પમાડી શકતા નથી.' આ પ્રમાણે સાંભળીને કંઈક કુપિત થઈને રાજાએ પોતાની નજર આગળ રસોયાઓ પાસે સો મૂડા અન્ન રંધાવ્યું. એટલે રાજાના દેખતાં ઇંધનસંચયને જેમ અગ્નિ ભક્ષણ કરે, તેમ તે પોતાની માયાથી તે અન્નને એક ક્ષણવારમાં જમી ગયો. અને તે માયાશ્રાવક પુન: બોલ્યો કે:—' જે પૂર્વજોના કુળ, કીર્ત્તિ અને પુણ્યને અધિકતા ન પમાડે તેવા પુત્રથી પણ શું ? હે ભૂપ ! શ્રાવકોને ભોજન આપવારૂપ માયાને મૂકીદે, લજ્જાને તજીદે. ભોજનશાળાના આડંબરને ધારણ કરી તું માણસોને શા માટે છેતરે છે ?' આવી તેની નિષ્ઠુર વાણી સાંભળીને પણ તે કોપાયમાન ન થયો, પણ પોતાના પુણ્યની અપૂર્ણતાને સમજી ઉલટો તે પોતાનેજ નિંદવા લાગ્યો. એવામાં રાજાના ભાવને જાણીને મંત્રી પવિત્ર ભાષામાં બોલ્યો કે:—' હે સ્વામિન્ ! શ્રાદ્ધરૂપ કરી છળ કરનાર એ કોઇક દેવ લાગે છે. માટે જો શ્રાવકના વેષપર તમારે ભક્તિભાવ હોય, તો હે નૃપ ! તે ચંદન, અગરૂ, કર્પૂર અને કસ્તૂરી પ્રમુખથી પૂર્ણ કરો.' આ પ્રમાણે સાંભળીને રાજાએ તેની આગળ ભક્તિપૂર્વક ચંદનાગરૂમિશ્રિત ધૂપ કર્યો અને કોમળ વચનથી કહ્યું કે:—' હે દેવ ! શ્રાવકવેષથી અહીં મને પાવન કરવા આવનાર તમે કોણ છો ? તે કહો અને મારાપર કૃપા કરી પ્રગટ થાઓ.' આથી ઇંદ્રે પોતાનું રૂપ પ્રગટ કરીને કહ્યું

કે:—'હે રાજન્! તુંજ ધન્ય છે, કે જેની સાધર્મિક બંધુપર આવી ભક્તિ છે. જગતમાં પોતાના ઉદરને ભરનારા કોટીજનો હશે, પરંતુ એક સાધર્મિકનું પણ વાત્સલ્ય કરનારા વિરલા હશે.' આ પ્રમાણે નિષ્કપટભાવથી ઇંદ્ર તેની પ્રશંસા કરીને કોટી રત્નની વૃષ્ટિ કરી અને દિવ્ય ધનુષ્ય આપીને પોતાની રાજધાનીમાં ચાલ્યો ગયો. અને શ્રીદંડવીર્ય ભૂપાલ પણ શ્રીશત્રુંજય તીર્થની યાત્રા કરી, શ્રીસંઘપતિના પદને પામી અને આત્માના આદર્શરૂપ કેવલલક્ષ્મીને ઉપાર્જન કરીને અનુક્રમે મોક્ષનગરમાં પધાર્યા.

॥ इति श्रीउपदेश सप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे षोडश उपदेशः ॥ १६ ॥

सप्तदश उपदेश.

આસ્તિક શ્રાવકોએ શ્રીજ્ઞાનદ્રવ્ય અને સાધારણ દ્રવ્યને પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે નહિ, પણ સંઘની અનુમતિ પ્રમાણે વાપરવું. આ સંબંધમાં પણ શ્રીજિનઆગમમાં કહેલ બે શ્રાવકનું ઉદાહરણ અહીં આપવામાં આવે છે.

બે શ્રાવકની કથા.

ભોગપુર નગરમાં કોટી કનકનો સ્વામી ધનાવહ નામે શેઠ હતો, તેની ધનવતી નામની પત્ની હતી. તેમને કર્મસાર અને પુણ્યસાર નામના સાથે જન્મેલા બે પુત્રો હતા. એકદા પિતાએ એક નૈમિત્તિકને પૂછ્યું કે:—'આ કેવા થશે?' તેણે કહ્યું કે:—'કર્મસાર સ્વભાવે જડ, અત્યંત બુદ્ધિરહિત, વિપરીત બુદ્ધિ

પણાથી બહુ પ્રયત્ન કરતાં પણ પૂર્વના દ્રવ્યને ગુમાવનાર અને નવીન દ્રવ્યને ઉપાર્જન કરવાના અભાવથી બહુ કાલ દરિદ્રતાદિકથી દુઃખી થશે. અને પુણ્યસાર પણ પૂર્વ દ્રવ્યઅને નવીન ઉપાર્જિત દ્રવ્યની વારંવાર હાની થવાથી તેજ પ્રમાણે દુઃખી થશે, પરંતુ બંને વેપારકળામાં કુશળ થશે. બંનેને વૃદ્ધપણામાં ધન, સુખ અને સંતતિ વિગેરે થશે.' પછી અનુક્રમે તે બંનેને ભણાવવા ઉપાધ્યાયને સોંપ્યા. એટલે પુણ્યસાર સુખપૂર્વક (અનાયાસે) બધી વિદ્યાઓ શીખ્યો. અને કર્મસારને તો એક અક્ષર પણ આવડ્યો નહિ. તે પશુ જેવો વાંચન કે લેખનાદિક પણ કરી શકતો ન હતો. એટલે પાઠકે તેને ભણાવવાનું મૂકી દીધું. પછી તે બંને યૌવનસ્થ થયા એટલે માતપિતાએ તેમને ઉત્સવપૂર્વક મોટા શેઠની કન્યાઓ પરણાવી. 'આ બંનેમાં પરસ્પર કલહ ન થાય' એમ ધારીને પિતાએ તેમને બાર બાર કોટી સુવર્ણ આપીને અલગ રાખ્યા. અને પોતે (માબાપ) દીક્ષા લઇને સ્વર્ગસ્થ થયા.

હવે પોતાની તેવા પ્રકારની કુબુદ્ધિથી સ્વજનાદિક અટકાવે, છતાં જ્યાં વેપાર કરે, ત્યાં નુકશાનીજ આવી પડવાથી કર્મસારે બારે કનકકોટી ગુમાવી. અને પુણ્યસાર પણ રાજા, ભાગીદાર, તસ્કર અને અગ્નિ વિગેરેના ઉપદ્રવને લીધે થોડા વખતમાંજ બધું સુવર્ણ ગુમાવી બેઠો. એટલે તે બંને દરિદ્ર થઇ ગયા, તેથી સ્વજનાદિકોએ તેમનો ત્યાગ કર્યો અને સ્ત્રીઓ પણ ક્ષુધાની મારી પિતૃગૃહે ચાલી ગઈ. કારણકે:—'ધનવંતના ખોટા સ્વજનપણાને પણ લોકો ચ્હાય છે અને ધનહીન પોતાના નજીકના બાંધવથી પણ લજ્જા પામે છે. ધનહીન ગુણવંતને પણ તેના પરિજનો ખરેખર નિર્ગુણી ગણે છે અને સધન ખોટા

દાક્ષિણ્યાદિ ગુણોથી પણ આદરપાત્ર થાય છે.' પછી 'આ નિર્બુદ્ધિ અને નિર્ભાગી છે.' એમ લોકોએ તેમનું નવીન નામ સ્થાપન કર્યું. આથી તેઓ પગલે પગલે અપમાન પામતા હોવાથી લજ્જિત થઇને દેશાંતર ચાલ્યા ગયા. ત્યાં અન્ય ઉપાયના અભાવથી ભિન્ન ભિન્ન સ્થાને કોઇ શ્રેષ્ઠીના ઘરે નોકરી રહ્યા. હવે જેને ઘેર કર્મસાર નોકર હતો, તે લુચ્ચાઇથી વ્યવહાર ચલાવતો અને કૃપણ હતો. તેથી કહ્યાં છતાં પગાર ન આપતો તથા 'અમુક દિવસે આપીશ.' એમ કહીને તેને તે છેતરતો હતો. તેથી બહુ દિવસ જતાં પણ તે કાંઇ કમાઇ ન શકયો. અને બીજાએ કંઇક કમાવ્યું અને કંઇક પ્રયત્નથી ગોપવ્યું છતાં તે કોઇ ધૂર્ત ચોરી ગયો. એ પ્રમાણે અન્ય અન્ય સ્થાનોમાં નોકરી, ધાતુર્વાદ, સત્યવાદ, સિદ્ધ-પુરૂષ, રસાયન, રોહણાચલમાં ગમન, મંત્રસાધન અને રૂદંતી વિગેરે ઓષધિના ગ્રહણાદિકથી અગીયાર વાર કમાવેલ ધન પણ કુબુદ્ધિ, પ્રમાદ અને અભાગ્યના વશથી તેમણે ગુમાવ્યું. પછી ઉદ્વેગ પામી વહાણમાં બેસીને રત્નદ્વીપમાં ગયા, અને ત્યાં દ્વીપની અધિષ્ઠાયક દેવી આગળ મરણને અંગીકાર કરીને પણ બેઠા. એટલે આઠમે દિવસે દેવીએ કહ્યું કે—'તમારા ભાગ્યમાં નથી.' તેથી કર્મસાર ઉઠી ગયો અને પુણ્યસારને એકવીશ ઉપવાસ થયા. ત્યારે દેવીએ ચિંતામણિરત્ન આપ્યું. એટલે પશ્ચાત્તાપ કરતા કર્મસારને પુણ્યસારે કહ્યું કે:-'હે બંધો ! ખેદ ન કર. આ ચિંતામણિરત્નથી આપણે બંને સુખી થઇશું.' એમ વિચારી હર્ષમાં પાછા ફરી વહાણમાં બેઠા. એવામાં પૂર્ણિમાની રાત્રે ચંદ્રમાનો ઉદય થતાં મોટા બંધુએ કહ્યું કે:—' હે ભ્રાતા ! ચિંતામણિરત્નને પ્રગટ કર, આપણે જોઇએ કે ચંદ્રમા અને રત્ન—બંનેમાં કોનું તેજ અધિક છે.' એટલે દુર્દૈવથી પ્રેરાયલા લઘુ બંધુ પણ પોતાના

કીનારાપર બેસી હાથમાં રત્ન રાખીને ક્ષણવાર રત્નમાં અને ક્ષણવાર ચંદ્રમાં દૃષ્ટિ નાખી જોતો હતો, તેવામાં કલ્લોલાદિકમાં વ્યગ્ર ચિત્ત હોવાથી તેના હાથમાંથી રત્ન સમુદ્રમાં પડી ગયું. પછી બંને સમાન દુઃખ પામતા પોતાના નગરમાં આવી દુઃખે સમય ગાળવા લાગ્યા.

હવે એકદા તે નગરમાં કોઈ કેવલી પધાર્યા. એટલે ત્યાં આવી તેમને નમસ્કાર કરીને તેમની આગળ તે બંનેએ પૂછયું કે:—'હે ભગવન્! કયા કર્મથી અમારાપર આવું દુઃખ આવી પડયું, કે સેંકડો વર્ષો જતાં પણ જેના વર્ણનનો પાર ન આવે.' એટલે જ્ઞાની બોલ્યા કે—

'પૂર્વે ચંદ્રનગરમાં પરમર્દ્ધિક અને પરમ શ્રાવક એવા **જિનદત્ત** અને **જિનદાસ** નામે બે શ્રેષ્ઠી હતા. એકદા આસ્તિક શ્રાવકોએ મળીને સુસ્થાનપણાથી રક્ષણ કરવા જ્ઞાન દ્રવ્ય અને સાધારણ દ્રવ્ય તેમનેજ આપ્યું. અને અનુક્રમે જિનશાસનમાં વિજ્ઞ એવા તે બંનેએ પોતાના જીવિત અને ધન કરતાં અધિક ચિરકાલ તે દ્રવ્યની સંભાળ કરવા કાલજી રાખી. એકદા જિનદત્તે પોતાની પ્રતીમાં, લેખક પાસે આકુટીથી જોવામાં આવેલ કંઈક લખાવ્યું અને વિચાર કર્યો કે—'આ પણ જ્ઞાનસ્થાનજ છે.' એમ ધારી પોતાની પાસે બીજા દ્રવ્યના અભાવથી તે વખતે લખનારને તરત વિચાર વિના પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે તે જ્ઞાનદ્રવ્યમાંથી તેણે બાર દ્રમ્મો આપ્યા. અને 'સાધારણ દ્રવ્ય સંઘને ઉચિત હોય' એમ જાણતાં છતાં 'હું પણ તે સંઘમાંજ છું' એમ મનમાં ધારીને જિનદાસે પણ મુગ્ધપણાથી પોતાની પાસે રહેલા તે સાધારણ દ્રવ્યમાંથી બાર દ્રમ્મો પોતાના પ્રયોજનમાં વાપર્યા. તે બંને શાસ્ત્રજ્ઞ છતાં આ પ્રમાણે વિવેકવિધિથી વર્જિત હોવાથી તે પાપ આલોચ્યા વિના મરણ પામીને પ્રથમ નરકમાં ગયા. આ સંબંધમાં વેદાંતીએ પણ કહ્યું છે કે:—'પ્રાણો કંઠે આવેલા હોય, પણ જ્ઞાનદ્રવ્યમાં મતિ ન કરવી. કારણકે અગ્નિથી દગ્ધ થયેલા હજી સાજા થાય (ઉદય પામે)

પણ જ્ઞાનદ્રવ્યથી દગ્ધ થયેલા ઉદય ન પામે. જ્ઞાન દ્રવ્ય, બ્રહ્મ હત્યા, દેવદ્રવ્ય, દરિદ્રનું ધન, અને ગુરૂપત્ની—એ સ્વર્ગમાં રહેલા પ્રાણીને પણ નીચે પાડે છે.' પછી તે સર્પ થયા, અને ત્યાંથી વચમાં મત્સ્યાદિક યોનિયોમાં ભવો પૂરીને સમગ્ર નરકમાં અને સર્વ તિર્યંચજાતિમાં તે કર્મથી તેઓ ભમ્યા તથા અંગચ્છેદાદિક કદર્થના તેમણે સહન કરી. એ પ્રમાણે બાર હજાર ભવો પૂરણ કરીને યથાપ્રવૃત્તકરણથી શુભ કર્મોદયની સન્મુખ થવાથી એ વ્યવહારીકુળમાં તમે બંને સહોદર થયા છો. આ દુર્લંઘ્ય ભવિતવ્યતા કોને વિડંબના પમાડતી નથી? પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે બાર બાર દ્રમ્મોને વાપરવાથી ઉપાર્જન કરેલ કર્મના યોગે બાર હજાર ભવોસુધી તમને આવાં દુઃખો સહન કરવાં પડ્યાં. વળી આ ભવમાં પિતાએ દરેકને આપેલ બાર કોટી કનકનો નાશ થયો અને પગલે પગલે અપમાન સહન કરવું પડયું. અને વળી નવા ધનની અપ્રાપ્તિ અને પ્રાપ્ત થયેલનો નાશ—એ તેજ દુષ્કર્મરૂપ વિષવૃક્ષનું કટુફળ છે. વળી કર્મસારને આ ભવમાં જે જડતા વિગેરે છે, તે પૂર્વ જન્મમાં કરેલ જ્ઞાનદ્રવ્યના વ્યાપારનું ફળ છે. કારણ કે **જ્ઞાન દ્રવ્ય દેવદ્રવ્યના જેવું હોવાથી તે અકલ્પ્ય છે. અને સાધારણ દ્રવ્ય પણ સંઘની સંમતિથી કલ્પે. શ્રીસંઘે પણ જીજ્ઞાસા પ્રમાણે તે દ્રવ્યનો સાત ક્ષેત્રોમાં વ્યય કરવો, પણ યાચકો વિગેરેને જેમ તેમ તે આપી ન દેવું.** કહ્યું છે કે:—'દેવદ્રવ્ય એકજ સ્થાને, જ્ઞાનદ્રવ્ય બે સ્થાનેજ અને સાધારણદ્રવ્ય સાત ક્ષેત્રોમાં વાપરવું—એમ જૈન સિદ્ધાંતમાં કહેલ છે.' કદાચ જ્ઞાન વિગેરેના દ્રવ્યનો ઉપભોગ થઇ જાય, તો તેના સ્થાને પોતાનું ધન બેગણું આપવું.' આ પ્રમાણે સાંભળીને શ્રાવકધર્મની પ્રતિપત્તિપૂર્વક પ્રાયશ્ચિત્તના સ્થાને તેમણે એવો નિયમ લીધો કે:—'વેપાર કરતાં જે ઓછો કે વધુ લાભ થાય, તે

સર્વ જ્ઞાન અને સાધારણ દ્રવ્યના સ્થાને અર્પણ થાઓ, કે જેથી હે મુને ! તે બાર દ્રમ્મો હજાર ગણા થાય.' આ પ્રમાણે નિયમ લઇ તે મુનિને નમસ્કાર કરીને તે બંને સ્વસ્થાને ગયા. પછી કેટલોક વખત જતાં પ્રાયશ્ચિત્તના સ્થાને સમસ્ત દ્રવ્ય અર્પણ કરવાથી અશુભ કર્મ ક્ષીણ થઇ જતાં પૂર્વની જેમ તેમને બાર બાર કોટી સુવર્ણની પ્રાપ્તિ થઇ અને તેથી તેઓ સમસ્ત વ્યવહારીઓમાં મુખ્ય થયા, અને જ્ઞાન તથા સાધારણદ્રવ્યનો વધારો કરવામાં તત્પર એવા તે બંનેએ પોતાના જીવનપર્યંત જિનાજ્ઞાનું આરાધન કર્યું અને પ્રાંતે પ્રૌઢ ઉત્સવપૂર્વક દીક્ષા લઇ અને ચિરકાલ તે ચારિત્ર આરાધીને અનુક્રમે સદ્દગતિના ભાજન થયા.

एवं देवज्ञानसाधारणादिद्रव्यं व्यक्तया स्थापनीयं सुयुक्त्या ।
व्यापार्यं च श्रावकैस्तत्त्वविज्ञैर्निर्लेपत्वं स्यात्तथा चिंतनीयम् ॥१॥

એ પ્રમાણે દેવદ્રવ્ય, જ્ઞાન દ્રવ્ય અને સાધારણદ્રવ્ય તત્ત્વજ્ઞ શ્રાવકોએ અચ્છી યુક્તિપૂર્વક વ્યક્ત રીતે સ્થાપન કરવું અને સુયુક્તિથી તેનો વ્યય કરવો. તથા કાળજી પણ એવી રાખવી કે જેથી કોઇ પણ પ્રકારનો દોષ ન લાગે એટલે સાચવવામાં, વધારવામાં અને વાપરવામાં અચ્છીરીતે વિવેક રાખવો.

॥ इति श्रीउपदेशसप्ततिकायां पंचमेऽधिकारे सप्तदशउपदेशः ॥१७॥

॥ इति श्रीपरमगुरुतपागच्छनायक श्रीसोमसुंदरसूरिक्रम-कमलमरालमहोपाध्याय श्री चारित्ररत्नगणितद्विनेयपंडित श्री सोमधर्मगणिविरचितायां श्री उपदेश-सप्ततिकायां पंचमोऽधिकारः ॥

॥ समाप्ता चेयं श्री उपदेशसप्ततिका ॥

શ્રીગુરૂપ્રશસ્તિ.

જાગ્રત ભાગ્યવંત, ક્ષમારસના પોષક, સંવેગ અને ચારિત્ર-ધારી તથા ચતુર્વિદ્યાના વિનોદી એવા મુનિવરોમાં જેમની પંક્તિ અગ્રગણ્ય હતી, અને જેમણે શ્રીજિનશાસનરૂપ વનમાં કલિયુગમાં પણ અજ્ઞાનવાદીરૂપ હાથીઓના અહંકારના પ્રસારને દૂર કરી પંચાનનની ગર્જના કરી, વળી શ્રીચંદ્રકુળના શૃંગારરૂપ અને શ્રી તપાગચ્છના નાયક એવા શ્રી સોમસુંદરસૂરિ કોને આનંદકારી નથી ? તથા શાંતિકરસ્તોત્રના કરનારા, રાજા વિગેરેને પ્રતિબોધ આપનાર તથા પ્રવાદને જીતનારા એવા શ્રી મુનિસુંદરસૂરિ પોતાના યશોજીવનથી શોભે છે. વળી સંમતિતર્કપ્રમુખ અનેક વિષમ ગ્રંથોને ભણાવનારા એવા શ્રી જયચંદ્રગુરૂ સંઘના શ્રેયનિમિત્તે થાઓ. દક્ષિણ દેશમાં વિહાર કરીને ઉદ્ધત કુવાદીઓના મદને દલિત કરનારા એવા શ્રી ભુવનસુંદરસૂરિવર ભવ્ય જનોના હર્ષ-નિમિત્તે થાઓ. વળી અગીયાર અંગરૂપ સૂત્રોના અર્થરૂપ સાગરનું મથન કરવામાં મંદરાચલ જેવા શ્રી જિનસુંદરસૂરિ કોને આનંદ ન ઉપજાવે ? ગુરૂગચ્છના હિતને માટે તત્પર, સુકૃતમાં પરાયણ, સંવેગી સાધુઓમાં અગ્રેસર અને સૂત્રાર્થના સંચયને ધારણ કરનારા એવા શ્રી જિનકીર્ત્તિસૂરિ જયવંત વર્ત્તો. જગતને આનંદકારી વચન બોલનારા એવા શ્રી વિશાલરાજસૂરિ જયવંત વર્ત્તો. જેમનું શરીર દગ્ધ થતાં પણ ચોલપટ્ટો ભસ્મ ન થયો. અનેક નવીન સદુક્તિની યુક્તિથી સરસ બહુ ગરિષ્ઠ, તથા અમૃતના કુંડ-સમાન સ્વોપજ્ઞ ગ્રંથોથી જગતના તાપને દૂર કરવાને સમર્થ, ઉપકાર કરવામાં અગ્રેસર, સદા જાગ્રત પ્રતાપવાળા, મેઘની જેમ જૈન શાસનરૂપ વનને નવપલ્લવિત કરનારા, ગચ્છાધિપતિની પદ-

વીને દીપાવનારા, શાસ્ત્રોક્ત સૂરિગુણોની સંપત્તિને ધારણ કરનારા તથા પોતાના શિષ્યગણને શિક્ષણ આપવામાં સાવધાન એવા શ્રી રત્નશેખર પ્રવરગુરૂ અત્યારે પણ જયવંત વર્ત્તે છે. શ્રી ઉદયનંદી-સૂરિ શ્રી સંઘપર સદા પ્રસન્ન રહો. જેમની અસાધારણ નિરીહતા અદ્યાપિ જોવામાં આવે છે. અન્ય સમાન ગુરૂભાઈઓનું ઉલ્લંઘન કરીને જેમનાપર શ્રી ગુરૂનો પ્રસાદ અધિક થયો—એવા શ્રી લક્ષ્મી-સાગરસૂરિવર તમારી સિદ્ધિને અર્થે થાઓ. ચોથા યુગમાં પણ જેમનું સૌભાગ્ય શ્રી વજ્રસ્વામીના જેવું હતું—એવા શ્રી સોમદેવ-સૂરિ તમને જય આપનારા થાઓ. એ તથા અન્ય આચાર્યો, વાચકો, વિબુધો, સ્થવિરો તદા ઇતર સાધુઓ પણ જયવંત વર્ત્તો, જેમનામાં વિનય પ્રમુખ અસંખ્ય ગુણો સદા વિદ્યમાન હોય છે. વળી અતિ વિષમ ગ્રંથાર્થનો દીપિકાની જેમ મનોમંદિરમાં સાક્ષાત્કાર કરાવનારી, સર્વદા જાગ્રત અને સર્વને ઉપયોગી એવી અનુત્તર બુદ્ધિને ધારણ કરનારા તથા અદ્યાપિ સુજ્ઞ જનોના દુષ્ટ તિમિરને છેદનાર એવા **દાનપ્રદીપ** ગ્રંથના રચનાર તથા વાચકેંદ્ર એવા શ્રી ચારિત્ર રત્ન મારા ગુરૂ જયવંત વર્ત્તો, જેમણે ભણાવેલા કુશળ શિષ્યો જગતપર અનેક ઉપકારો કરે છે. તેમના ગુરૂભાઇ સમસ્ત સુજ્ઞોને માનનીય તથા પૂજનીય એવા ઉદયશેખર પંડિત-વર જયવંત રહો. જેમણે પોતાના પવિત્ર અને દેદીપ્યમાન તેજ (વચન) થી અંતરમાં અત્યંત વૃદ્ધિ પામેલી એવી મારી જડતાને પણ દૂર કરી. તેમના (ચારિત્રરત્ન તથા ઉદયશેખરના) ચરણ કમળમાં મધુકરસમાન એવા પંડિત સોમધર્મગણિ શિષ્ય થયા, જે ઘણાં શાસ્ત્રો ભણ્યા, પણ તેના મર્મને જાણી ન શક્યા. તેમણે (૧૫૦૩) ના વર્ષે આ મનોહર **ઉપદેશસપ્તતિકા** નામે ગ્રંથ રચ્યો, જે બુધ જનોને કૃતાર્થ કરવા લાયક છે. આ અલ્પ

પણ પોતાના હસ્તગત પ્રતીઓમાં રાખવી, પણ અન્ય પુસ્તકોમાં એને કદાપિ જતી ન કરવી. કારણકે નગરના મધ્યમાં આવેલી તેજ શ્રેષ્ઠ પ્રપા (પરબ) કહેવાય, કે જેમાં લોકો પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે જળપાન કરે. વિશુદ્ધ બુદ્ધિવાળા એવા શ્રી સોમધર્મગણિએ કલિંદિકામાં સદોષપોષા છતાં (સજ્જનોના સમૂહને હર્ષ આપનારી) સતીની જેમ દૂષણરહિત એવી આ ઉપદેશસપ્તતિની રચના કરી.

यावद्वीरजिनेंद्रशासनमिदं दुर्वादिनिर्नाशनं,

ભાવાર્થ—જ્યાં સુધી દુર્વાદીના ગર્વને ગાળી નાખનારૂં શ્રી મહાવીર પ્રભુનું શાસન જયવંતું વર્ત્તે છે.

यावन्मेरूमहीधरप्रभृतयो भावा अमी शाश्वताः ।

જ્યાંસુધી આ મેરૂ પર્વતાદિક શાશ્વતા પદાર્થોનું અસ્તિત્વ છે.

श्री संघश्च चतुर्विधोऽपि कुरुते यावच्च पुण्योद्यमं,

અને જ્યાંસુધી ચતુર્વિધ સંઘ સુકૃત્ય કરવામાં ઉદ્યમ વંત છે.

तावत् श्री उपदेशसप्ततिरियं श्रेयस्करी स्तात्सताम् ॥ १ ॥

ત્યાંસુધી આ સદ્બોધદાયી ઉપદેશ સપ્તતિકા ભવ્યાત્માઓને કલ્યાણ કરનારી થાઓ !

